# शूद्रों की खोज

(डॉ. आंबेडकर द्वारा लिखित अंग्रेजी पुस्तक Who were the Shudras? का मुकम्मल, विश्वसनीय तथा प्रामाणिक अनुवाद)

-डॉ. बी.आर. आंबेडकर

प्रस्तावना

डॉ. प्रदीप आगलावे

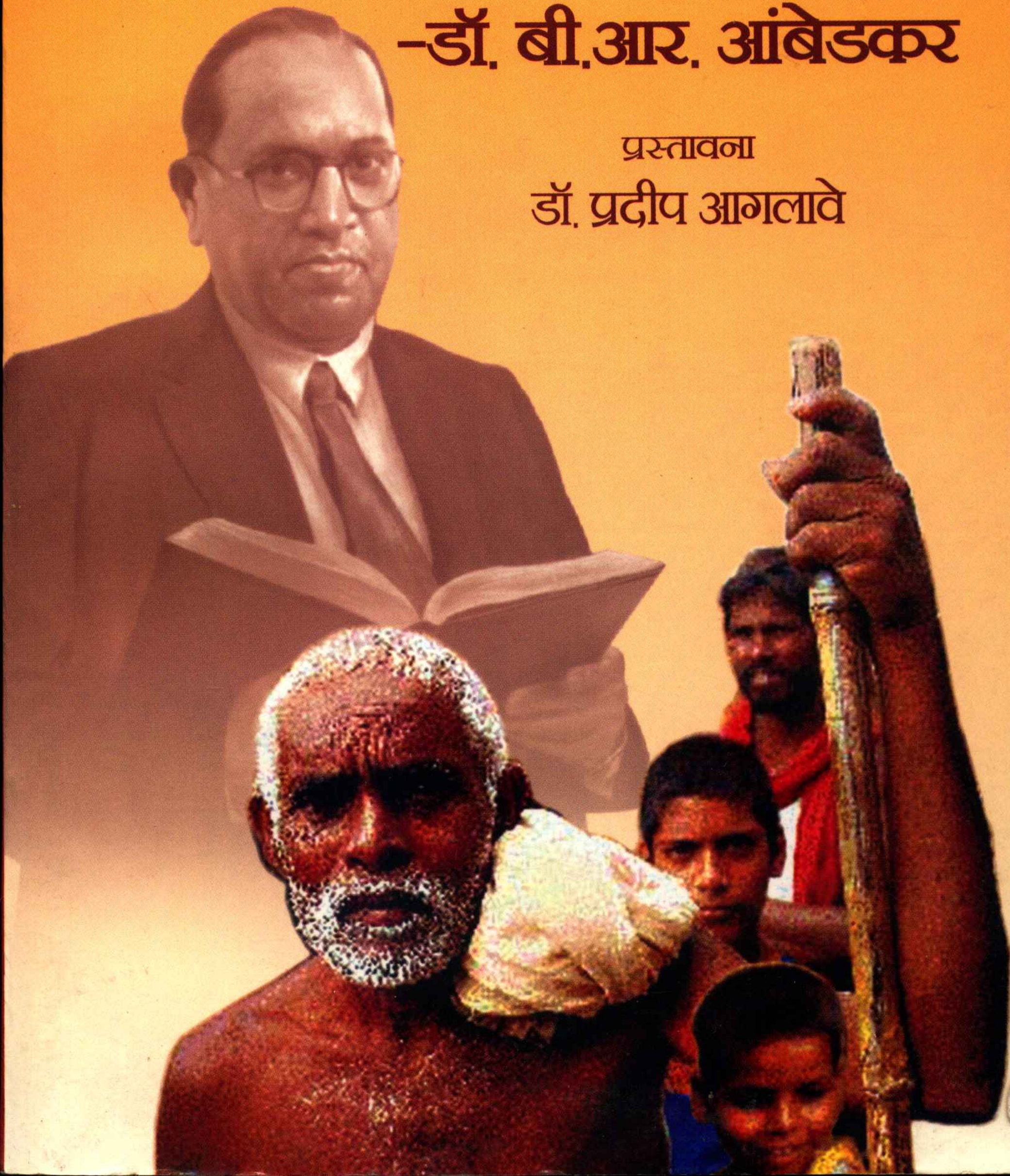

# शूद्रों की खोज

# महामना जोतिबा फुले

(1827–1890)

की पावन स्मृति

को समर्पित

आधुनिक भारत के महानतम शूद्र,
जिन्होंने हिंदुओं के निचले वर्गों
को ऊंचे वर्गों की दासता के
प्रति सचेत किया और
जिन्होंने शुभोपदेश दिया कि
भारत के लिए विदेशी शासन से मुक्ति की
अपेक्षा सामाजिक लोकतंत्र कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

बौद्ध पुनर्जागरण स्वर्ण जयंती माला

डॉ. बी.आर. आंबेडकर द्वारा रचित
**'Who Were the Shudras'** का अविकल हिंदी अनुवाद

# शूद्रों की खोज

अनुवाद
**मोज़ेज़ माइकेल**

सम्यक प्रकाशन

प्रथम हिंदी संस्करण (सम्यक प्रकाशन) : 2007 (बुद्धाब्द 2551)
द्वितीय संस्करण : 2011 (बुद्धाब्द 2555)

प्रकाशक : **सम्यक प्रकाशन**
32/3, पश्चिम पुरी, नई दिल्ली—63
दूरभाष : 98102 49452, 98101 61823
email : budhdharam@bol.net.in
web : www.samyakprakashan.com

**© अनुवाद प्रकाशकाधीन**

इस पुस्तक अथवा इस पुस्तक के किसी भी अंश को इलेक्ट्रॉनिक, मेकेनिकल, फोटोकॉपी, रिकार्डिंग या अन्य सूचना संग्रह साधनों एवं माध्यमों द्वारा मुद्रित अथवा प्रकाशित करने के पूर्व सम्यक प्रकाशन की लिखित अनुमति अनिवार्य है।

**मूल्य : 150 रुपये**

रचना : **शूद्रों की खोज**
रचनाकार : डॉ. बी.आर. आंबेडकर
अनुवाद : मोज़ज़ माइकेल
आवरण : शांत कला निकेतन
शब्दांकन : संदीप आर्ट एण्ड ग्राफिक्स

मुद्रक : गौतम प्रिन्टर्स, नई दिल्ली

SHOODRON KI KHOJ (Hindi) by Dr. B.R. Ambedkar

# प्रस्तावना

डॉ. प्रदीप आगलावे

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर द्वारा लिखित 'Who were the Shudras? How they came to be the fourth Varna in the Indo-Aryan Society' इस शोधपूर्ण ग्रंथ का हिंदी अनुवाद, दिल्ली के सम्यक प्रकाशन की ओर से प्रकाशित हो रहा है, यह बहुत हर्ष की बात है। इस शोधपूर्ण ग्रंथ का हिंदी अनुवाद हिंदी-अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध अनुवादक मोज़ेज माइकेल जी ने किया। यह एक उत्कृष्ठ कोटि का अनुवाद है। इस अनुवाद का फिर से संपादकीय संस्कार करके, सम्यक प्रकाशन के संचालक एवं प्रसिद्ध बौद्ध लेखक, चिंतक माननीय शान्ति स्वरूप बौद्ध इसे पुनः प्रकाशित कर रहे हैं। इस अनुवादित ग्रंथ की प्रस्तावना लिखने कीं जिम्मेदारी माननीय शान्ति स्वरूप बौद्ध ने मुझे सौंपी है, यह उनका बड़प्पन है। उनका मेरे प्रति जो स्नेहभाव है, उसका यह प्रतीक है। मै उनका आभार मानकर उनके ऋण से छुटकारा नहीं चाहता। उनके ऋण में ही मैं रहना चाहता हूं।

वैदिक संस्कृति ही भारत की एकमात्र संस्कृति नहीं है। वैदिक संस्कृति के पहले भी यहां सिंधु संस्कृति थी। जिसका आर्यों ने बड़ी क्रूरता से विनाश किया। यहां के मूलनिवासी लोगों की एक अपनी संस्कृति, एक अलग पहचान और सभ्यता थी। इस महान भारतीय सभ्यता को भी तहस-नहस करने का काम आर्यों ने ही किया। वैदिक संस्कृति के बाद ईसा पूर्व छठी शताब्दी में तथागत बुद्ध के धम्म के आधार पर बौद्ध संस्कृति विकसित हुई। बौद्ध संस्कृति भारत की एक महान संस्कृति थी। इस संस्कृति ने यज्ञ-याग, कर्मकांड, ईश्वर आदि बातों को अव्यवहार्य बतलाया। वर्णभेद का विरोध करके सभी मानव जन्म से समान हैं, जन्म के आधार पर लोगों में भेद करना गलत है। सभी लोगों को अपनी प्रगती करने का अवसर देना चाहिए। स्त्री-पुरुषों में भेद नहीं करना चाहिए। मानव अपने अकुशल कर्मों से दुख का निर्माण करता है, इसलिए सभी को कुशल कार्य करके सुखी रहना चाहिए। इस प्रकार की विचारधारा बौद्ध संस्कृति की थी। बौद्ध संस्कृति के कारण शिक्षण, व्यापार, शिल्पकला, वैद्यकीय आदि क्षेत्र में भारतीय समाज का काफी विकास हुआ था। बौद्ध काल मे ही भारत देश अखंड भारत बना। सम्राट अशोक ने दूसरे देशों में भी बौद्ध धम्म का प्रचार करने के लिए विशेष दूत भेजे थे। जिसके कारण विदेशों में बौद्ध धम्म और भारतीय बौद्ध संस्कृति का विकास हुआ।

# प्रकाशकीय

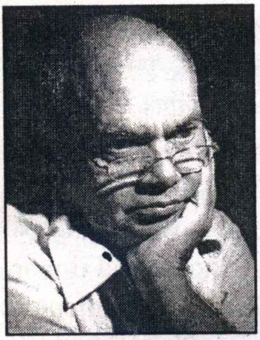

शान्ति स्वरूप बौद्ध

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि पुरुष-सूक्त ऋग्वेद का अभिन्न अथवा अद्वितीय अंग है। इन विद्वानों की दृष्टि में इस सूक्त की अद्वितीयता का कारण इसमें पाई जाने वाली सामाजिक व्यवस्था है, जिसको 'चातुर्वर्ण्य' के नाम से जाना जाता है। 'पुरुष-सूक्त' में निरूपित किया गया है कि वर्ण-व्यवस्था सृष्टि के आदिकाल से ही विद्यमान है और इसके अंतर्गत चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आते हैं। दिलचस्प बात यह है कि इस वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति दैविक (ईश्वरकृत) बताई गई है। ब्रह्मा ने इनकी सृष्टि की और इन चारों वर्णों को गुण-कर्म के आधार पर कर्तव्य निर्धारित किए। हिंदू विद्वानों विशेषकर सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन का ऐसा ही मत है।

डॉ. आंबेडकर इस मत को सिरे से ही नकार देते हैं। उनकी मान्यता है कि "आर्यों के समाज में प्रारंभ से केवल तीन ही वर्ग—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही थे। शूद्र अर्थात चौथा वर्ण तो क्षत्रियों का ही एक आवश्यक अंग था। ब्राह्मण तथा क्षत्रियों के बीच सामाजिक प्रतिष्ठा एवं वर्चस्व के लिए जो संघर्ष हुआ, उसमें आज शूद्र कहे जाने वाले लोग पराजित हुए। अतः उन्हें निम्न-स्तर पर लाकर डाल दिया गया। केवल पुरुष-सूक्त में ही चार वर्णों का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है कि ब्रह्मा ने संसार की समृद्धि के लिए इन वर्णों का सृजन किया। डॉ. आंबेडकर के अनुसार, यह कथन पूर्णतः असत्य है। उनका मानना है कि ऋग्वेद के अंतर्गत पुरुष-सूक्त को बहुत समय पश्चात जोड़ा गया है। वेदों में इन चार वर्णों के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है। केवल पुरुष-सूक्त ही इनको अधिक महत्त्व देता है। पुरुष-सूक्त तो केवल 'क्षेपक' मात्र है। ऐसा बहुत से पूर्व एवं पश्चिम के विद्वान भी मानते हैं। जिनमें प्रो. कॉलब्रूक (Prof. Colebrooke) प्रो. मैक्स मूलर (Prof. Max Muller), प्रो. वेबर (Prof. Weber) आदि के नाम मुख्य हैं। यहां तक कि सत्पथ ब्राह्मण और तैत्रिय ब्राह्मण में भी केवल तीन वर्णों का ही उल्लेख मिलता है।

इन सब बातों के अतिरिक्त भी पुरुष-सूक्त में अनेक कूट बातें भरी पड़ी हैं, जिनका ठीक-ठीक अर्थ समझ पाना बहुत टेढ़ी खीर है। डॉ. आंबेडकर मानते हैं कि "आदर्श, नियमों के रूप में होने चाहिएं, क्योंकि उनसे समाज का कल्याण ही होता है। बिना नियमों के व्यक्ति एवं समाज ठीक तरह से जीवन-यापन नहीं कर सकते।" किंतु समय एवं

परिस्थितियों के अनुसार उन नियमों से परिवर्तन होना आवश्यक है। नियमों का मूल्यांकन नवीन परिस्थितियों में भी होते रहना चाहिए। ऐसा करना तभी संभव है, जब कि उन नियमों को दैविक एवं पवित्र न माना जाए। डॉ. आंबेडकर का यह कथन उचित ही प्रतीत होता है कि "पवित्रता का भाव परिवर्तन एवं मूल्यांकन का विरोधी है।" पुरुष-सूक्त वर्ण-व्यवस्था को पवित्र संस्था मानता है। यहां तक तो बात ठीक भी हो सकती है, परंतु उनको इतना दैविक एवं पवित्र क्यों माना गया कि कोई व्यक्ति एक शब्द भी उसके विरुद्ध नहीं कह सके? इस संस्था को मानव आलोचना से परे क्यों समझा गया? यह प्रथम और बहुत जटिल प्रश्न है।

डॉ. आंबेडकर के अनुसार पुरुष-सूक्त ने वर्ण-व्यवस्था का आविर्भाव करके दो-रंगी चाल चली गई। सर्वप्रथम इसमें तथ्यों अथवा वर्गों की स्थिति को एक आदर्श रूप दिया गया। ऐसा करने को डॉ. आंबेडकर कपट की भावना से ओत-प्रोत मानते थे क्योंकि आदर्श को तथ्य से, जैसे कि वह है, पृथक नहीं कर सकते। तथ्यों को आदर्श मान कर पुरुष-सूक्त उनकी प्राप्ति पर बल देता है। यह तो और ी अधिक कपटपूर्ण दृष्टि है। कारण यह है कि आदर्श पहले से ही तथ्य में विद्यमान है। "तथ्यों को आदर्श बनाना और उनको जीवन में प्राप्त करना" पुरुष-सूक्त का यह सैद्धांतिक प्रतिपादन नैतिकता के विपरीत है। इससे प्रतिष्ठित गुटों को बढ़ावा मिलता है। क्योंकि एक बार जो निश्चय हो गया, उसे सदैव के लिए सत्य मान लिया जाता है। डॉ. आंबेडकर का कथन है कि व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में वर्गों के विभाजन की दृष्टि से तो जितनी भी प्रगति हुई है, वह इस नैतिक सिद्धांत को मानकर ही हुई है कि "जो कुछ भी दोषपूर्ण ढंग से निश्चित होता है, वह कभी निश्चित नहीं है, स्थायी नहीं है। उसने सदैव के लिए वर्णों को आदर्श क्यों बनाया? जब वर्ण-स्थिति वास्तविक है, तो उसे आदर्श क्यों माना जाना चाहिए? यह दूसरा जटिल प्रश्न है।

पुरुष-सूक्त यह मानता है कि ब्रह्मा ने अपने चार अंगों से चार वर्णों की उत्पत्ति की। ब्रह्मा ने ब्राह्मण को मुख से, क्षत्रिय को भुजाओं से, वैश्यों को जंघाओं से एवं शूद्रों को पैरों से उत्पन्न किया। पुरुष-सूक्त का निर्माण करने में दो बातों को ध्यान में रखा गया। प्रथम, वर्णों का कर्तव्य-विभाजन और द्वितीय, वर्णों का स्तर-विभाजन। इस प्रकार पुरुष-सूक्त ने केवल वर्णों के कर्तव्य ही निर्धारित नहीं किए, वरन इन वर्णों के स्तर भी निश्चित किए। सभी वर्णों का स्तर समान न रख कर विषम (असमान) रखा गया। अतः उससे असमान स्तरीय समाज (Society based on graded inaquality) की स्थापना की गई। इन वर्णों को ब्रह्मा के विभिन्न शारीरिक अंगों से क्यों जोड़ा गया? उन्हें आंगिक महत्त्व क्यों दिया गया? यह तीसरा जटिल प्रश्न है।

किंतु सबसे महत्त्वपूर्ण और जटिल तथ्य यह है कि "शूद्रों को तीन वर्णों से पृथक कर दिया गया था। अतः इस बात की व्याख्या करना कि यह पृथक्करण क्यों हुआ, यहां आवश्यक जान पड़ता है।

डॉ. आंबेडकर के मतानुसार शूद्रों की उत्पत्ति ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के मध्य वर्चस्व के लिए होने वाले युद्ध के कारण हुई। प्राचीन काल में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय अपनी-अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को ऊंचा रखने में बहुत सजग थे। यह विवाद मुख्यतः वशिष्ठ एवं विश्वामित्र और उनके अनुयायियों के बीच हुआ। दोनों ही पुजारी थे। वशिष्ठ ब्राह्मण पुजारी थे जबकि विश्वामित्र एक क्षत्रिय थे। उन दोनों के बीच होने वाले संघर्ष की जड़ पूजा-पाठ करवाने का अधिकार ही था। मूल-विवाद यह था कि पुरोहिताई के अधिकार किसके होने चाहिएं? ब्राह्मण के अथवा क्षत्रिय के? क्या क्षत्रिय भी पुरोहित हो सकता है? यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्न था।

इस संघर्ष के बीच राजा सुदास ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। राजा सुदास विश्वामित्र के कट्टर समर्थक थे। उन्होंने क्षत्रियों का साथ दिया क्योंकि राजा सुदास स्वयं भी एक क्षत्रिय था। उनके साथ सुदास ने अनेक युद्ध भी लड़े। अंत में, कुछ कारणवश वशिष्ठ की विजय हुई। वशिष्ठ के अनुयायियों ने सुदास की संतान को समाज के निम्न स्तर पर आने के लिए बाध्य कर दिया। उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा छीन ली गई, उन्हें नीच तथा अधम बना दिया गया और उनको इतना दबाया-कुचला गया कि वे नीच अथवा शूद्र बन गए। आर्यों के समाज में उन्हें सबसे निम्न (नीच) स्तर दिया गया, जिसे शूद्र कहा गया। आज तक उन्हें शूद्र ही बनाए रखा गया है।

यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि सुदास की संतान को किन साधनों से नीच अथवा शूद्र बनाया गया? ब्राह्मणों ने उनके लिए उपनयन संस्कार करना बंद कर दिया। इस उपनयन संस्कार के द्वारा बच्चे को द्विज बनाया जाता है। इस प्रकार से बच्चे को यज्ञोपवीत धारण कराया जाता है। तत्पश्चात यह वेदाभ्यास करने के लिए गुरु के आश्रम में छोड़ दिया जाता है। आर्यों के समाज में यह संस्कार बहुत ही महत्त्वपूर्ण समझा जाता था। राजा सुदास की संतान के लिए यह संस्कार करना बंद कर दिया गया। अतः इसके द्वारा ब्राह्मणों ने सुदास की संतान से बदला लिया और उन्हें सदा-सदा के लिए शूद्र बना दिया। उनसे शिक्षा तथा संपत्ति के सभी अधिकार छीन लिए गए।

डॉ. आंबेडकर की मान्यता है कि सुदास का राज्याभिषेक ब्राह्मण पुरोहितों द्वारा संपन्न किया गया था। साथ ही, हम राजा सुदास को राजसूय यज्ञ करता हुआ भी पाते हैं। इन उदाहरणों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि शूद्र बताने से पहले की संतान को उपनयन-संस्कार आदि का पूर्ण अधिकार था। जब यह पराजित हो गए, तो उनसे उपनयन-संस्कार का अधिकार छीन लिया गया। ब्राह्मणों ने सामूहिक रूप से उनका उपनयन संस्कार करना बंद कर दिया। फलतः ये लोग शिक्षा आदि से वंचित रह गए। इस प्रकार उन्हें निम्न स्तर पर धकेल दिया गया।

प्राचीन काल में उपनयन-संस्कार बहुत ही महत्त्वपूर्ण सामाजिक अंग था। व्यक्तियों की प्रतिष्ठा एवं अधिकार इस पर ही आधारित थे। उपनयन-संस्कार के बिना व्यक्ति का जीवन अंधकारयुक्त समझा जाता था। उपनयन-संस्कार बंद करके ही सुदास की संतान का

पतन किया गया। डॉ. आंबेडकर उपनयन-संस्कार के निषेध को बहुत भयंकर हथियार मानते थे क्योंकि ब्राह्मणों ने इसका प्रयोग सुदास के वंश को नष्ट करने में किया। आज के परमाणु बम (Atom Bomb) से भी कहीं अधिक इसका प्रभाव सिद्ध हुआ। इसके द्वारा शूद्रों को सदा-सदा के लिए एक ऐसा स्थान दे दिया गया, जो अपमानजनक, घृणित एवं अशोभनीय है।

इन संघर्षों के परिणाम स्वरूप केवल राजा सुदास की संतान को ही शूद्र नहीं बताया गया, वरन उन सभी लोगों को, जो सुदास के समुदाय में सम्मिलित थे, शूद्रों की श्रेणी में धकेल दिया गया। यह घटना उस समय की है जब जन-जीवन समुदायों में बंटा हुआ था। एक व्यक्ति का कार्य संपूर्ण समुदाय का कार्य माना जाता था। प्राचीन काल में समुदाय को ही सामाजिक इकाई (Social Unit) समझा जाता था, न कि व्यक्ति को। इसका अर्थ यह है कि एक व्यक्ति का अपराध संपूर्ण इकाई का अपराध समझा जाता था। समुदाय के बिना व्यक्ति का महत्त्व कुछ भी नहीं था। उसका महत्त्व समुदाय की समग्रता में था। यदि इस तथ्य को सत्य मान लिया जाए, तो डॉ. आंबेडकर का कहना ठीक ही है कि ''ब्राह्मणों ने केवल शूद्र राजाओं को ही घृणा एवं पतन का पात्र नहीं बनाया, बल्कि संपूर्ण शूद्र वर्ण को निम्न स्तर पर लाकर छोड़ दिया। उन्होंने सामूहिक रूप से सब व्यक्तियों का दमन किया जो सुदास के समुदाय के सदस्य थे। उपनयन-संस्कार का अधिकार सबसे छीन लिया गया और उन्हें समाज का सबसे नीच वर्ण घोषित कर दिया गया।

पूर्व कथन के अनुसार राजा सुदास का समुदाय एक क्षत्रिय समुदाय था, जिसको शूद्र वर्ण में परिवर्तित कर दिया गया, किंतु आज भारतीय समाज में अनेक क्षत्रिय परिवार क्यों मिलते हैं? इन परिवारों को शूद्रों की श्रेणी में क्यों सम्मिलित नहीं किया गया? डॉ. आंबेडकर के अनुसार क्षत्रियों के दो वर्ग थे, प्रथम वर्ग 'सूर्य-वंश' और द्वितीय 'चंद्र-वंश'। सूर्य-वंश के क्षत्रिय बहुत पराक्रमी और बुद्धिमान थे। उनमें होड़ करने की तीव्र अभिलाषा रहती थी। वे प्रत्येक क्षेत्र में चंद्र-वंशी क्षत्रियों से आगे थे। सूर्य-वंशी क्षत्रिय अपने आपको ब्राह्मणों से किसी बात में कम नहीं समझते थे। सामाजिक अधिकार एवं सुविधाओं के प्रश्न पर ये सूर्य-वंशी क्षत्रिय ब्राह्मणों से भिड़ गए। वे ब्राह्मणों के साथ निरंतर युद्ध एवं संघर्ष करते रहे।

ब्राह्मण वर्ग इस बात को भुला नहीं सका कि सूर्य-वंशी क्षत्रिय उनके शत्रु थे। जब उनके हाथों में शक्ति आई, तो उन्होंने सूर्य-वंशी क्षत्रियों से सभी अधिकार छीन लिए और उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा को नष्ट कर दिया। इस बीच ब्राह्मणों ने आचार-संहिता बनाई और सूर्य-वंशी क्षत्रियों को समाज में शूद्रों का स्तर दिया गया। उन्होंने ऐसे नियम बनाए, ताकि ये लोग कभी भी सिर ऊपर न उठा सकें। बाद में जब मनु महाराज पैदा हुए तो उन्होंने सामाजिक नियमों को और भी कठोर बना दिया। पुरुष-सूक्त में वर्ण-व्यवस्था को दैविक रूप प्रदान कर दिया गया। उसे पवित्र एवं अखंड मान लिया गया। मनु ने वर्ण-व्यवस्था को इतना कठिन, कठोर और एकांगी बना दिया कि पराजित क्षत्रियों का ऊपर

उठना ही कठिन ही नहीं हुआ, अपितु असंभव-सा हो गया। कालांतर में कोई समझौता नहीं हुआ। ब्राह्मणों ने उस समय वर्तमान सूर्य-वंशी क्षत्रियों से ही बदला नहीं लिया, वरन उस बदले की भावना को शताब्दियों तक व्यावहारिक रूप दिया। इस प्रकार केवल सूर्य-वंश के क्षत्रिय समुदाय ही शूद्रों की श्रेणी में आए। चंद्र-वंशी क्षत्रिय आज तक भी भारतीय समाज में विद्यमान हैं।

आधुनिक भारत में 'शूद्र' शब्द का अर्थ ही बदल गया है। 'शूद्र' एक पारिभाषिक शब्द है। इस शब्द का प्रयोग केवल एक विशेष समुदाय अथवा वर्ग के लिए ही होता था। परंतु आज के हिंदू समाज में सभी असभ्य एवं नीच लोगों को शूद्र वर्ण में गिना जाता है, जिनकी न तो सूर्य-वंशी क्षत्रियों से कोई बराबरी है और न जिन्होंने सूर्य-वंशियों के साथ मिल कर कुछ किया ही था। केवल एक ही बात की समानता है कि वे भी निम्न स्तर पर रहते हैं। इन लोगों को शूद्रों की श्रेणी में लाना भूल है। वे निम्न स्तर पर रहने वाले वर्ग उन शूद्रों से भिन्न हैं, जिन्होंने ब्राह्मणों को अपमानित किया था और उनके साथ अनेक संघर्ष किए थे। यह बहुत ही कष्टदायी घटना है कि निम्न स्तर पर रहने वाले सभी लोग शूद्रों की श्रेणी में घसीट लिए जाते हैं। उनके ऊपर आज भी वही अत्याचार किए जाते हैं, जो पहले वास्तविक शूद्रों पर किए जाते थे। उन्हें भी वही दंड दिए जाते हैं, जो प्राचीन शूद्रों को दिए जाते थे।

शूद्रों की उत्पत्ति का सिद्धांत, जो डॉ. आंबेडकर ने इस पुस्तक में प्रतिपादित किया है, वह सार रूप में निम्नवत रखा जा सकता है—

1. शूद्र वास्तव में सूर्य-वंशी क्षत्रिय थे। प्राचीन आर्यों के समाज के अनेक समुदायों में से सूर्य-वंशी क्षत्रियों का भी एक अभिन्न समुदाय था।
2. एक समय ऐसा था, जब भारतीय आर्यों के समाज में केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य नामक तीन ही वर्ण थे। शूद्र नाम का वर्ण कोई नहीं था। जिन्हें शूद्र कहा जाता है, वे सूर्य-वंशी क्षत्रिय थे। वे क्षत्रिय वर्ण के ही अंग थे।
3. पुरोहिताई के अधिकार के लिए सूर्य-वंशी राजाओं और ब्राह्मणों में निरंतर युद्ध होते रहे, जिनमें ब्राह्मणों को बहुत अधिक अपमानित किया गया। सूर्य-वंशी क्षत्रियों ने उन पर बहुत अत्याचार किए।
4. जब ब्राह्मण संगठित हुए, तो उन्होंने सूर्य-वंशी क्षत्रियों का उपनयन-संस्कार करना बंद कर दिया। ब्राह्मणों ने बदले की भावना अपने अंतर्मन में बिठा ली।
5. उपनयन-संस्कार की अनुपस्थिति में सूर्य-वंशी क्षत्रिय एवं उनकी संतान पतित समझी जाने लगी। उनको क्षत्रिय वर्ण से गिरा कर चौथे वर्ग में परिवर्तित कर दिया गया और इस प्रकार उनका चौथा वर्ण स्थापित हुआ।

यह सर्वमान्य सत्य है कि भारत में समाजशास्त्र का तथ्यपरक एवं उपयोगितावादी अध्ययन की परंपरा का भीमारंभ डॉ. बी.आर. आंबेडकर द्वारा ही किया गया था।

यद्यपि उनसे पूर्व समाजशास्त्रीय अध्ययन का कार्य पश्चिमी देशों में तो पहले से ही होता आया है।

यह स्थापित सत्य है कि बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर गत शताब्दी के ऐसे महामानव थे, जिन्हें भारत-निर्माण का मुख्य शिल्पकार होने का श्रेय प्राप्त है। वे बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न, दृढ़ निश्चयी, अकूत साहस व उत्साह के धनी, संघर्षशील, जुझारू और अपनी धुन के पक्के युगपुरुष थे। उनका विराट व्यक्तित्व बहुआयामी और बहुमुखी था। एक प्रखर विधिवेत्ता, मजदूरों के प्रबल पक्षधर, नारी जाति के पक्के हिमायती व उद्धारक, कुशल राजनीतिज्ञ, महान संविधानविद, आदर्श सांसद, अनुपम शिक्षाशास्त्री, युगांतरकारी समाज सुधारक एवं अनुपम सामाजिक क्रांतिकारी तो वे थे ही, किंतु इन सबसे बढ़ कर वे दलितों, शोषितों, वंचितों, महिलाओं के सच्चे मसीहा, मुक्तिदाता थे। उनके इन महान गुणों एवं उपलब्धियों के कारण ही उन्हें महान समाजशास्त्री के रूप में प्रस्तुत करने का सफल व सार्थक प्रयास इस ग्रंथ के माध्यम से किया गया है। या यूं कहिए कि इस पुस्तक का एक मात्र उद्देश्य डॉ. आंबेडकर के समाजदर्शन का व्याख्यात्मक तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है।

संसार के उत्कृष्ट समाजशास्त्रियों में डॉ. आंबेडकर का स्थान हिमालय पर्वत की भांति बहुत ऊंचा है। इसका कारण यह है कि सामाजिक चिंतन के क्षेत्र में किसी भी अन्य आधुनिक चिंतक की अपेक्षा बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर का योगदान एवं अवदान सर्वाधिक है। मगर यह भी इतना ही सत्य है कि बाबासाहेब की अंग्रेजी पुस्तकों का हिंदी अनुवाद इतना घटिया है, जिसे पढ़ कर उनकी महानता का कतई भान नहीं होता।

बहुत दुख के साथ कहना पड़ रहा है जितना उत्कृष्ट उनका अंग्रेजी साहित्य है, उतना ही निकृष्ट उनकी पुस्तकों का हिंदी अनुवाद।

बाबासाहेब का समस्त साहित्य मूल रूप से तथा मुख्यतः अंग्रेजी भाषा में ही रचा गया था। हिंदी जगत के पाठक उनकी महानता का, उनकी विचारधारा और उनके कृतित्व का परिचय केवल अनुवाद के माध्यम से ही पा सकते हैं। यदि अनुवाद में कुछ गड़बड़ रह जाएगी तो यह गड़बड़ मूल लेखक के नाम ही दर्ज मानी जाएगी। इसलिए लेखक की विचारधारा का ठीक-ठीक ज्ञान कराना है तो अनुवाद कार्य में बहुत सतर्कता बरतनी होगी। यह पुस्तक बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर द्वारा रचित अंग्रेजी पुस्तक 'Who were the Shudras' का हिंदी अनुवाद है। इस पुस्तक के हिंदी भाषा में बहुत से अनुवाद पहले से ही प्रकाशित किए जाते रहे हैं फिर भी सम्यक प्रकाशन को एक और अनुवाद प्रकाशित करना पड़ रहा है, इसके अनेक कारण हैं–

1. पहला कारण तो यही है कि प्रायः सभी पूर्व अनुवाद अपूर्ण ही हैं। साथ ही ऊट-पटांग त्रुटियों से परिपूर्ण हैं। पुस्तक को संक्षिप्त अथवा सार रूप में छापने के नाम पर उसकी प्रामाणिकता को ही ध्वस्त कर दिया गया। संक्षिप्त संस्करण में संक्षिप्त करने वाले विद्वान के विचार हावी हो जाते हैं और मूल लेखक की विचारधारा गौण हो जाती है।

इसलिए हमारे पाठकवृंद का प्रबल आग्रह था कि इस ग्रंथ का नूतन अनुवाद पूर्ण रूप में प्रामाणिकता सहित प्रकाशित किया जाए।

2. प्रायः सभी हिंदी अनुवाद आधे-अधूरे ही हैं। इस अधूरेपन का कोई औचित्य सिद्ध ही नहीं होता। इसीलिए हमने बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर कृत अंग्रेजी ग्रंथ 'Who were the Shudras?' का मुकम्मल अनुवादक छापने के उद्देश्य से ही इस पुस्तक को प्रकाशित किया है।
3. प्रायः सभी हिंदी अनुवाद भाव-भाषा की दृष्टि से बहुत ही निम्न स्तर के हैं। संसार के सबसे बड़े मनीषी-विद्वान की पुस्तक का घटिया अनुवाद हमसे सहन नहीं हुआ इसीलिए अनुवाद विद्या के पारंगत विद्वानों द्वारा बाबासाहेब की इस पुस्तक का अनुवाद कराने का निर्णय लिया गया।

सबसे अधिक आश्चर्य तो भारत सरकार के सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा प्रकाशित बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वांगमय के विभिन्न खंडों का अवलोकन करके हुआ, जिनका प्रकाशन बाबासाहेब की विचारधारा को सर्वसाधारण जनमानस तक पहुंचाने के लिए आरंभ किया गया था। किंतु देखने में आया है कि इन खंडों के माध्यम से जो विचार और सारहीन भाषा परोसी जा रही है, निश्चित रूप से वह बाबासाहेब की विचारधारा का सत्यानाश करने के लिए ही है। बाबासाहेब की विचारधारा के अर्थ का अनर्थ हो रहा है। सरकार ने इस पहलू की ओर से या तो आखें मूंद रखी हैं या फिर वह बाबासाहेब की विचारधारा का सत्यानाश करने के काम में हाथ बंटाने पर तुली हुई है। यह जान कर और भी आश्चर्य होगा कि बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर के संपूर्ण साहित्य के अनुवाद का कार्य डॉ. आंबेडकर संस्थान द्वारा योग्य विद्वानों के संपादक मंडल की देख-रेख में करवाया गया। इस संपादक मंडल का सदस्य माननीय मो.दा. नैमिशराय जी आंबेडकरी जगत के महान साहित्यकार एवं पत्रकार हैं, जिनके रहते बहुत विश्वास था कि बाबासाहेब का विचार अपनी पूरी धार के साथ पेश किया जाएगा। किंतु परिणाम उलटे ही निकले। इतने महान साहित्यकार की उपस्थिति में यह चूक क्यों और कैसे हो गई? यह सवाल आज तक भी अनसुलझा ही है। क्या इस 'साहित्यकार' में योग्यता का अभाव था, या फिर वे किसी सौदे या समझौते के कारण ऐसा अनर्थ कर बैठे?

इस सम्बंध में अनेक बार सरकार का ध्यान आकर्षित किया गया। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी इस मसले को उठाया गया। मगर नतीजा, वही ढ़ाक के तीन पात। इससे डॉ. आंबेडकर के प्रति भारत सरकार की नीति और नीयत संदेहास्पद दिखाई पड़ती है। किंतु अन्य नेताओं, विशेषकर गांधीजी के सम्बंध में स्थिति बिलकुल विपरीत है। अपने पाठक वर्ग की जानकारी के लिए एक उदाहरण पेश है—

17 अप्रैल 2007 का हिंदुस्तान दैनिक (हिंदी) का एक समाचार ध्यान देने योग्य है। समाचार है—

*"गलतियों से सीख मिलती है। यह बात संपूर्ण गांधी वांगमय पर भी लागू हुई है। 1999 में प्रकाशित वांगमय के दूसरे संस्करण से उजागर हुई गलतियों के कारण वांगमय को नया रूप हासिल हुआ है और देश के तीन गांधीवादियों ने संपूर्ण गांधी वांगमय के 17 भागों (वॉल्यूम) को मूल रूप प्रदान कर प्रकाशन विभाग को छपाई के लिए भेज दिया है। गांधीवादियों ने 17 भागों का इलेक्ट्रॉनिक वर्सन मंत्रालय के पास भेजा है और इनके छपने के बाद वे प्रूफ पठन करेंगे। उम्मीद है कि संपूर्ण गांधी वांगमय के 17 भागों की छपाई अगले दस दिनों में शुरू हो जाएगी।*

*तीन गांधीवादियों—गुजरात विद्यापीठ के कुलपति सुदर्शन आयंगर, धीरूभाई अंबानी इंस्टीच्यूट ऑफ कम्यूनिकेशन टेक्नोलॉजी, गांधीनगर के त्रिदिव शुरूड़ और साबरमती आश्रम की दीनाबेन पटेल के प्रयास से संपूर्ण गांधी वांगमय के 17 भागों को मूल रूप मिला है। इन्होंने जब गांधी व्रांगमय के दूसरे संस्करण को देखना शुरू किया तो पाया कि वांगमय के सात भागों में 97 आइटम छूटे हुए हैं। इतना ही नहीं नए संस्करण में 500 गलतियां भी उजागर हुईं। संसद में सवाल उठा और 2004 में संसद में सूचना और प्रसारण मंत्री जयपाल रेड्डी ने यह कबूल किया कि गलतियां उजागर करने वालों की बात सही है और उनके मंत्रालय ने ऐसा मान एक समिति बना दी। इसमें गांधीवादी नारायणभाई देसाई, बी.आर. नंदा, पी.एस. रेड्डी, अनुपम मिश्र और एक सरकारी अधिकारी को रखा गया। इस समिति ने दीनाबेन पटेल और त्रिदिव शुरूड़ को बुलाकर प्रमाण देने को कहा। प्रमाण मिलने पर यह समिति भी इस नतीजे पर पहुंची कि वांगमय मूल रूप में नहीं है। समिति की सिफारिशों के आधार पर संपूर्ण गांधी वांगमय के दूसरे संस्करण को रद्द किया गया और इसकी प्रतियां बाजार और पुस्तकालयों से वापस ली गईं। इन्हीं गांधीवादियों को वांगमय के डिजिटिलाइजेशन की जिम्मेदारी भी सौंपी गई है।"*

गांधी वांगमय की छपाई में सुधार के प्रति सरकार की त्वरित प्रतिबद्धता देख कर बहुत प्रसन्नता हुई। साथ ही यह मलाल भी हुआ कि डॉ. आंबेडकर के साहित्य के प्रति सरकारी प्रतिबद्धता कहां खो जाती है? आखिर इस देश के मूलनिवासी, दलित और वंचित लोग न्याय के लिए कब तक तरसते रहेंगे?

बाबासाहेब ने अपने मत को स्थापित करने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। अपनी खोज-प्रवृत्ति के कारण उन्होंने बहुत लंबे पत्र-व्यवहार के पश्चात मैसर्स चार्ल्स स्क्रिबनर्स संस पब्लिशर्स, न्यू यॉर्क (अमेरिका) से मान्य मैडिसन ग्रांट द्वारा अपनी पुस्तक 'पासिंग ऑव द ग्रेट रेस' के लिए तैयार किए मानचित्रों को इस पुस्तक में प्रयोग करने की अनुमति प्राप्त की थी, जिन्हें उन्होंने अपने मूल (अंग्रेजी) ग्रंथ के परिशिष्ट II, III और IV में

यथोचित स्थान दिया था। किंतु आश्चर्य का विषय है कि न किसी हिंदी प्रकाशक ने और न ही भारत सरकार ने इन मानचित्रों को अपने हिंदी संस्करणों में स्थान दिया। इसी प्रकार इन अनुवादों में से अंग्रेजी ग्रंथ का Index भी नदारद है। जबकि Index किसी पुस्तक की जान होता है। समझ में नहीं आता कि ये अनुवाद बाबासाहेब की विचारधारा को फैलाने के लिए प्रकाशित किए जा रहे हैं या उनके ग्रंथों से उठी क्रांति-ज्वाला पर पानी डाल कर ठंडा करने के लिए?

बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर का समर्पित अनुयायी होने के नाते अपने मुक्तिदाता के अमर साहित्य के हिंदी अनुवाद का उद्धार हमें स्वयं ही करना होगा और यह कार्य तभी संभव होगा जब हम सरकार के मुंह की ओर देखना बंद कर दें।

इस अनुवाद के प्रस्तुत करने में माननीय मोज़ेज़ माइकेल ने जिस प्रतिबद्धता एवं अनुवाद कला की अद्वितीय क्षमता का परिचय दिया है वह वास्तव में ही सराहना के योग्य है। इसके अतिरिक्त मैं आंबेडकरी जगत के अनूठे हस्ताक्षर माननीय विजय सुरवाडे जी के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूं जिनके अमूल्य सुझावों के बल पर यह संस्करण वास्तव में ही अनुकरणीय बन सका। इस पुस्तक को सफलता प्रदान करने में डॉ. धर्मकीर्ति, आचार्य जुगल किशोर बौद्ध, स्वरूप चन्द्र बौद्ध, भद्रशील रावत, डॉ. अंगने लाल एवं पूर्व राज्यपाल महामहिम डॉ. माता प्रसाद जी का सहयोग एवं मार्गदर्शन बहुत सराहनीय रहा। पुस्तक के छपते-छपते प्रिय सतनाम सिंह जी की सेवाएं भी बहुत सार्थक रहीं। उनके लिए भी अनेक धन्यवाद।

डॉ. प्रदीप आगलावे जी का किन शब्दों में धन्यवाद करूं, उनकी शान में उपयुक्त शब्द ही नहीं मिल रहे। उन्होंने इस ग्रंथ के लिए सारगर्भित 'प्रस्तावना' लिख कर हमारे प्रयास का गौरव ही बढ़ाया है। उनके लिए हृदय से आभार व्यक्त करता हूं।

बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर द्वारा लिखित अन्य पुस्तकों के हिंदी अनुवाद भी प्रकाशनाधीन हैं। एक-एक करके बहुत सुंदर रूप में ये सभी पुस्तकें हमारे जागरूक पाठक वर्ग के सम्मुख प्रकट होने वाली हैं। सम्यक प्रकाशन अपनी पुस्तकों को और अधिक उपयोगी किस प्रकार बना सकता है, इस सम्बंध में भी हमारे पाठकगण हमारा मार्गदर्शन करें तो अत्युत्तम होगा। **इसी आशा और अनुरोध के साथ सभी पाठकों को सादर जयभीम।**

**भवतु सब्बमंगलं।**

**–शान्ति स्वरूप बौद्ध**

## बाबा साहेब डॉ. बी.आर. आंबेडकर

एम.ए., पी-एच.डी. (कोलम्बिया), डी.एससी. (लण्डन), एलएल.डी. (कोलम्बिया),
डी.लिट्. (उस्मानिया), बार-ॲट-लॉ (लण्डन), भारतरत्न

**जन्म : 14 अप्रैल 1891** **परिनिर्वाण : 6 दिसम्बर 1956**

# प्राक्कथन

इस समय शूद्रों पर जो भी साहित्य उपलब्ध है, उसे देखते हुए इस विषय पर किसी पुस्तक को निरर्थक नहीं माना जा सकता। और, यह भी नहीं कहा जा सकता कि इसमें किसी छोटी-मोटी समस्या का विवेचन किया गया है। यह एक आम धारणा है कि भारतीय-आर्यों का सामाजिक संगठन चातुर्वर्ण्य के सिद्धांत पर आधारित था और चातुर्वर्ण्य का अर्थ होता है समाज का चार वर्गों—ब्राह्मण (पुरोहित), क्षत्रिय (सैनिक), वैश्य (व्यापारी) और शूद्र (दास) में विभाजन। किंतु इससे शूद्रों की समस्या की वास्तविकता अथवा व्यापकता का कोई अनुमान नहीं होता। यदि चातुर्वर्ण्य का मतलब केवल चार वर्गों में समाज का विभाजन ही होता, तो भी यह एक निरापद सिद्धांत रहा होता। किंतु दुर्योगवश, चातुर्वर्ण्य का सिद्धांत बस यहीं तक सीमित नहीं है। यह सिद्धांत समाज को चार श्रेणियों में तो बांटता ही है, बल्कि उससे भी आगे बढ़कर यह वर्गीकृत असमानता को चारों वर्णों के बीच जीवन की संबद्धता की शर्तें तय करने का आधार भी बनाता है। और फिर, वर्गीकृत असमानता का सम्बंध केवल धारणा से नहीं है। यह वैधानिक और दंडात्मक है। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में, शूद्रों को सबसे निचले पायदान पर तो रखा ही गया, उन पर असंख्य कलंक और अयोग्यताएं भी लाद दी गईं जिससे वे अपने लिए निर्धारित नियमों से ऊपर उठ ही न पाएं। वस्तुतः, जब तक अछूतों का पांचवां वर्ण अस्तित्व में नहीं आया था, तब तक हिंदुओं की दृष्टि में शूद्र लोग निचलों में भी सबसे नीचे थे। इससे शूद्रों की कथित समस्या की प्रकृति का पता चलता है। लोगों को इस समस्या की व्यापकता का कोई अनुमान यदि नहीं है, तो इसका कारण यह है कि उन्होंने शूद्रों की जनसंख्या को जानने की जरूरत ही नहीं समझी। दुर्योगवश, जनगणना में उनकी संख्या को अलग से नहीं दर्शाया जाता। किंतु, इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि अछूतों को छोड़ दें तो हिंदुओं की जनसंख्या का लगभग 75 से 80 प्रतिशत शूद्र हैं। इतनी विशाल जनसंख्या के विषय में लिखे गए किसी ग्रंथ के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें तो एक छोटी-सी समस्या का विवेचन किया गया है।

इस पुस्तक में भारतीय आर्य-समुदाय में विद्यमान शूद्रों की विवेचना की गई है। एक मत यह भी है इन प्रश्नों की पड़ताल का कोई समकालीन महत्त्व नहीं है। यह बात किसी और ने नहीं मान्यवर शेरिंग जैसे व्यक्ति ने अपनी पुस्तक **हिंदू ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स**[1] में कही है कि—

"इस बात का कोई व्यावहारिक महत्त्व नहीं है कि शूद्र लोग आर्य थे,

1. *खंड-1, भूमिका, पृष्ठ XXI*

अथवा भारत के मूलनिवासी, अथवा इन दोनों के संसर्ग से उत्पन्न होने वाली जनजातियां। एक प्रारंभिक काल में वे स्वयं एक वर्ग में स्थित थे और उन्हें चौथी अथवा अंतिम श्रेणी प्राप्त थी, फिर भी उन्हें तीनों श्रेष्ठतर जातियों से पर्याप्त दूसरी पर रखा जाता था। हालांकि यह मान भी लिया जाता है कि प्रारंभ में वे आर्य नहीं थे, फिर भी तीनों आर्य जातियों के साथ अपने व्यापक अंतरविवाहों के कारण वे इतने अधिक आर्य बन गए हैं कि पूर्वोक्त जैसे कुछ उदाहरणों में, उन्होंने जितना खोया है उससे कहीं अधिक पाया भी है, और आज शूद्र कही जाने वाली कुछ जनजातियां वास्तव में कुछ और न होकर ब्राह्मण और क्षत्रिय ही हैं। संक्षेप में, वे अन्य प्रजातियों में इतने अधिक घुल-मिल गए हैं जितनी कि इंग्लैंड की सोल्टिक जनजातियां ऐंग्लो-सैक्सन प्रजाति (नस्ल) में घुल-मिल गई हैं; और उनकी अपनी अलग वैयक्तिकता यदि वह कभी रही भी थी, तो पूरे तौर पर लुप्त हो चुकी है।''

यह मत दो त्रुटियों पर आधारित है। पहली, आज के शूद्र विषम जातीय संततियों से निकली जातियों का समूह है और प्रजाति के स्तर पर भारतीय-आर्य समुदाय के मूल शूद्रों से भिन्न हैं। दूसरी, शूद्रों के मामले में रुचि का केंद्रीय विषय शूद्र 'जन' नहीं हैं बल्कि पीड़ा और दंड की वह वैधानिक व्यवस्था है जिसका शिकार वे बनते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि पीड़ा और दंड की यह व्यवस्था ब्राह्मणों ने मूल रूप में भारतीय-आर्य समुदाय के शूद्रों के लिए बनाई थी, जो अब एक भिन्न, पृथक, अलग पहचान रखने वाले समुदाय के रूप में अस्तित्वहीन हो चुके हैं। किंतु यह विचित्र लग सकता है कि उनसे व्यवहार के लिए जो 'संहिता' बनी थी वह आज भी सक्रिय बनी हुई है और उसे अब निचले वर्ग के सभी हिंदुओं पर लागू किया जाता है जिनका मूल शूद्रों से कोई नाता नहीं है। यह सब कैसे हुआ, यह सभी के लिए जिज्ञासा का विषय होना चाहिए। मेरी व्याख्या यह है कि कालांतर में भारतीय-आर्य समुदाय को शूद्र कठोर ब्राह्मणी नियमों के कारण इतने अवनत (पतित) हो गए कि सार्वजनिक जीवन में वे सचमुच बहुत नीची स्थिति में आ गए। इसके दो परिणाम हुए एक परिणाम तो यह हुआ कि शूद्र शब्द का अर्थ ही बदल गया। पहले जो शूद्र शब्द का अर्थ 'एक समुदाय विशेष का नाम' होता था, उसका वह मूल अर्थ जाता रहा, और यह निचले वर्गों का एक आम नाम हो गया जिनकी न कोई सभ्यता थी, न संस्कृति, न सम्मान और न कोई हैसियत। इसका दूसरा परिणाम यह हुआ कि शूद्र शब्द का अर्थ व्यापक हो जाने से संहिता का प्रयोग भी व्यापक हो गया। यही कारण है कि आज के तथाकथित शूद्र मूल अर्थ में शूद्र न होते हुए भी इस संहिता के दायरे में आ गए हैं। जो भी हो, सच आज भी यही है कि जो संहिता मूल दोषियों के लिए बनी थी वह अब निर्दोषों पर लागू हो गई है। हिंदू विधिकारों में यदि समुचित ऐतिहासिक बोध होता और वे यह समझ पाते कि मूल शूद्र आज के निम्नवर्गीय लोगों से भिन्न थे, तो इस त्रासदी—निर्दोषों के इस नरसंहार—को

टाला जा सकता था। सच कितना भी अशुभ क्यों न हो, किंतु सच यही है कि संहिता को आज के शूद्रों पर उनती ही कठोरता से लागू किया जाता है जिनता मूल शूद्रों पर किया जाता था। इसलिए, यह संहिता अस्तित्व में कैसे आई, यह बात आज के शूद्रों के लिए केवल प्राचीनता में उनकी रुचि का ही विषय नहीं है।

जहां यह स्वीकार किया जा सकता है कि शूद्रों की उत्पत्ति का अध्ययन एक स्वागत योग्य प्रयास है, वहीं कुछ लोग इस विषय की विवेचना के संदर्भ में मेरी योग्यता पर उंगली उठा सकते हैं। मुझे पहले ही यह चेतावनी मिल चुकी है कि मुझे भारतीय राजनीति पर बोलने का अधिकार तो हो सकता है किंतु धर्म और भारत का धार्मिक इतिहास मेरा क्षेत्र नहीं है और मुझे इसमें आना ही नहीं चाहिए। मैं नहीं जानता कि मेरे अलोचकों ने मुझे यह चेतावनी देनी जरूरी क्यों समझी। यदि उन्होंने एक चिंतक अथवा लेखक के रूप में मेरे किसी अतिशय दावे के तोड़ के तौर पर इसका इस्तेमाल किया है तो यह अनावश्यक है। क्योंकि मैं यह स्वीकार करने को तैयार हूं कि मैं तो भारतीय राजनीति पर बोलने की भी योग्यता नहीं रखता। यदि उनकी इस चेतावनी का कारण यह है कि मैं संस्कृत भाषा में पारंगत नहीं हूं, तो मैं अपनी इस कमी को मानता हूं। किंतु मेरी समझ में यह नहीं आता कि इस कारण से मैं इस क्षेत्र के लिए सर्वथा अयोग्य कैसे हो जाता हूं। संस्कृत भाषा में ऐसा बहुत कम साहित्य है जो अंग्रेजी में उपलब्ध नहीं है। इसलिए संस्कृत के ज्ञान का अभाव वर्तमान विषय की विवेचना के संदर्भ में मेरे लिए बाधक नहीं हो सकता। क्योंकि मैं यह कहने का साहस कर सकता हूं कि अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से ही सही, 15 वर्षों तक इस विषय से संबद्ध साहित्य का अध्ययन मेरे जैसे मध्यम बुद्धि के व्यक्ति को इस काम के लिए समुचित योग्यता देने को पर्याप्त है। जहां तक इस विषय पर बोलने की मेरी ठीक-ठीक योग्यता का सवाल है तो उसका सर्वोत्तम साक्ष्य तो यह पुस्तक ही देगी। मेरा यह प्रयास शायद इस कहावत को सिद्ध करेगा कि जहां फरिश्ते जाने से डरते हैं, वहां मूर्ख दौड़कर पहुंचते हैं। किंतु मेरी मान्यता यह है कि मूर्ख का भी एक कर्तव्य होता है, अर्थात यदि फरिश्ता सोने चला गया है या फिर सच को सामने लाना नहीं चाहता तो फिर मूर्ख का यह दायित्व हो जाता है कि वह अपना काम करे। वर्जित क्षेत्र में अपने प्रवेश को मैं इसी प्रकार उचित ठहराता हूं।

इस पुस्तक में ऐसा क्या है जो उल्लेखनीय है? निस्संदेह वे निष्कर्ष जिन पर मैं अपनी छानबीन के फलस्वरूप पहुंचा हूं। इस पुस्तक में दो सवाल उठाए गए हैं–(1) शूद्र कौन थे? और (2) वे भारतीय-आर्य समुदाय का चौथा वर्ण कैसे बने? मेरे अनुसार इन सवालों के जवाब संक्षेप में इस प्रकार हैं–

1. शूद्र सूर्यवंशी आर्य समुदायों में से थे।
2. एक समय था जब आर्य समुदाय केवल तीन वर्णों, अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को मान्यता देता था।

3. शूद्र एक अलग वर्ण के सदस्य नहीं थे। भारतीय-आर्य समुदाय में वे क्षत्रिय वर्ण का अंग थे।
4. शूद्र राजाओं और ब्राह्मणों में निरंतर झगड़ा रहता था जिसमें ब्राह्मणों को अनेक अत्याचार और अपमान झेलने पड़ते थे।
5. शूद्रों के अत्याचारों और दमन के कारण उनके प्रति उपजी घृणा के फलस्वरूप ब्राह्मणों ने शूद्रों का उपनयन करने से मना कर दिया।
6. जब ब्राह्मणों ने उपनयन से मना कर दिया तो शूद्र, जो क्षत्रिय थे, सामाजिक स्तर पर अवनत हो गए, वैश्यों से नीचे की श्रेणी में आ गए और इस प्रकार चौथा वर्ण बन गया।

मैं निश्चय ही इन निष्कर्षों पर विद्वानों के निर्णय की प्रतीक्षा करूंगा। यह स्पष्ट है ही कि ये निष्कर्ष केवल मौलिक ही नहीं हैं बल्कि प्रचलित निष्कर्षों के घोर विरोधी भी हैं। इन निष्कर्षों को स्वीकार किया जाएगा या नहीं, यह उस व्यक्ति की मानसिकता पर निर्भर करेगा जो इस मुद्दे पर निर्णय करने का दावा करता है। निश्चय ही, यदि उसका लगाव किसी विशिष्ट सिद्धांत से है तो वह मेरे निष्कर्षों को अमान्य करार देगा। किंतु मैं उसके निर्णय की परवाह नहीं करूंगा क्योंकि वह तो एक विरोधी ही हुआ जिससे विरोध के अतिरिक्त और किसी बात की अपेक्षा भी नहीं की जा सकती। किं्‌ यदि वह एक ईमानदार आलोचक हुआ और तथ्यों को स्वीकार करने को तत्पर और खु ो दिमाग वाला हुआ तो फिर वह कितना भी सतर्क और रूढ़िवादी क्यों न हो मैं उसे अपने दृष्टिकोण से सहमत करने के प्रति हताश नहीं हूं। मेरी यह अपेक्षा शायद पूरी न हो, किंतु एक बात को लेकर तो मैं पूरे तौर पर निश्चित हूं। मेरे आलोचकों को यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इस पुस्तक में विषय को नए सिरे से समझने और नई दृष्टि से देखने का प्रचुर उपक्रम हुआ है।

विद्वानों के अतिरिक्त, हिंदू जन-साधारण की इस पुस्तक पर क्या प्रतिक्रिया होगी यह भी एक रोचक अटकलबाजी हो सकती है। आज के हिंदू पांच निश्चित वर्गों में विभाजित हैं। हिंदुओं का एक वर्ग है जिन्हें पुरातनपंथी कहा जाता है, और वे यह कभी स्वीकार नहीं करेंगे कि हिंदू समाज-व्यवस्था में कुछ भी गलत है। सुधार की बात करना उनकी दृष्टि में ईश-निंदा के बराबर है। हिंदुओं का एक वर्ग आर्य समाजी कहलाता है। ये लोग वेदों और केवल वेदों में विश्वास करते हैं। ये पुरातनपंथियों से इस मायने में भिन्न हैं कि वे उस हर बात को त्याज्य मानते हैं जो वेदों में नहीं है। उनका सुसमाचार है कि वेदों की ओर लौटो। हिंदुओं का एक वर्ग है जो यह तो स्वीकार करेगा कि हिंदू समाज-व्यवस्था में सब कुछ गलत है, किंतु इन लोगों का मानना है कि इस पर प्रहार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उनका तर्क यह है कि कानून क्योंकि इसे मान्यता नहीं देता इसलिए यह एक मृत नहीं, तो मृतप्राय व्यवस्था तो है ही। हिंदुओं का एक वर्ग है जिसमें राजनीतिक मानसिकता वाले लोग हैं। वे इन सवालों से कोई सरोकार नहीं रखते। उनकी दृष्टि में समाज सुधार से

अधिक महत्त्वपूर्ण स्वराज है। हिंदुओं के पांचवें वर्ग में वे लोग आते हैं जो तर्कबुद्धिवादी हैं और समाज सुधारों को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं, स्वराज से भी अधिक महत्त्वपूर्ण।

दूसरी श्रेणी में आने वाले हिंदुओं की ओर से संभावना यही है कि वे इस पुस्तक को अनावश्यक मानेंगे, और उनसे मैं सहमत नहीं हो सकता। एक प्रकार से उनका यह कहना ठीक ही है कि ब्रिटिश भारत का मौजूदा कानून हिंदू समाज में प्रचलित जाति व्यवस्था को मान्यता नहीं देता। यह सच है कि 'सिविल प्रक्रिया संहिता' की धारा 11 में ऐसी व्यवस्था है कि कोई भी हिंदू किसी दीवानी अदालत से इस प्रकार का घोषणा-पत्र प्राप्त नहीं कर सकता कि वह किसी वर्ण विशेष का सदस्य है। ब्रिटिश भारत में यदि अदालतों को यह विचार करना ही होता है कि कोई व्यक्ति किसी वर्ण विशेष का सदस्य है या नहीं, जो ऐसा केवल विवाह, उत्तराधिकार और गोद लेने के मामले में होता है, जिसके नियम अलग-अलग वर्ण में अलग-अलग होते हैं। जहां यह बात सही है कि ब्रिटिश भारत का कानून हिंदुओं के चार वर्णों को मान्यता नहीं देता, वहीं हमें सतर्क रहते हुए इसका गलत अर्थ नहीं निकालना चाहिए। सटीक तौर पर कहें तो (1) इसका अर्थ यह नहीं है कि वर्ण-व्यवस्था का पालन एक अपराध है; (2) इसका अर्थ यह नहीं है कि वर्ण-व्यवस्था लुप्त हो चुकी है; (3) इसका अर्थ यह नहीं है कि वर्ण-व्यवस्था का अनुप्रयोग उन मामलों में नहीं किया जाता जहां इसके नियमों का पालन नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए आवश्यक होता है; (4) इसका अर्थ केवल यह है कि वर्ण-व्यवस्था के पीछे जो कानूनी स्वीकृति को वापस ले लिया गया है। अब, सामाजिक संस्थाओं को अस्तित्व के लिए मात्र कानूनी स्वीकृति ही आवश्यक नहीं है। संस्थाएं दूसरी स्वीकृतियों पर भी जीवित रहती हैं। इनमें, धार्मिक स्वीकृति और सामाजिक स्वीकृति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। वर्ण-व्यवस्था को धार्मिक स्वीकृति प्राप्त है। धार्मिक स्वीकृति प्राप्त होने के कारण, वर्ण-व्यवस्था को हिंदू समाज की पूरी सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है। कोई कानूनी निषेध न होने के कारण, यह धार्मिक स्वीकृति वर्ण-व्यवस्था को पूरे निखार पर बनाए रखने के लिए पर्याप्त से भी अधिक रही है। वर्ण-व्यवस्था किसी प्रभावी कानून के अभाव में भी अस्तित्वमान है, इसका सबसे अच्छा प्रमाण इस तथ्य में मिलता है कि हिंदू समाज में शूद्रों और अछूतों की हैसियत जस की तस बनी हुई है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि प्रस्तुत अध्ययन अनावश्यक है।

जहां तक राजनीतिक मानसिकता वाले हिंदू का सवाल है, तो उसे गंभीरता से लेने की जरूरत ही नहीं है। उसकी विचारधारा में दूरदृष्टि का अभाव है। उसकी आकांक्षा यह रहती है कि वह कम से कम प्रतिरोध वाली लीक पर चले और यदि किसी मामले से उसके अलोकप्रिय होने की आशंका बनती है तो वह चाहे कितना भी आवश्यक हो वह उसे टाल ही देना चाहता है। इसलिए, यदि राजनीतिक मानसिकता वाला हिंदू इस पुस्तक को बवाल मानता है तो इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है।

यह पुस्तक आर्य समाजियों को बहुत कष्ट पहुंचाने वाली है। मेरे निष्कर्ष दो सर्वाधिक

महत्त्वपूर्ण बिंदुओं पर उनकी विचारधारा के धुर विरोधी हैं। आर्य समाजी यह विश्वास करते हैं कि भारतीय-आर्य समुदाय के चार वर्ण आदि काल से ही अस्तित्व में रहे हैं। इस पुस्तक में यह स्पष्ट किया गया है कि एक समय था जब भारतीय-आर्य समुदाय में केवल तीन वर्ण थे। आर्य समाजी यह मानते हैं कि वेद शाश्वत और पवित्र हैं। इस पुस्तक में यह स्पष्ट किया गया है कि वेदों के कुछ अंश, विशेषकर वह 'पुरुष सूक्त' जो आर्य समाजियों का मूलाधार है, ब्राह्मणों ने अपने लाभ के लिए गढ़े हैं। ये दोनों निष्कर्ष निश्चय ही आर्य समाजियों की मान्यताओं पर ऐटम बम का काम करेंगे।

मुझे आर्य समाजियों के साथ इस टकराव पर कोई खेद नहीं है। आर्य समाजियों ने हिंदू समाज को एक जड़ समाज बनाकर बहुत अनर्थ किया है, क्योंकि उन्होंने यह प्रचारित किया है कि वेद शाश्वत हैं, अनादि हैं, अनंत हैं, अचूक हैं, और हिंदुओं की सामाजिक संस्थाएं भी वेदों पर आधारित होने के कारण शाश्वत, अनादि, अनंत, अचूक हैं और इसलिए उनमें किसी परिवर्तन की जरूरत नहीं है। किसी समुदाय में ऐसी मान्यता व्याप्त होना उसके लिए सबसे बुरी बात है। मैं इस बारे में आश्वस्त हूं कि हिंदू समाज स्वयं को सुधारने की आवश्यकता को तब तक स्वीकार नहीं करेगा जब तक इस आर्य समाजी विचारधारा को पूरे तौर पर नष्ट नहीं कर दिया जाता। यदि और कोई नहीं, तो यह पुस्तक तो यह काम करती ही है।

पुरातनपंथी हिंदू इस पुस्तक के बारे में क्या कहेगा, इसकी कल्पना मैं अच्छी तरह से कर सकता हूं क्योंकि उससे तो मैं इन तमाम वर्षों में लड़ता ही रहा हूं। बस एक बात जो मुझे नहीं मालूम थी वह यह है कि भीरू और अहिंसक दिखने वाला हिंदू उस समय कैसे हिंसक हो सकता है जब कोई व्यक्ति उसके पवित्र ग्रंथों की आलोचना करता है। मुझे इसका अभूतपूर्व ज्ञान तब हुआ जब पिछले वर्ष मेरे पास उन कुपित हिंदुओं के पत्रों का तांता लग गया, जो इस विषय पर मद्रास में दिए गए मेरे भाषण से अपना संतुलन ही खो बैठे थे। ये पत्र मुझे मार डालने की धमकियों से और ऐसी गंदी गालियों से भरे थे जो न तो बताने योग्य हैं और न छापने योग्य। पिछली बार तो उन्होंने मुझे यह अपराध पहली बार करने वाला मानते हुए मुझे बस धमकियां देकर छोड़ दिया था। इस बार पता नहीं वे क्या करेंगे। क्योंकि यह पुस्तक पढ़ने के बाद तो पक्का है कि उन्हें कुपित होने का और भी कारण मिल जाएगा, क्योंकि उनकी दृष्टि में मैंने इस अपराध को और भी गंभीरता से दोहराया है और अध्याय तथा पद को उद्धृत करके यह स्पष्ट कर दिया है कि पवित्र ग्रंथों के नाम पर इनमें ऐसी मनगढ़ंत बातें लिखी गई हैं जो नीयत के स्तर पर राजनीतिक, रचना के स्तर पर पक्षपातपूर्ण और उद्देश्य के स्तर पर छल-कपट से भरी हैं। उनकी निंदाओं अथवा उनकी धमकियों पर ध्यान देने का मेरा कोई इरादा नहीं है। क्योंकि मुझे अच्छी तरह से पता है कि वे अधम लोग हैं जिन्होंने अपने धर्म का बचाव करने के बहाने उसे धंधे का विषय बना दिया है। जितने स्वार्थी वे हैं उतना दुनिया में और कोई प्राणी-समूह नहीं है,

और वे अपने निहित वर्गीय हितों को साधने के लिए अपनी बुद्धि का छिनाला कर रहे हैं (उसे बेच रहे हैं)। यह कोई कम आश्चर्य का विषय नहीं है कि जब पुरातनपंथ के पागल कुत्तों को किसी ऐसे व्यक्ति पर छोड़ दिया जाता है जिसमें हिंदुओं के तथाकथित पवित्र ग्रंथों के खिलाफ आवाज बुलंद करने की हिम्मत है, तो ऊंचे आसनों (पदों) पर बैठे और अत्यधिक शिक्षित होने का दावा करने वाले जाने-माने हिंदू पक्षपात पर उतर आते हैं और इस हो-हल्ले में शामिल हो जाते हैं, जबकि उनसे स्वार्थमुक्त रहने और स्वतंत्र तथा खुला दिमाग रखने की अपेक्षा की जाती है। यहां तक कि उच्च न्यायालयों के हिंदू जज और भारतीय राज्यों (रियासतों) के हिंदू प्रधानमंत्री भी इस किस्म के लोगों में शामिल होने में संकोच नहीं करते। वे तो इससे भी आगे बढ़ जाते हैं। वे उस व्यक्ति के खिलाफ मचने वाली चीख-पुकार में तो सबसे आगे रहते ही हैं, उसके शिकार में भी शामिल हो जाते हैं। इसमें स्तब्ध करने वाली बात यह है कि ये लोग ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि उन्हें विश्वास होता है कि जीवन में उनके ऊंचे दर्जे के कारण उनकी बात में ऐसा आतंक होगा कि पुरातनपंथ का विरोध करने वाला कोई भी और प्रत्येक व्यक्ति डर जाएगा। मैं इन भलेमानुसों से यही कहना चाहूंगा कि उनका कोप मुझे नहीं रोक पाएगा। शायद उन्हें डॉ. जॉनसन के इन सारगर्भित और प्रभावशाली शब्दों की जानकारी नहीं है जो उन्होंने तब कहे थे जब वह ऐसी ही स्थिति में पड़ गए थे। उन्होंने कहा था, 'एक गुंडे की धमकियां मुझे एक धोखेबाज को पकड़ने से नहीं रोक पाएंगी।' मैं उच्च पदों पर आसीन इन अलोचकों के प्रति धृष्ट नहीं होना चाहता, और मैं यह भी नहीं कहूंगा कि वे एक धोखेबाज को बचाने के इच्छुक एक गुंडे की भूमिका निभा रहे हैं। किंतु मैं उनसे दो बातें कहूंगा—पहली तो यह कि चाहे जो भी हो जाए मैं पवित्र ग्रंथों की कलई खोलकर ऐतिहासिक सत्य को सामने लाने के अपने प्रयास में डॉ. जॉनसन के संकल्प को ही लेकर चलूंगा ताकि हिंदुओं को यह पता चल जाए कि उनके पवित्र ग्रंथों में निहित सिद्धांत ही उनके देश और उनके समाज की अवनति और उसके पतन के लिए जिम्मेदार हैं; दूसरी यह कि यदि इस पीढ़ी के हिंदू मेरी कही बातों पर ध्यान नहीं देते, तो मुझे पूरा विश्वास है कि भावी पीढ़ी तो ध्यान देगी ही। मैं सफलता के प्रति हताश नहीं हूं। क्योंकि कवि भवभूति के इन शब्दों में मुझे सांत्वना मिलती है, ''समय अनंत है और पृथ्वी विशाल, किसी दिन उत्पन्न होगा वह व्यक्ति जो मेरे कहे का मूल्यांकन करेगा।'' चाहे इसका जो भी अर्थ हो, यह पुस्तक पुरातनपंथ के लिए एक चुनौती है।

हिंदुओं के जिस एकमात्र वर्ग की ओर से इस पुस्तक का स्वागत होने की संभावना है वे लोग हैं जो समाज सुधार की आवश्यकता और अनिवार्यता में विश्वास करते हैं। उनकी राय में इस समस्या को इस आधार पर आगे के लिए टालने का कोई औचित्य नहीं है कि यह एक ऐसी समस्या है जिसके समाधान में निश्चय ही एक लंबा समय लग जाएगा और इसके लिए आने वाली कई पीढ़ियों के प्रयासों की दरकार होगी। एक घोर हिंदू

राजनीतिज्ञ भी, यदि यह ईमानदार है तो, यह स्वीकार करेगा कि सांप्रदायिकता का जो घातक स्वरूप हिंदू समाज के संगठन में अंतर्निहित है और जिसे राजनीतिक मानसिकता वाले हिंदू जान-बूझकर अनदेखा और निलंबित करना चाहते हैं, इस सांप्रदायिकता से पैदा होने वाली समस्याएं हर मोड़ पर उन्हीं राजनीतिज्ञों को संकट में डालने के लिए लौट-लौट आती हैं। ये समस्याएं तत्क्षण की कठिनाइयां नहीं हैं। ये हमारी स्थाई कठिनाइयां हैं, अर्थात प्रति क्षण की कठिनाइयां हैं। मुझे यह जानकर प्रसन्नता होती है कि हिंदुओं का ऐसा वर्ग विद्यमान है। इनकी संख्या कम हो सकती है, किंतु वे मेरा मुख्य आधार हैं और मेरा तर्क उन्हीं को सम्बोधित है।

यह कहा जाएगा कि मैंने हिंदुओं के पवित्र साहित्य के प्रति कोई सम्मान नहीं दिखाया है, जिसका हकदार प्रत्येक पवित्र साहित्य होता है। यदि यह आरोप सही है, तो मैं स्वयं को उचित ठहराने के लिए दो परिस्थितियों को दलील के तौर पर पेश कर सकता हूं। पहले तो मेरा यह दावा है कि अपने शोध में मैंने इतिहासकारों की सर्वोत्तम परंपरा का अनुसरण किया है जो हर साहित्य को 'लौकिक' अर्थात लोक (जन साधारण) से सम्बंधित मानते हैं, जिसे सत्यान्वेषण के उद्देश्य को सामने रखते हुए प्रमाण के मान्य नियमों द्वारा जांचना-परखना होता है, और इस प्रक्रिया में पवित्र और अपवित्र का कोई भेद नहीं किया जाता। यदि इस परंपरा का अनुसरण करते हुए ऐसा देखा जाता है कि मैंने हिंदुओं के पवित्र ग्रंथों का आदर-सम्मान नहीं किया है, तो इस संदर्भ में मेरा बचाव यही है कि मैंने एक अध्येता का कर्तव्य निभाया है। दूसरे, पवित्र ग्रंथों के आदर-सम्मान को किसी पर थोपा नहीं जा सकता। ये तो उन सामाजिक कारणों के परिणाम होते हैं जिनके चलते एक मामले में ये भावनाएं स्वाभाविक हो जाती हैं तो दूसरे में नितांत अस्वाभाविक। हिंदुओं के पवित्र ग्रंथ के प्रति आदर-सम्मान एक ब्राह्मण विद्वान के लिए तो स्वाभाविक हो सकता है। किंतु एक गैर-ब्राह्मण विद्वान में यही भावना नितांत अस्वाभाविक होगी। इस अंतर को बहुत आसानी से समझा जा सकता है। यह अपेक्षित ही होगा कि एक ब्राह्मण विद्वान अपने पवित्र ग्रंथों को आलोचना-मुक्त श्रद्धा की दृष्टि से देखेगा और इसके प्रति, मात्र एक शिक्षित व्यक्ति की नहीं बल्कि, एक बुद्धिजीवी की उदासीनता के साथ निष्ठुर होना नहीं चाहेगा। क्योंकि यह पवित्र साहित्य है भी क्या? यह वह साहित्य है जो पूरा का पूरा ब्राह्मणों द्वारा रचा गया है। दूसरे, इसका एकमात्र उद्देश्य ही है तो ब्राह्मणों की अपेक्षा ब्राह्मणों की श्रेष्ठता और विशेषाधिकारों को बनाए रखना। फिर ब्राह्मण ऐसे साहित्य की पवित्रता की हिमायत क्यों नहीं करना चाहेंगे? और ब्राह्मण जिस कारण से इसकी हिमायत करता है, गैर-ब्राह्मण उसी कारण से इससे घृणा करता है। गैर-ब्राह्मणों को पता है कि जिसे पवित्र साहित्य कहा जाता है उसमें एक ऐसा घृणित सामाजिक दर्शन निहित है जो उनकी सामाजिक अवनति के लिए जिम्मेदार है, और इसलिए उनकी प्रतिक्रिया इस साहित्य के प्रति ब्राह्मणों से सर्वथा विपरीत होती है। यदि यह बात ध्यान में रखी जाए कि मैं एक गैर-ब्राह्मण हूं, और गैर-ब्राह्मण ही

नहीं बल्कि एक अछूत हूं, तो मुझमें हिंदुओं के पवित्र ग्रंथों के प्रति आदर और श्रद्धा के अभाव को लेकर किसी को चकित नहीं होना चाहिए। पवित्र ग्रंथों के प्रति मेरा विरोध भाव अथवा मेरी घृणा स्वाभाविक तौर पर किसी गैर-ब्राह्मणों की घृणा से कम नहीं हो सकती। जैसा कि प्रो. थॉर्नडाइक ने कहा है—यह एक जैविक सत्य है कि व्यक्ति सोचता है, और वह क्या सोचता है यह एक सामाजिक सत्य है।

हिंदुओं के सामाजिक इतिहास की समस्याओं के अध्ययन के लिए सामग्री के मुख्य स्रोत इन पवित्र ग्रंथों के प्रति एक ब्राह्मण अध्येता का रवैया आलोचना-मुक्त प्रशंसा का होता है और हर गैर-ब्राह्मण अध्येता का रवैया घोर निंदा का, और मैं जानता हूं कि इन दोनों के रवैये की यह भिन्नता ऐतिहासिक शोध के लिए अत्यधिक हानिकारक है।

ब्राह्मण अध्येताओं ने ऐतिहासिक अनुसंधान के साथ जो छेड़छाड़ की है वह स्पष्ट है। इन ग्रंथों की पवित्रता को बनाए रखने में ब्राह्मण विद्वान का दोहरा हित है। सबसे पहले तो उसके पूर्वजों की रचना होने के कारण उसका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह सत्य की कीमत पर भी इस साहित्य का बचाव करे। दूसरे यह कि इसमें ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों का समर्थन है, इसलिए वह ऐसा कुछ भी नहीं करने का सतर्क प्रयास करता है जिससे इस साहित्य की प्रामाणिकता नष्ट हो सकती है। जिस व्यवस्था के विषय में उसे पता है कि इससे उसे लाभ होना है उस व्यवस्था को बनाए रखने की आवश्यकता, और उन व्यवस्था के संस्थापकों के रूप में अपने पूर्वजों की प्रतिष्ठा को बनाए रखने की आवश्यकता एक ऐसे अव्यक्त कलंकरहित आधार-सिद्धांत के रूप में कार्य करती है जो ब्राह्मण अध्येता के दिमाग में हमेशा विद्यमान रहता है और उसे सत्य तक पहुंचने अथवा उसकी शिक्षा करने से रोक देता है। इसीलिए, यदि तिथियों के निर्धारण और वंशावली की खोज को छोड़ दें तो, ऐतिहासिक अनुसंधान के क्षेत्र में ब्राह्मणों का किया ऐसा शायद ही कोई काम मिलता है जो मौलिक है। गैर-ब्राह्मण अध्येता के लिए ऐसी कोई सीमा नहीं होती और इसलिए वह सत्य की निर्मम खोज के लिए स्वतंत्र होता है। यह मात्र अटकल नहीं है कि ऐसा अंतर, ऐसी भिन्नता अध्येताओं के इन दो वर्गों में मौजूद है। यह पुस्तक इसका सटीक उदाहरण है। इसमें शूद्रों के विरुद्ध होने वाले षडयंत्र के असली चरित्र को उजागर किया गया है, जिसे प्रस्तुत करने का साहस कोई ब्राह्मण विद्वान नहीं कर सकता था।

जहां यह बात सही है कि एक गैर-ब्राह्मण अध्येता ब्राह्मण अध्येता के प्रतिबंधों से मुक्त होता है, वहीं इस बात की भी संभावना रहती है कि वह दूसरे छोर पर जाकर इस पूरे साहित्य को दंतकथाओं और कल्पित साहित्य के रूप में देखेगा, जो घूरे में फेंक देने लायक तो होगा किंतु गंभीर अध्ययन के योग्य नहीं होगा। यह इतिहासकार की भावना नहीं है। जैसा कि ठीक ही कहा गया है, इतिहासकार को सटीक, ईमानदार और निष्पक्ष होना चाहिए; उसे आवेग से मुक्त, और स्वार्थ, भय, आक्रोश अथवा स्नेह के संदर्भ में पक्षपात रहित होना चाहिए; और उसे इतिहास के जनक अर्थात सत्य के प्रति निष्ठावान, महान

कार्यों का संरक्षक, गुमनामी का शत्रु, अतीत का साक्षी, और भविष्य का निर्देशक होना चाहिए। संक्षेप में, उसके पास खुला दिमाग होना चाहिए, जो खाली दिमाग नहीं भी हो सकता, और उसे तमाम प्रमाणों की जांच के लिए तत्पर होना चाहिए भले ही वे नकली हों। गैर-ब्राह्मण के लिए इतिहासकार की इस भावना के प्रति ईमानदार बने रहना मुश्किल हो सकता है। प्राचीन साहित्य की सत्यता अथवा असत्यता की जांच करते समय वह गैर-ब्राह्मणी राजनीति का समावेश करने की संभावना उसकी ओर से बनी रहती है। मुझे विश्वास है कि अपने अनुसंधान में मैंने अपने आपको इस प्रकार के पूर्वग्रह से मुक्त रखा है। शूद्रों के विषय में लिखते समय मेरे दिमाग में विशुद्ध साहित्य के अलावा और कोई विचार नहीं रहा। यह सुविदित है कि इस देश में एक गैर-ब्राह्मणी आंदोलन है जो शूद्रों का राजनीतिक आंदोलन है। यह भी सुविदित है कि मैं इस आंदोलन से जुड़ा रहा हूं। किंतु, मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि पाठक इस पुस्तक को पढ़ेंगे तो देखेंगे कि मैंने इसे गैर-ब्राह्मणी राजनीति का प्राक्कथन नहीं बनाया है।

मुझे इस बात का एहसास है कि पुस्तक की विषय-वस्तु की प्रस्तुति में अनेक गलतियां हुई हैं। इसमें उद्धरणों की भरमार है, जो बहुत लंबे और बहुत अधिक संख्या में हैं। यह पुस्तक कोई कलात्मक रचना नहीं है और यह संभव है कि पाठक इसे पढ़ते हुए ऊब जाएं। किंतु यह गलती सारी की सारी मेरी ही नहीं है। अगर अकेले मेरे बस में होता तो मैं बहुत शौक से इसमें काट-छांट करता। किंतु यह पुस्तक अज्ञानी, अनभिज्ञ शूद्रों के लिए लिखी गई है, जिन्हें यह नहीं पता कि वे अपनी वर्तमान स्थिति को कैसे प्राप्त हुए। उन्हें इस बात से कोई सरोकार नहीं कि विषयवस्तु को कितनी कलात्मकता से प्रस्तुत किया गया है। वे तो बस विषय-सामग्री की भरपूर फसल चाहते हैं—यह जितनी बड़ी हो उतना ही अच्छा है। उनमें से जिनको मैंने यह पांडुलिपि दिखाई है उन सभी का यही आग्रह रहा है कि इन उद्धरणों को यों ही रहने दिया जाए। सचमुच, इस प्रकार की सामग्री के प्रति उनकी आतुरता इतनी अधिक थी कि उनमें से कुछ तो यहां तक आग्रह कर बैठे कि इस पुस्तक के मुख्य भाग में अंग्रेजी अनुवाद देने के अतिरिक्त मैं एक परिशिष्ट में उनका मूल संस्कृत पाठ भी दूं। मुझे मूल संस्कृत पाठ सम्बंधी उनके अनुरोध को तो अस्वीकार करना पड़ा, किंतु अनूदित अंशों को बनाए रखने सम्बंधी उनके अनुरोध को मुझे इस आधार पर स्वीकार करना पड़ा कि यह सामग्री उन्हें आसानी से उपलब्ध नहीं है। यह स्मरण रखते हुए कि चातुर्वर्ण्य की कुख्यात व्यवस्था को बनाए रखने में शूद्र ही अत्यधिक सहायक रहे हैं, हालांकि यह उनकी अवनति का प्रमुख कारण रहा है, और केवल शूद्र ही चातुर्वर्ण्य को नष्ट कर सकते हैं, यदि इस तथ्य को स्मरण रखा जाए तो यह समझना आसान होगा कि मैंने शूद्रों को शिक्षित करने और उसके माध्यम से उसे ऐसे पवित्र काम के लिए तैयार करने की आवश्यकता को और तमाम बातों से ऊपर क्यों रखा, जो इन उद्धरणों को हटाने अथवा हटाने नहीं तो संक्षिप्त करने के पक्ष में जाती थीं।

तीन व्यक्तियों के प्रति मैं धन्यवाद ज्ञापन करना चाहता हूं। पहले तो महाभारत के शांति पर्व के अध्याय साठ के लेखक के प्रति। इसका लेखक व्यास, वैशम्पायन, सूत, लोमहर्षण है अथवा भृगु कहना कठिन है। किंतु वह जो भी रहा हो, उसने पैजावन का पूरा विवरण देकर महान कार्य किया है। यदि उसने पैजावन का वर्णन एक शूद्र के रूप में नहीं किया होता, तो शूद्र की उत्पत्ति का सूत्र पूरा मिट गया होता। मैं उस लेखक के प्रति आभार व्यक्त करता हूं कि उसने इतनी महत्त्वपूर्ण जानकारी को आगामी पीढ़ियों के लिए संरक्षित कर दिया। इसके अभाव में यह पुस्तक लिखना संभव न होता। दूसरे, मैं इस्माइल यूसुफ़ कॉलेज, अंधेरी, मुम्बई के प्रो. कांगले का धन्यवाद करना चाहता हूं। उन्होंने इस पुस्तक में उद्धृत संस्कृत श्लोकों के अनुवाद को जांच कर मुझे अनुगृहीत किया है। मैं संस्कृत का विद्वान नहीं हूं, इसलिए उनकी सहायता से मुझे एक प्रकार का आश्वासन ही मिला है कि मैंने संस्कृत भाषा की सामग्री का प्रयोग करने में अधिक गड़बड़ी नहीं की है। उन्होंने जो मेरी सहायता की है तो उसका यह अर्थ नहीं है कि मेरे आलोचकों को इस पुस्तक में जो गलतियां और त्रुटियां मिलेंगी उनके लिए वही जिम्मेदार हैं मैं सिद्धार्थ कॉलेज, मुम्बई के प्रो. मनोहर चिटनीस को भी धन्यवाद देना चाहता हूं, जिन्होंने शब्दानुक्रमणिका तैयार कर मुझ पर उपकार किया है।

मैं मेसर्स चार्ल्स स्क्रिबनर्स संस पब्लिशर्स, न्यू यॉर्क (अमेरिका) का आभारी हूं कि उन्होंने मान्यवर मैडिसन ग्रांट कृत **पासिंग ऑव द ग्रेट रेस** से तीन मानचित्र लेने की अनुमति प्रदान की है और जिन्हें इस पुस्तक के परिशिष्ट II, III और IV में स्थान दिया गया है।

**–बी.आर. आंबेडकर**

10 अक्टूबर 1946
"राजगृह",
दादर, मुम्बई–14

# विषय-सूची

समर्पण ........ 2
प्रस्तावना ........ 5
प्रकाशकीय ........ 8
प्राक्कथन ........ 17

अध्याय : 1. शूद्र सम्बंधी जटिल प्रश्न ........ 29
अध्याय : 2. शूद्रों की उत्पत्ति का ब्राह्मणी सिद्धांत ........ 46
अध्याय : 3. शूद्रों की स्थिति सम्बंधी ब्राह्मणी सिद्धांत ........ 52
अध्याय : 4. शूद्र बनाम आर्य ........ 74
अध्याय : 5. आर्यों के विरुद्ध आर्य ........ 96
अध्याय : 6. शूद्र और दास ........ 113
अध्याय : 7. शूद्र कौन थे? ........ 125
अध्याय : 8. वर्ण कितने : तीन या चार? ........ 144
अध्याय : 9. ब्राह्मण बनाम शूद्र ........ 151
अध्याय : 10. शूद्रों की अवनति ........ 169
अध्याय : 11. समझौते की कहानी ........ 199
अध्याय : 12. कसौटी पर सिद्धांत ........ 216

## परिशिष्ट

1. ऋग्वेद में 'आर्य' शब्द के संदर्भ ........ 223
2. 'आर्य' शब्द के संदर्भ ........ 224
3. ऋग्वेद में वर्णित 'आर्य' शब्द के विविध अर्थ ........ 225
4. ऋग्वेद में 'दास' शब्द के संदर्भ ........ 226
5. ऋग्वेद में 'दस्यु' शब्द के संदर्भ ........ 227
6. ऋग्वेद में 'वर्ण' शब्द के संदर्भ ........ 228

अनुक्रमणिका ........ 229

अध्याय : एक

# शूद्र सम्बंधी जटिल प्रश्न

यह हर कोई जानता है कि शूद्र लोग भारतीय-आर्य समुदाय का चौथा वर्ण थे। किंतु बहुत कम लोगों ने यह पता करने का कष्ट किया है कि ये शूद्र थे कौन और वे चौथा वर्ण कैसे बने। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रकार का अन्वेषण सर्वोच्च महत्त्व का है। क्योंकि यह बात जानने योग्य है कि शूद्र चौथे स्थान पर कैसे आए, इसका कारण उद्‌विकास था अथवा क्रांति।

शूद्र कौन थे और वे चौथा वर्ण कैसे बने, इसे जानने के लिए सबसे पहले भारतीय-आर्य समुदाय में चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति के विषय में जानना होगा। और चातुर्वर्ण्य के अध्ययन के लिए सबसे पहले ऋग्वेद के दसवें मंडल के नब्बेवें स्तोत्र का अध्ययन करना होगा—यह पुरुष सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है।

यह सूक्त क्या कहता है? यह कहता है[1]—

''1. विराट पुरुष के हजार शीर्ष, हजार आंखें और हजार चरण हैं, वह धरती को चारों ओर से घेरकर उससे दस अंगुल अधिक स्थित है।

2. जो कुछ हो चुका है अथवा होने वाला है, वह सब विराट पुरुष ही है, वह अमृत का स्वामी है, क्योंकि वह कारण अवस्था छोड़कर जगत अवस्था को धारण करता है, इस प्रकार प्राणी उसको भोगते हैं।

3. यह सारा ब्रह्मांड विराट पुरुष की महिमा है। वे स्वयं इससे बड़े हैं। सभी प्राणी उसके चौथाई अंश हैं। इनके तीन मरणरहित अंश दिव्यलोक में रहते हैं।

4. तीन चरणों वाले विराट पुरुष ऊपर उठे, उनका केवल एक चरण यहां स्थित रहा। इसके पश्चात वे भोजन करने वाली एवं भोजन न करने वाली वस्तुओं के रूप में व्याप्त हुए।

5. उस आदि पुरुष से ब्रह्मांडरूपी विराट उत्पन्न हुआ। ब्रह्मांडरूपी विराट से अनेक पुरुष उत्पन्न हुए। उत्पन्न होने के पश्चात वह ब्रह्मांड से बड़ा हुआ। इसके बाद उसने भूमि बनाई और भूमि से जीवों का शरीर बनाया।

6. जब पुरुषरूप काल्पनिक हवि से देवों ने यज्ञ का विस्तार किया, उस समय वसंत ऋतु को घी, ग्रीष्म को काष्ठ तथा शरद ऋतु को हवि बनाया।

7. सारी सृष्टि से पहले उत्पन्न पुरुष को यज्ञसाधन के रूप में बलिपशु बनाकर देवों ने काल्पनिक यज्ञ किया। इस साधन में देवों, साध्यों और ऋषियों ने यज्ञ किया।

---

*1. ऋग्वेद, मंडल 10, सूक्त 90 : 1-16*

8. जिस काल्पनिक यज्ञ में उस सर्वात्मक पुरुष का हवन किया जाता है, उससे दही से मिला हुआ घी उत्पन्न हुआ। उसी से वायुदेव से सम्बंधित जंगली और ग्रामीण पशु भी उत्पन्न हुए।
9. उस सर्वात्मक पुरुष के काल्पनिक होम वाले यज्ञ से ऋक् और साम उत्पन्न हुए। उसी से छंद उत्पन्न हुए और यजु की उत्पत्ति हुई।
10. उसी यज्ञ से घोड़े उत्पन्न हुए, जिनके मुंह में ऊपर-नीचे दोनों ओर दांत थे। उसी से गाएं, बकरियां और भेड़ें उत्पन्न हुईं।
11. प्रजापति के प्राणिरूप देवों ने जब विराट पुरुष को संकल्प से उत्पन्न किया, तब उन्हें कितने प्रकार से उत्पन्न किया? उनका मुख, भुजाएं, हृदय और चरण कौन से कहलाते हैं?
12. ब्राह्मण इनका मुख हुआ। क्षत्रिय को भुजाएं बनाया गया। इनकी दोनों जंघाओं से वैश्य और चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए।
13. पुरुष के मन से चंद्रमा, आंखों से सूर्य, मुख से इंद्र व अग्नि तथा प्राण से वायु उत्पन्न हुए।
14. पुरुष की नाभि से अंतरिक्ष, शीश से द्योलोक, चरणों से भूमि व कान से दिशाएं और लोक उत्पन्न हुए।
15. देवों ने जिस समय काल्पनिक यज्ञ का विस्तार करते हुए विराट पशु को बलि पशु के रूप में बांधा, उस समय यज्ञ की सात परिधियां और इक्कीस समिधाएं बनाई गईं।
16. देवों ने मानसिक यज्ञ के द्वारा भौतिक यज्ञ विस्तृत किया, उससे सभी विकारों को धारण करने वाले धर्म सबसे पहले उत्पन्न हुए। जिस स्वर्ग में प्राचीन साध्य एवं देव हैं, उसे उपासक महापुरुष प्राप्त करते हैं।"

'पुरुष सूक्त' विश्व की उत्पत्ति का सिद्धांत है। दूसरे शब्दों में, यह एक सृष्टि मीमांसा है। चिंतन की उन्नत अवस्था तक पहुंचे प्रत्येक राष्ट्र ने किसी न किसी प्रकार की सृष्टि मीमांसा विकसित की है। मिस्रियों की सृष्टि मीमांसा कुछ-कुछ वैसी ही थी जैसी पुरुष सूक्त में प्रस्तुत की गई है। इसके अनुसार[1] 'रूपकार' देवता ख्नूमू ने ही जीवधारियों को कुम्हार के चाक पर बनाया, "जो कुछ भी है उसका सृजन किया, जो कुछ भी अस्तित्व में है उसे बनाया, वह पिताओं का पिता और माताओं की माता है...उसने मनुष्यों को गढ़ा, उसने देवताओं को बनाया, वह आरंभ से ही पिता था...वही स्रष्टा है स्वर्ग, पृथ्वी, अधोलोक, जल, पर्वतों का...उसी ने बनाया समस्त पक्षियों, मछलियों, वन्य पशुओं, मवेशियों और समस्त कीड़ों को नर और मादा (के जोड़े) में।" इसी से बहुत कुछ मिलती-जुलती सृष्टि मीमांसा (बाइबिल के) पुराना नियम की (पहली पुस्तक) उत्पत्ति के प्रथम अध्याय में मिलती है।

सृष्टि मीमांसाएं सदैव शैक्षिक रुचि का विषय ही रही हैं और उन्होंने केवल शिक्षार्थियों

1. *इनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन ऐंड इथिक्स, खंड IV, पृष्ठ 145*

की जिज्ञासा को शांत करने और बच्चों का मनोरंजन करने से अधिक और कुछ नहीं किया है। यह बात पुरुष सूक्त के कुछ अंशों के संदर्भ में तो सही हो सकती है, किंतु यह पूरे पुरुष सूक्त के बारे में सही नहीं हो सकती। इसका कारण यह है कि पुरुष सूक्त के सभी स्तोत्र समान रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं और उनकी सार्थकता भी समान नहीं है। स्तोत्र 11 और 12 एक श्रेणी में आते हैं और शेष स्तोत्र अन्य श्रेणी में आते हैं। स्तोत्र 11 और 12 को छोड़ अन्य स्तोत्रों को शैक्षिक रुचि का माना जा सकता है। कोई उन पर निर्भर भी नहीं करता। कोई हिंदू उन्हें याद भी नहीं रखता। किंतु 11 और 12 स्तोत्र की बात अलग है। पहली दृष्टि में देखने पर ये स्तोत्र बस यह बताते हैं कि चार वर्गों अर्थात (1) ब्राह्मण अथवा पुरोहित, (2) क्षत्रिय अथवा सैनिक, (3) वैश्य अथवा व्यापारी, और (4) शूद्र अथवा दास की उत्पत्ति स्रष्टा (ब्राह्मण) के शरीर से किस प्रकार हुई। कितु सत्य यह है कि इन स्तोत्रों को मात्र एक ब्रह्मांडीय परिघटना की व्याख्या. के रूप में नहीं समझा जाता है। यह मानना भयंकर भूल होगी कि भारतीय-आर्य लोग इन्हें एक कवि की कपोल-कल्पना मानते थे। उन्हें स्रष्टा के इस अपरिहार्य आदेश के रूप में देखा जाता है कि समाज का गठन सूक्त में उल्लिखित चार वर्गों के आधार पर ही किया जाना चाहिए। उपर्युक्त स्तोत्रों की रचना में प्रयुक्त भाषा शायद उसके अनुकूल न हो। किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि पारंपरिक रूप में इन स्तोत्रों को इसी अर्थ में लिया गया है, और यह कहना सचमुच मुश्किल होगा कि यह पारंपरिक रचना सूक्त के लेखक के अभिप्राय से मेल नहीं खाती है। इसलिए पुरुष सूक्त के स्तोत्र 11 और 12 मात्र सृष्टि मीमांसा (विश्व की उत्पत्ति का सिद्धांत) नहीं हैं। उनमें यह दैवीय अथवा ईश्वरीय आदेश निहित है कि समाज का गठन एक विशिष्ट रूप में होना चाहिए।

पुरुष सूक्त में समाज के गठन के जिस स्वरूप का निर्देश दिया गया है उसे चातुर्वर्ण्य के रूप में जाना जाता है। एक दैवीय निर्देश के रूप में यह स्वाभाविक तौर पर भारतीय-आर्य समुदाय का आदर्श बन गया। चातुर्वर्ण्य के आदर्श का यही सांचा था जिसमें भारतीय-आर्य समुदाय अपनी प्रारंभिक अथवा तरल अवस्था में ढला था। यही वह सांचा है जिसने भारतीय-आर्य समुदाय को उसका विशिष्ट रूप और ढांचा प्रदान किया।

चातुर्वर्ण्य के इस आदर्श सांचे के प्रति भारतीय-आर्य समुदाय की यह जो श्रद्धा थी वह संदेह से तो परे है ही, यह अवर्णनीय भी है। भारतीय-आर्य समुदाय पर इसका गहरा और अमिट प्रभाव रहा है। पुरुष सूक्त द्वारा निर्दिष्ट सामाजिक व्यवस्था पर बुद्ध के अतिरिक्त किसी ने कभी कोई सवाल खड़ा नहीं किया। बुद्ध भी इसे हिला नहीं पाए, क्योंकि बौद्ध धर्म के पतन के बाद और बौद्ध काल के दौरान भी ऐसे अनेक विधिकार थे जिन्होंने पुरुष सूक्त के आदर्श का बचाव करने और उसे प्रचलित तथा व्याख्यायित करने को भी अपना धंधा बना लिया था।

पुरुष सूक्त के समर्थन में किए गए इस प्रचार के कुछ उदाहरणों के संदर्भ में 'आपस्तम्ब धर्मसूत्र' और 'वशिष्ठ धर्मसूत्र' का उल्लेख किया जा सकता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है–

"चार जातियां हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनमें, पहले उल्लिखित प्रत्येक (जाति) अपने बाद वाले जाति से जन्म के आधार पर श्रेष्ठ है।[1]

शूद्रों और उन लोगों को छोड़ जिन्होंने बुरे कर्म किए हैं, इन सभी को (1) उपनयन (अथवा पवित्र जनेऊ पहनने का), (2) वेदों के अध्ययन का, और (3) पवित्र अग्नि प्रज्वलित करने (यज्ञ करने) का अधिकार है।[2]

यही कथन वशिष्ठ धर्म में भी दोहराया गया है, जिसमें कहा गया है—

"चार जातियां (वर्ण) हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

तीन जातियां ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विज (कहलाती हैं)।

उनका पहला जन्म उनकी मां से होता है; दूसरा पवित्र सूत्र धारण करने (यज्ञोपवीत) से। उस (दूसरे जन्म) में मां सावित्री होती है, किंतु शिक्षक को पिता बताया जाता है।

वे शिक्षक को पिता कहते हैं, क्योंकि वह उन्हें वेद की शिक्षा देता है।[3]

चारों जातियों में जन्म और संस्कार के आधार पर अंतर होता है।

वेद का यह अंश भी है, "ब्राह्मण उसका मुख था, क्षत्रिय उसकी भुजाएं, वैश्य उसकी जंघाएं; शूद्र उसके पैरों से जन्मा।

आगामी अंश में यह घोषित है कि शूद्र संस्कारों को प्राप्त नहीं करेगा।"

अन्य अनेक विधिकारों ने तोते की तरह पुरुष सूक्त के कथ्य को ही दोहराया है और इसकी पवित्रता की पुनरुक्ति की है। यहां उनके कथन को दोहराया अनावश्यक है। जिन्होंने पुरुष सूक्त में निर्धारित आदर्श की पवित्रता का थोड़ा भी विरोध किया था, उन्हें अंततः हिंदू समाज के निर्माता मनु ने शांत कर दिया। क्योंकि मनु ने दो काम किए। पहले तो, उसने पुरुष सूक्त के आदर्श को दैवीय आदेश के एक अंग के रूप में नए सिरे से प्रतिपादित किया। उसने कहा—

"लोकों की समृद्धि के लिए, उसने (स्रष्टा ने) अपने मुख, भुजाओं, जांघों और पैरों से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य और शूद्र की रचना की।[4]

ब्राह्मण, क्षत्रिय (और) वैश्य तीन द्विज जातियां हैं; किंतु चौथी (जाति) शूद्र का केवल एक जन्म होता है।"[5]

अपने इस कथन में मनु निस्संदेह अपने पूर्ववर्तियों का ही अनुसरण कर रहा था। किंतु उसने एक कदम और बढ़ते हुए एक अन्य प्रतिपादन किया जिसमें उसने कहा—

"वेद ही धर्म का एकमात्र और अंतिम विधान है।"[6]

---

*1. प्रश्न 1, पटल 1, खंड 1, सूत्र 4-5*
*2. प्रश्न 1, पटल 1, खंड 1, सूत्र 6*
*3. अध्याय II, श्लोक 1-4*
*4. मनु, अध्याय I, श्लोक 31*
*5. मनु, अध्याय X, श्लोक 4*
*6. मनु, अध्याय II, श्लोक 6*

यदि इस बात को ध्यान में रखा जाए कि पुरुष सूक्त तो वेद का ही एक हिस्सा है, तो यह आसानी से समझ में आ जाएगा कि मनु ने पुरुष सूक्त में निहित चातुर्वर्ण्य के सामाजिक आदर्श को दिव्यता और अमोघत्व का पुट दिया जो पहले उसमें नहीं था।

## II

इसलिए पुरुष सूक्त की समालोचनात्मक विवेचना निहायत जरूरी हो जाती है।

हिंदू लोग यह दावा करते हैं कि पुरुष सूक्त अनूठा है। निस्संदेह यह उस विचार के विषय में बढ़-चढ़ कर किया गया दावा है जिसका प्रादुर्भाव तब हुआ था जब मनुष्य का मस्तिष्क आदिम अवस्था में था और उसे आज के जमाने के विविध चिंतन उपलब्ध नहीं थे। किंतु इस दावे को स्वीकार करने में अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिए बशर्ते कि यह समझ लिया जाए कि यह किस मायने में अनूठा है।

पुरुष सूक्त को अनूठा मानने का मुख्य आधार यह है कि सामाजिक संगठन के जिस आदर्श अर्थात चातुर्वर्ण्य के आदर्श का समर्थन यह सूक्त करता है वह अपने आप में अनूठा अथवा बेजोड़ है। क्या पुरुष सूक्त को बेजोड़ मानने का यह पर्याप्त आधार है? पुरुष सूक्त तब सचमुच बेजोड़ होता यदि इसने वर्गहीन समाज को एक आदर्श समाज के रूप में प्रस्तुत किया होता। किंतु पुरुष सूक्त ने किया क्या है? यह वर्गों में विभाजित समाज को अपना आदर्श बताता है। क्या इसे बेजोड़ माना जा सकता है? केवल एक राष्ट्रवादी और एक राष्ट्रभक्त ही इसका उत्तर 'हां' में दे सकता है। वर्गों की विद्यमानता उस प्रत्येक समाज की वास्तविकता रही है जो नितांत आदिम नहीं है। यह समूचे विश्व में समाज की सामान्य अवस्था रही है जहां समाज अपेक्षाकृत उन्नत अवस्था में है। इसे इस दृष्टिकोण से देखा जाए, तो पुरुष सूक्त में क्या अनूठापन हो सकता है जबकि यह उस वर्गीय संरचना को मान्यता देने से अधिक और कुछ नहीं करता जो भारतीय-आर्य समुदाय में विद्यमान थी?

इसके बावजूद, पुरुष सूक्त को अनूठा मानना ही चाहिए, किंतु बिलकुल अलग कारणों से। इसका दुर्योगपूर्ण पक्ष यह है कि अनेक लोगों को उन असली कारणों की जानकारी नहीं है कि पुरुष सूक्त को अनूठा क्यों मानना चाहिए। किंतु जब असली कारण का पता चल जाएगा, तो लोगों को यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं होगा कि पुरुष सूक्त मानव बुद्धि की एक अनूठी उपज है, किंतु उन्हें यह जानकर शायद धक्का लगेगा कि मानव चतुरता की कितनी विलक्षण उपज है यह।

पुरुष सूक्त के सामाजिक आदर्श की वे कौन-सी विशेषताएं हैं जो इसे अनूठा अथवा बेजोड़ बनाती हैं? हालांकि वर्गों का विद्यमान होना प्रत्येक समाज की तथ्यपरक शर्त है, फिर भी किसी समाज ने इस तथ्यपरक स्थिति को एक आदर्श समाज की दिशा में वैधानिक जामा नहीं पहनाया। पुरुष सूक्त की योजना ही एक मात्र ऐसा उदाहरण है जिसमें यथार्थ को आदर्श की गरिमापूर्ण ऊंचाई तक ले जाया गया है। पुरुष सूक्त में प्रस्तुत योजना की यह पहली अनूठी विशेषता है। दूसरी बात, किसी समुदाय ने वर्गीय गठन की तथ्यपरक

स्थिति को कानूनी प्रभाव देने के लिए उसे एक आदर्श समाज के वैधानिक अभिधार्थ के रूप में स्वीकार नहीं किया। यहां यूनानियों का उदाहरण प्रासांगिक होगा। वर्ग-व्यवस्था को एक आदर्श सामाजिक संरचना के रूप में अफलातून (प्लेटो) जैसे महान पक्षकार ने प्रस्तुत किया था। किंतु यूनानियों ने कानून सम्मत बनाकर इसे वास्तविक बनाने के बारे में कभी नहीं सोचा। पुरुष सूक्त ही ऐसा एक मात्र उदाहरण है जिसमें कानून की स्वीकृति के माध्यम से आदर्श को यथार्थ बनाने का प्रयास किया गया। तीसरी बात, किसी भी समाज ने यह स्वीकार नहीं किया है कि वर्ग व्यवस्था एक आदर्श है। अधिक से अधिक, उन्होंने इसकी स्वाभाविकता को स्वीकार किया है। पुरुष सूक्त तो इससे भी बढ़ कर है। यह वर्ग व्यवस्था को केवल स्वाभाविक और आदर्श ही नहीं मानता, बल्कि इसे पवित्र और दैवीय भी मानता है। चौथी बात, किसी भी ज्ञात समाज में वर्गों की संख्या हठधर्मिता पर आधारित नहीं रही। रोमन समाज में दो वर्ग थे। मिस्रियों के विचार से उनके लिए तीन वर्ग पर्याप्त थे। भारतीय-ईरानी लोगों में भी तीन से अधिक वर्ग नहीं थे–[1] (1) अथर्वस (पुरोहित), (2) रथेश्तर (सैनिक), और (3) वस्त्र्य फश्युत (किसान)। पुरुष सूक्त की योजना समाज के चार वर्गों में विभाजन को हठधर्मिता का मामला बना देती है। इसके अनुसार इससे न अधिक हो सकता है और न कम। पांचवीं बात, प्रत्येक समाज एक वर्ग को छोड़ देता है जिससे समाज में इसके महत्त्व के अनुसार अन्य वर्गों के बरक्स उसकी स्थिति का पता लगाया जा सके, जिसका निर्धारण समय-समय पर काम करने वाली शक्तियों द्वारा किया जाता है। किसी भी समाज में आधिकारिक तौर पर कोई ऐसा वर्गीकरण अथवा श्रेणी विभाजन नहीं किया जाता जो निश्चित और स्थाई हो और जिसमें ऊंची पायदान पर अवस्थित वर्ग को सम्मान और निचली पायदान पर अवस्थित वर्ग को घृणा अथवा अवमानना मिले। पुरुष सूक्त की योजना इस मायने में अनूठी है कि यह विभिन्न वर्गों अथवा वर्णों को ऊंच-नीच के आधार पर एक स्थाई श्रेणी में जड़ीभूत कर देती है जिसे न समय बदल सकता है और न ही परिस्थितियां। यह चार वर्गों के बीच वर्गीकृत असमानता के सिद्धांत पर आधारित है, जिसके अनुसार ब्राह्मण सर्वोपरि होता है, क्षत्रिय उससे नीचे किंतु वैश्य और शूद्र से ऊपर होता है, वैश्य तो क्षत्रिय से नीचे किंतु शूद्र से ऊपर होता है, और शूद्र सबसे नीचे होता है।

## III

पुरुष सूक्त के बेजोड़ होने के यही असली कारण हैं। किंतु, पुरुष सूक्त केवल बेजोड़ ही नहीं है, यह असाधारणा भी है। यह असाधारण इसलिए है क्योंकि इसमें जटिलताओं की भरमार है। बहुत कम लोग इन जटिलताओं से अवगत हैं। किंतु यदि छानबीन की जाए तो यह पता चलेगा कि ये जटिलताएं कितनी वास्तविक और कितनी विचित्र हैं। पुरुष सूक्त में सृष्टि की रचना का जो सिद्धांत प्रस्तुत किया गया है वह ऋग्वेद में उपलब्ध विश्वोत्पत्ति

1. *जाइगर : सिविलाइजेशन ऑव दि ईस्टर्न ईरानियन्स इन एनशिएंट टाइम्स, खंड II, पृष्ठ 64*

का एक मात्र सिद्धांत नहीं है। ऋग्वेद के दसवें मंडल के 72वें सूक्त में एक अन्य सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ है। इसमें लिखा है–[1]

''1. हम स्पष्ट शब्दों में देवों की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं। ये देव भविष्य में स्तोत्रों के उच्चारण के समय स्तोता को देखेंगे।

2. लोहार जिस प्रकार धौंकनी चलाता है, उसी प्रकार ब्रह्मणस्पति ने देवों को उत्पन्न किया। देवों से पूर्व के समय में असत् से सत् उत्पन्न हुआ।

3. देवों की उत्पत्ति से पहले के समय में असत् से सत् उत्पन्न हुआ। इसके बाद दिशाएं उत्पन्न हुईं। दिशाओं से वृक्ष उत्पन्न हुए।

4. वृक्षों से भूमि उत्पन्न हुई एवं भूमि से दिशाएं उत्पन्न हुईं। अदिति से दक्ष उत्पन्न हुए और बाद में दक्ष से अदिति उत्पन्न हुई।

5. हे दक्ष! तुम्हारी पुत्री अदिति ने देवों को उत्पन्न किया। अदिति के पश्चात प्रशंसनीय एवं अमृत के बंधु देवों ने जन्म लिया।

6. हे देवो! जब तुम इस जल में रहकर अपने को जानते हुए स्थित थे, तब तुम नृत्य सा करने लगे। इससे बहुत धूल उड़ी।

7. बादल जिस प्रकार वर्षा द्वारा संसार को भरते हैं, उसी प्रकार देवों ने संसार को ढक लिया। उन्होंने सागर में ढके हुए सूर्य को चमकने के लिए बाहर निकाला।

8. अदिति के शरीर से आठ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से सात के साथ वह देवलोक में चली गई। आठवां सूर्य आकाश में स्थित हुआ।

9. प्राचीनकाल में अदिति सात पुत्रों के साथ देवलोक में चली गई। केवल सूर्य को प्रजाओं के जन्म-मरण के लिए आकाश में स्थिर किया।''

सृष्टि की उत्पत्ति से सम्बंधित ये दोनों सिद्धांत बुनियादी तौर पर और विस्तार रूप में भी परस्पर भिन्न हैं। पहले सिद्धांत में असत् से सत् की सृष्टि बताई गई है। दूसरे सिद्धांत में सृष्टि की उत्पत्ति 'पुरुष' नामक सत्ता से बताई गई है। एक ही ग्रंथ में इस तरह के दो विरोधी सिद्धांत क्यों प्रतिपादित किए गए? पुरुष सूक्त के लेखक ने यह क्यों जरूरी समझा कि पहले एक 'पुरुष' को स्थापित किया जाए और सारी सृष्टि को उससे उत्पन्न कराया जाए?

पुरुष सूक्त को पढ़ने वाला कोई भी व्यक्ति यह देख सकता है कि इसका आरंभ गधों, घोड़ों, बकरों आदि की रचना से होता है, किंतु यह सूक्त मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में सर्वथा मौन है। जहां मनुष्य की उत्पत्ति की बात करना स्वाभाविक होता, वहां आकर यह कड़ी टूट जाती है और आर्य समुदाय में वर्गों की उत्पत्ति की व्याख्या की जाने लगती है। वास्तव में, लगता तो यही है कि पुरुष सूक्त का मुख्य सरोकार आर्य समुदाय के चार वर्गों अथवा वर्णों की व्याख्या ही रही है। इस प्रक्रिया में, पुरुष सूक्त केवल अन्य धर्मशास्त्रों से ही नहीं बल्कि ऋग्वेद के अन्य भागों से भी बिलकुल विपरीत चला गया है।

---

1. *विल्सन कृत ऋग्वेद, खंड VI, पृष्ठ 129*

और किसी भी धर्मशास्त्र ने समाज में विद्यमान वर्गों की उत्पत्ति की व्याख्या को अपना उद्देश्य नहीं बनाया है। (बाइबिल के) पुराना नियम की (प्रथम पुस्तक) 'उत्पत्ति' के प्रथम अध्याय को भी अभिप्राय और उद्देश्य की दृष्टि से पुरुष सूक्त के सदृश ही कहा जा सकता है, किंतु उसमें भी केवल मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में समझाया गया है, उसके अतिरिक्त कुछ और नहीं कहा गया। ऐसा नहीं है कि प्राचीन यहूदी समाज में वर्गों का वजूद नहीं था। सामाजिक वर्ग तो सभी समाजों में थे। भारतीय आर्य लोग भी इसका अपवाद नहीं थे। फिर भी, किसी धर्मशास्त्र ने कभी यह बताना जरूरी नहीं समझा कि वर्गों की उत्पत्ति कैसे हुई। फिर पुरुष सूक्त ने ही सामाजिक वर्गों की उत्पत्ति की व्याख्या करने को अपना मुख्य सरोकार क्यों बनाया?

ऋग्वेद में केवल पुरुष सूक्त ही ऐसा एकमात्र स्थल नहीं है जहां सृष्टि की रचना के विषय में चर्चा की गई है। ऋग्वेद में ऐसे अन्य स्थल भी हैं जहां इसी विषय का उल्लेख हुआ है। इस सम्बंध में, ऋग्वेद के निम्नलिखित अंश का उल्लेख किया जा सकता है–[1]

> "अग्नि ने वायु की पूर्वकाल कृत एवं गुणनिष्ठ स्तुति को सुनकर इस मानवी प्रजा को उत्पन्न किया है एवं आच्छादक तेज के आकाश को व्याप्त किया है। ऋत्विजों ने धनदाता अग्नि को धारणा किया है।"

इसमें, वर्णों के अलग निर्माण का बिलकुल भी उल्लेख नहीं है, हालांकि इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऋग्वेद के समय में भी भारतीय-आर्य समुदाय में विभिन्न वर्णों का विभेद हो चुका था। फिर भी, ऋग्वेद के उपर्युक्त अंश में वर्णों का उल्लेख न करते हुए केवल मनुष्य की रचना का वर्णन किया गया है। फिर पुरुष सूक्त में और भी आगे जाकर वर्णों की उत्पत्ति की बात क्यों कही गई?

पुरुष सूक्त एक और संदर्भ में ऋग्वेद के विरुद्ध जाता है। ऋग्वेद तो भारतीय-आर्यों की उत्पत्ति के विषय में एक लौकिक सिद्धांत का प्रतिपादन करता है, जैसा कि निम्नलिखित अंशों से स्पष्ट है–

> (1) "अथर्वा ऋषि, समस्त पिताओं के प्रजा तुल्य मनु एवं अथर्वा के पुत्र दध्यङ् ऋषि ने जितने भी यज्ञ कर्म किए, उनमें प्रयुक्त हवि रूप अन्न एवं स्तोत्र प्राचीन ऋषियों ने अपने अधिकार का प्रदर्शन किया।"[2]
>
> (2) "हे रुद्र हमारे निमित्त तुम सुखकारक बनो एवं हमें सुख प्रदान करो। हम नमस्कारपूर्वक वीरनाशक रुद्र की सेवा करते हैं। पिता मनु ने जो रोगशांति और निर्भयता प्राप्त की थी, हे रुद्र! तुम्हें नमस्कार करने पर हम भी उन्हें प्राप्त करें।"[3]
>
> (3) "हे अभीष्टवर्षक मरुद्गण! तुम्हारी जो औषधियां शुद्ध एवं अत्यधिक

---

*1. ऋग्वेद, मंडल 1, सूक्त 96.2*
*2. ऋग्वेद, मंडल 1, सूक्त 180.16*
*3. ऋग्वेद, मंडल 1, सूक्त 114.2*

सुख देने वाली हैं, जिन्हें हमारे पिता मनु ने पसंद किया था, रुद्र की उन्हीं सुखदायक व भयानक औषधियों की हम इच्छा करते हैं।''[1]

(4) ''प्रमुख एवं पूजनीय यजमानों के यज्ञकर्मों में सुंदर इंद्र आते हैं। देवों के मध्य में प्रजाओं के पालक मनु ने ही इंद्र को पाने का द्वार प्राप्त किया था।''[2]

(5) ''यज्ञ को सिद्ध करने वाले देवों तथा ऋत्विजों के साथ यज्ञकर्म द्वारा यजमान के भांति-भांति के यज्ञों को पूर्ण करने वाले, सारे लोक के नेता, शीघ्र काम करने वाले, दानशील एवं शत्रुनाशक अग्नि धरती और आकाश के बीच जाते हैं।''[3]

(6) ''हे सुंदर ऋभुओ एवं वाजगण! जिस प्रकार तुम दिवसों को शोभन बनाने के लिए मनुष्यों का यज्ञ धारण करते हो, उसी प्रकार देवमार्गों द्वारा हमारे यज्ञ में आओ।''[4]

(7) ''अग्नि ही उत्तम ज्ञानसंपन्न है, वह यज्ञ कर्मों के कुशलतम कर्ता एवं सबके दृष्टा हैं। यजमानों के ऋत्विज यज्ञों में अग्नि को देवों का बुलाने वाला बताकर स्तुति करते हैं।''[5]

इन पाठों से यह तो बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि ऋग्वेद के स्तोत्रों के रचयिता ऋषिगण मनु को भारतीय-आर्यों का जनक मानते थे। मनु के भारतीय-आर्यों का जनक होने सम्बंधी इस सिद्धांत का आधार इतना गहरा था कि इसे ब्राह्मण ग्रंथों और पुराणों ने भी आगे बढ़ाया। इसका प्रतिपादन ऐतरेय ब्राह्मण[6] में, विष्णु पुराण[7] और मत्स्य पुराण[8] में हुआ है। यह सच है कि उन्होंने ब्रह्मा को मनु का जनक बताया है, किंतु मनु के जनक होने सम्बंधी ऋग्वेद के सिद्धांत को उन्होंने स्वीकार किया है और उसका पोषण भी किया है।[9]

---

1. *ऋग्वेद, मंडल 2, सूक्त 33.13*
2. *ऋग्वेद, मंडल 8, सूक्त 52.1*
3. *ऋग्वेद, मंडल 3, सूक्त 3.6*
4. *ऋग्वेद, मंडल 4, सूक्त 37.1*
5. *ऋग्वेद, मंडल 6, सूक्त 14.2*
6. *म्यूर द्वारा उद्धृत, खंड 1, पृष्ठ 108, ओरिजिनल संस्कृत टेक्स्ट्स (मूल अंग्रेजी)*
7. *म्यूर द्वारा उद्धृत, खंड 1, पृष्ठ 105-107*
8. *म्यूर द्वारा उद्धृत, खंड 1, पृष्ठ 110-112*
9. *बहरहाल, इसके विस्तार में जाने पर अत्यधिक भ्रम की स्थिति बनती है। विष्णु पुराण के अनुसार ब्रह्मा ने स्वयं को दो भागों में विभक्त किया—आधे भाग से वह नर बना, आधे भाग से नारी। वह नारी शतरूपा कहलाई और उसने निरंतर घोर तपस्या करके मनु स्वयंभू नामक नर को पति रूप में प्राप्त कर लिया। विष्णु पुराण में ब्रह्मा द्वारा अपनी पुत्री के साथ सहवास करने का कोई संकेत नहीं मिलता। दूसरी ओर, ऐतरेय ब्राह्मण और मत्स्य पुराण के अनुसार ब्रह्मा ने अपनी पुत्री शतरूपा के साथ सहवास किया जिससे मनु उत्पन्न हुआ; मत्स्य पुराण में यह भी कहा गया है कि मनु ने तप के बल पर अनंता नाम की एक सुंदर पत्नी को प्राप्त किया। रामायण के अनुसार (देखिए म्यूर, 1, पृष्ठ 117) मनु एक नर नहीं अपितु नारी थी, और वह दक्ष प्रजापति की पुत्री और कश्यप की पत्नी थी।*

पुरुष सूक्त में मनु का कोई उल्लेख क्यों नहीं है? यह विचित्र है क्योंकि यह प्रतीत होता है कि पुरुष सूक्त के लेखक को इस तथ्य का ज्ञान था कि मनु स्वयंभू को विरज कहा जाता है और विरज को आदि पुरुष कहा जाता है,[1] क्योंकि वह भी सूक्त के पांचवें स्तोत्र में विरज आदि पुरुष की बात करता है।

एक तीसरी बात और है जिसे लेकर पुरुष सूक्त ऋग्वेद से भी आगे चला गया है। वैदिक आर्य सभ्यता के स्तर पर काफी उन्नत थे और यह स्वाभाविक है कि उन्होंने श्रम-विभाजन का सूत्रपात किया होगा। वैदिक आर्यों के समुदाय में भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न व्यवसाय करते थे। वे लोग इससे अवगत थे, इसका प्रमाण निम्नलिखित ऋचा में मिलता है—

> "उषा किसी को धन के लिए, किसी को अन्न के लिए, किसी को महायज्ञ के लिए एवं किसी को अभीष्ट वस्तु प्राप्ति के लिए जगाती है। वह नानारूप जीविकाओं के निमित्त समस्त विश्व को प्रकाशित करती है।"[2]

ऋग्वेद में इतना ही कहा गया है। किंतु पुरुष सूक्त इससे भी आगे की बात करता है। यह श्रम-विभाजन की धारणा को लेकर उसे कामगारों के विभाजन की योजना में बदल देता है। जिसमें व्यावसायिक श्रेणियां नियत और स्थाई हैं। पुरुष सूक्त ऐसा विकृत कृत्य क्यों करता है?

एक और बिंदु है जहां पुरुष सूक्त ऋग्वेद से अलग चला गया है। ऐसा नहीं है कि ऋग्वेद केवल मनुष्य की बात करता है। यह भारतीय-आर्य राष्ट्र की बात भी करता है। यह राष्ट्र पांच जनजातियों से बना था जो एक साझा भारतीय-आर्य कौम के रूप में घुल-मिल गए थे। निम्नलिखित स्तोत्रों में इन पांच जनजातियों के एक राष्ट्र के रूप में ढलने का उल्लेख है—

> (1) "बुद्धिमान एवं तेजस्वी अग्नि भली प्रकार प्रकाशित होते हैं। हे अग्नि! तुम विस्तृत धरती आकाश की हव्य से पूजा करो। लोग जिस प्रकार अतिथि की पूजा करते हैं, उसी प्रकार यजमान हव्य द्वारा अग्नि को प्रसन्न करते हैं।"[3]
>
> (2) "कवि, गृहपालक एवं युवा अग्नि पंच-जनों के सामने प्रत्येक घर में स्थित होते हैं।"[4]

इस विषय में कुछ मतभेद है कि ये पांच जनजातियां कौन-सी हैं। यास्क ने अपने निरूक्त में कहा है कि ये गंधर्व, पितृ, देव, असुर और राक्षस हैं। उपमन्यु का कहना है कि इसमें चार वर्णों और निषादों की ओर संकेत है। ये दोनों ही व्याख्याएं बेतुकी मालूम होती हैं। पहले, क्योंकि इन पांचों जनजातियों की प्रशंसा सामूहिक रूप में हुई है, जैसे निम्नलिखित स्तोत्रों में—

---

*1. मत्स्य पुराण, म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 111 F.n.*

*2. ऋग्वेद, मंडल 1, सूक्त 113.6*

*3. ऋग्वेद, मंडल 6, सूक्त 11.4*

*4. ऋग्वेद, मंडल 7, सूक्त 15.2*

(1) "हे अग्नि! हम तुम्हारे दिए हुए अन्न, अश्व आदि से शोभन सामर्थ्य प्राप्त करके सबसे श्रेष्ठ बन जाएंगे। इससे वह हमारा अनंत धन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद–पांच जातियों के ऊपर प्रकाशित होगा जो दूसरों को प्राप्त होना कठिन है।"[1]

(2) "हे इंद्र! मानव प्रजाओं में जो बल एवं धन है अथवा पांच वर्णों में जो अन्न है, वह पब महान शक्तियों के साथ हमें दो।"[2]

प्रशंसा के ऐसे शब्द उस स्थिति में तो नहीं कहे जा सकते थे यदि इन पांच जनजातियों में शूद्र भी शामिल होते। इसके अतिरिक्त, यहां शूद्र शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। जन शब्द का प्रयोग हुआ है। इसमें चार वर्णों और निषादों की नहीं पांच जनजातियों की बात कही गई है, यह ऋग्वेद के निम्नलिखित स्तोत्रों से बिलकुल स्पष्ट हो जाता है–

"हे कामवर्षक इंद्र और अग्नि! यदि तुम यदु, तुर्वश, अनु, द्रुह्यु एवं पुरुजन समूह के बीच स्थित हो, तब भी इन समस्त स्थानों से आओ और निचोड़ा हुआ सोम रस पियो।"[3]

इन पांच जनजातियों से एक आर्य कौम का गठन हुआ था, यह अथर्ववेद (3, 24.2) से स्पष्ट हो जाता है, जिसमें कहा गया है–

"ये पांच क्षेत्र, पांच जनजातियां मनु से उत्पन्न हुई हैं।"

ऋग्वैदिक स्तोत्रों के ऋषियों ने इन पांच जनजातियों का उल्लेख इस प्रकार क्यों किया, इस प्रश्न का उत्तर केवल एकता की भावना में और सामूहिक चेतना में ही मिल सकता है। प्रश्न ये हैं–पुरुष सूक्त ने पांचों जनजातियों की इस एकता को क्यों नहीं पहचान कर उनकी उत्पत्ति की मिथकीय व्याख्या की? इसके स्थान पर इसने जनजातियों के भीतर सांप्रदायिक विभाजनों को क्यों मान्यता दी? पुरुष सूक्त में राष्ट्रवाद की अपेक्षा संप्रदायवाद को अधिक महत्त्वपूर्ण क्यों माना गया?

पुरुष सूक्त की ये कुछ उलझाने वाली बातें हैं, जो तब उजागर होती हैं जब इस सूक्त की तुलना ऋग्वेद से की जाती है। इसमें कुछ और भी जटिलताएं अथवा उलझाने वाली बातें हैं, जो उस समय सामने आती हैं जब पुरुष सूक्त की विवेचना समाजशास्त्रीय दृष्टि से की जाती है।

प्रतिमानों के रूप में आदर्श अच्छे होते हैं और आवश्यक भी। प्रतिमान के अभाव में किसी भी समाज अथवा व्यक्ति का काम नहीं चल सकता। किंतु प्रतिमानों को समय और परिस्थितियों में होने वाले बदलावों के साथ बदलना ही चाहिए। किसी भी प्रतिमान को सदा-सदा के लिए नियत नहीं किया जा सकता। हमारे प्रतिमानों के मूल्यों के पुनः आंकलन के लिए हमेशा ही गुंजाइश रहनी चाहिए। मूल्यों के पुनः आकलन की संभावना

---

*1. ऋग्वेद, मंडल 2, सूक्त 2.10*　　*2. ऋग्वेद, मंडल 6, सूक्त 46.7*

*3. ऋग्वेद, मंडल 1, सूक्त 108.8*

केवल तभी बनी रह सकती है जब संस्था में पवित्रता न आरोपित की जाए। पवित्रता इसके मूल्यों के पुनः आकलन के आड़े आ जाती है। क्योंकि एक बार जिस पर पवित्र होने का ठप्पा लग गया वह हमेशा के लिए पवित्र ही हो जाता है। पुरुष सूक्त ने चातुर्वर्ण्य को एक पवित्र संस्था, एक दैवीय विधान का रूप दे दिया है। पुरुष सूक्त ने एक विशिष्ट प्रकार की सामाजिक व्यवस्था को इतना पवित्र क्यों बना दिया कि वह आलोचना से और परिवर्तन से भी परे हो जाए? इसने ऐसा क्यों चाहा कि इसे एक ऐसा स्थाई आदर्श बना दिया जाए जिसकी न तो आलोचना की जा सके। और न ही उसमें कोई परिवर्तन किया जा सके? पुरुष सूक्त की यह पहली जटिलता है जिसकी ओर समाजशास्त्र के विद्यार्थी का ध्यान जाता है।

चातुर्वर्ण्य का सिद्धांत प्रतिपादित करने की प्रक्रिया में पुरुष सूक्त ने दोहरी चाल चली है। पहले तो इसने यथार्थ को, अर्थात भारतीय-आर्यों के समाज में चार वर्गों (अथवा वर्णों) के अस्तित्व को, एक आदर्श के स्तर तक उठा दिया है। यह एक धोखाधड़ी है क्योंकि आदर्श किसी भी प्रकार से विद्यमान वास्तविकताओं से भिन्न नहीं है। यथार्थ को आदर्श के उच्च स्तर पर ले जाने के बाद इसने यह दिखाना चाहा है कि प्रवंचना ही है क्योंकि आदर्श तो पहले से ही यथार्थ में मौजूद है। यथार्थ को आदर्श बनाने और आदर्श को यथार्थ बनाने का पुरुष सूक्त का हय प्रयास एक प्रकार की राजनीतिक बाजीगरी है, और मेरा विश्वास है कि ऐसी बाजीगरी और किसी भी धर्म ग्रंथ में नहीं मिलेगी। अगर यह धोखाधड़ी और प्रवंचना नहीं है तो फिर और क्या है? यथार्थ को आदर्श का रूप देना, जो बहुधा ही अन्यायों से परिपूर्ण है, बहुत ही स्वार्थपूर्ण कृत्य है। जब किसी व्यक्ति को यथास्थिति में ही व्यक्तिगत लाभ मिलता दिखाई देता है तभी वह यथार्थ को आदर्श का रूप देने का प्रयास करता है। इस प्रकार के आदर्श को यथार्थ का रूप देना अपराध से कम नहीं है। इसका मतलब होता है अन्याय को इस आधार पर चलाते रहना कि एक बार जो स्थापित हो गया वह हमेशा के लिए स्थापित हो गया। यह दृष्टिकोण तमाम नैतिकता के विरुद्ध है। सामाजिक विवेक रखने वाले किसी समाज ने इसे कभी स्वीकार नहीं किया। इसके विपरीत, इतिहास में व्यक्तियों और वर्गों के बीच संबद्ध जीवन की शर्तों को बेहतर बनाने की दिशा में जो भी प्रगति हुई है वह पूरे तौर .र इस नैतिक सिद्धांत की मान्यता के कारण है कि जो कुछ गलत ढंग से स्थापित हुआ है वह कभी स्थापित नहीं हुआ और उसे फिर से स्थापित किया ही जाना चाहिए। इसलिए, पुरुष सूक्त में अंतर्निहित सिद्धांत अभिप्राय से आपराधिक है और उसके परिणाम समाज-विरोधी रहे हैं। क्योंकि, इसका लक्ष्य एक वर्ग द्वारा अर्जित अवैध लाभ को और एक अन्य वर्ग के विरुद्ध की गई गलती को आगे चलाते रहना है। पुरुष सूक्त की इस बाजीगरी का क्या उद्देश्य हो सकता है? यह दूसरा जटिल प्रश्न है।

इन तमाम पहेलियों में अंतिम और जटिलतम पहेली वह है जो पुरुष सूक्त की समाजशास्त्रीय छानबीन से सामने आती है और जिसका सम्बंध शूद्र की स्थिति से है। पुरुष

सूक्त ने वर्णों की उत्पत्ति से सरोकार रखा है, और यह कहा है कि इनकी रचना ईश्वर ने की है। यह एक ऐसा सिद्धांत है जिसे प्रतिपादित करने को किसी भी धर्मशास्त्र ने बुद्धिमतापूर्ण नहीं माना। यह अपने आप में एक विचित्र बात है। किंतु चकित करने वाली बात तो यह है कि विभिन्न वर्णों की तुलना स्रष्टा के विभिन्न अंगों से की गई है। विभिन्न वर्णों को शरीर के विभिन्न अंगों के समान बताना मात्र संयोग नहीं है। ऐसा जान-बूझकर किया गया है। इस योजना के पीछे संभवतः यह विचार रहा होगा कि एक ऐसा सूत्र खोजा जाए जिससे दो समस्याओं का समाधान हो जाए, पहली तो चारों वर्णों के कार्यों को नियत करने की समस्या और दूसरी एक पूर्व विचरित योजना के अनुसार चारों वर्णों के वर्गीकरण अथवा श्रेणीकरण की समस्या। विभिन्न वर्णों को स्रष्टा के शरीर के विभिन्न अंगों के समतुल्य बताने के सूत्र का यही लाभ है। अंग विशेष के अनुसार सम्बंधित वर्ण की श्रेणी नियत हो जाती है और श्रेणी के अनुसार उस वर्ण का कार्य नियत हो जाता है। ब्राह्मण की उत्पत्ति स्रष्टा के मुख से बताई गई है। मुख क्योंकि शरीर का श्रेष्ठतम अंग होता है, इसलिए ब्राह्मण चारों वर्णों में सर्वश्रेष्ठ हो जाता है। क्योंकि इस सोपान में वह श्रेष्ठतम है, इसलिए उसे श्रेष्ठतम कार्य दिया जाता है, अर्थात ज्ञान और विद्या के पालक का कार्य। क्षत्रिय की उत्पत्ति स्रष्टा की भुजाओं से बताई गई है। शरीर के अंगों में भुजाओं का स्थान मुख के ठीक नीचे होता है। परिणामतः, क्षत्रिय को ब्राह्मण के तुरंत नीचे स्थान दिया गया है और ऐसा कार्य दिया गया है जो केवल ज्ञान के बाद आता है, अर्थात लड़ने का कार्य। वैश्य की उत्पत्ति स्रष्टा की जांघों से बताई गई है। शरीर के अंगों की श्रेणी में जांघों का स्थान भुजाओं के नीचे है। परिणामतः, वैश्य को क्षत्रिय के ठीक नीचे स्थान दिया गया है और उसे उद्योग और व्यापार का कार्य सौंपा गया है जो नाम और यश में एक योद्धा से नीचे है या यों कहिए कि प्राचीनकाल में था। शूद्र की उत्पत्ति स्रष्टा के चरणों से बताई गई है पैर तो मनुष्य के शरीर के निम्नतम और निकृष्टतम अंग होते हैं। इसके अनुसार, शूद्र को सामाजिक व्यवस्था में सबसे अंतिम स्थान पर रखा गया है और उसे सबसे गंदा कार्य दिया गया है अर्थात दास अथवा भृत्य के रूप में सेवा करने का।

पुरुष सूक्त ने चार वर्णों की उत्पत्ति की व्याख्या का यही तरीका क्यों चुना? इसने शूद्र की उत्पत्ति पैरों से क्यों बताई? इसने चार वर्णों की उत्पत्ति को स्पष्ट करने का कोई और तरीका क्यों नहीं चुना? ऐसा नहीं है कि सृष्टि की व्याख्या के लिए केवल पुरुष को उपमान बनाया गया है। छांदोग्य उपनिषद में दी गई वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या की तुलना कीजिए। इसमें कहा गया है—[1]

> "प्रजापति ने ब्रह्मांड में उष्णता उत्पन्न करके उसमें से तत्व निकाले यानी पृथ्वी से अग्नि, हवा से वायु तथा आकाश से सूर्य निकाले। उस प्रजापति ने फिर तीन आराध्य देवों में उष्णता उत्पन्न की जिसके सार स्वरूप अग्नि से ऋग्वेद की

---

*1. म्यूर, खंड 3, पृष्ठ 5 से उद्धृत*

ऋचाएं, वायु से यजुर्वेद के मंत्र और सूर्य से सामवेद की ऋचाएं उत्पन्न कीं। उसने इन तीनों (वेदों) को उष्णता प्रदान की और इस प्रकार उष्ण हुए वेदों से उत्पन्न तत्व से ऋग्वेद की ऋचाओं से 'भुव' शब्द, यजुर्वेद के मंत्रों से 'भुवः' और सामवेद से 'स्वर' शब्दों की रचना की।''

यहां विभिन्न देवों से वेदों की उत्पत्ति होने की व्याख्या की गई है। जहां तक भारतीय-आर्यों का सवाल है, तो उनमें इनकी कोई कमी नहीं थी। उनकी संख्या तीस करोड़ थी। यदि चार वर्णों की उत्पत्ति चार देवों से बताई जाती तो इन सभी वर्णों को जन्म से सम्मान और समानता का आधार दिया जा सकता था। पुरुष सूक्त ने इस व्याख्या का आधार क्यों नहीं बनाया?

फिर, पुरुष सूक्त का लेखक क्या यह नहीं कह सकता था कि विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति पुरुष के विभिन्न मुखों से हुई? इस प्रकार की अवधारणा कठिन नहीं रही होती क्योंकि पुरुष सूक्त में वर्णित पुरुष के एक हजार सिर हैं, और ये इतने काफी हैं कि सृष्टि की एक प्रजाति का श्रेय उसके एक सिर को दिया जा सकता है। सृष्टि की व्याख्या का यह तरीका पुरुष सूक्त के लेखक के लिए अनजाना नहीं रहा होगा। क्योंकि, विष्णु पुराण में इसका प्रयोग विभिन्न वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या के लिए हुआ है, जैसा कि निम्नलिखित अंश से स्पष्ट है—[1]

> ''अपने पूर्वी मुख से ब्रह्मा ने गायत्री, ऋग्वेद की ऋचाओं, त्रिवृत, सामवेद के रथांतर और यज्ञों, अग्निष्टोम की रचना की। अपने दक्षिणी मुख से उन्होंने यजुर्वेद के स्तोत्रों, त्रिष्टुभ छंद, **पंचदश स्तोम**, **बृहत्तम** और **अकथ्य** की रचना की। अपने पश्चिमी मुख से उन्होंने सामवेद के स्तोत्रों, जगती छंद, सप्तदश स्तोम, वैरूप, और अतिरात्र की रचना की। अपने उत्तरी मुख से उन्होंने एकविंश, अथर्ववेद, और अनुष्टुम और विरज छंदों में **अप्तोर्यमन** की रचना की।''

हरिवंश में वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या कुछ और ही ढंग से प्रस्तुत की गई है। इसके अनुसार—[2]

> ''स्रष्टा ने ऋग्वेद और यजुर्वेद की रचना अपनी आंखों से, सामवेद की रचना अपनी जीभ के अग्र भाग से और अथर्ववेद की रचना अपने सिर से की।''

अगर यह मान भी लिया जाए कि पुरुष सूक्त चार वर्णों की उत्पत्ति और सम्बंध को स्पष्ट करने के लिए स्रष्टा के शरीर और उसके विभिन्न अंगों का प्रयोग करने से किसी कारणवश नहीं बच पाया, तो भी यह प्रश्न तो बना ही रहता है कि उसने विभिन्न वर्णों को पुरुष के विभिन्न अंगों के समान बताने का यही ढंग क्यों अपनाया।

इस सवाल का महत्त्व तब और भी अधिक बढ़ जाता है जब हमें यह एहसास होता

---

*1. म्यूर, खंड 3, पृष्ठ 11 से उद्धृत* *2. म्यूर, खंड 3, पृष्ठ 13 से उद्धृत*

है कि पुरुष सूक्त एकमात्र ऐसा उदाहरण नहीं है जहां समाज में विभिन्न वर्गों की उत्पत्ति की व्याख्या के लिए स्रष्टा के शरीर के विभिन्न अंगों को माध्यम बनाया गया है। वैशम्पायन ऋषि ने यज्ञों को संपन्न कराने में लगे पुरोहितों के विभिन्न वर्गों की उत्पत्ति को स्पष्ट करने के लिए यही व्याख्या प्रस्तुत की है। किंतु कितना अंतर है दोनों में। वैशम्पायन की यह व्याख्या हरिवंश में इन शब्दों में मिलती है–[1]

> "इस प्रकार तेजस्वी भगवान हरि नारायण समूचे सागरों को अपनी शक्तिशाली भुजाओं में घेर इस विश्व पर सो गए जो रजों के बृहद विस्तार के मध्य एक सागर समान हो गया, भगवान स्वयं विरज थे। ब्राह्मण उन्हें अजर जानते हैं। तप के बल पर स्वयं के ही प्रकाश से आच्छादित और तीन कालों (भूत, वर्तमान और भविष्य) से आवृत, भगवान तब सो गए। जो सर्वोच्च घोषित है वह पुरुषोत्तम (विष्णु) हैं। पुरुष ही यज्ञ हैं और वह सर्वस्व हैं जिसे पुरुष नाम से जाना जाता है। यहां यज्ञ को समर्पित तथा ऋत्विज कहलाने वाले ब्राह्मणों को उन्होंने अपने ही शरीर से यज्ञ संपन्न करने हेतु औपचारिक रूप में उत्पन्न हुआ। भगवान ने अपने मुख से ब्राह्मण को उत्पन्न किया, जो कि प्रमुख है और उद्गातृ है जो सामवेद (के मंत्रों) का उच्चारण करता है, अपनी भुजाओं से उन्होंने होति और अध्वर्यु को उत्पन्न किया। तब उन्होंने...**प्रस्तोतृ**, मैत्रवरुण, और प्रतिष्ठातृ को, अपने उदर से, प्रतिहर्ति और पोतृ को, अपनी जंघाओं से, **अक्ष्वाक** और **नेस्तृ**, अपने हाथों से **अग्निघ्र** को और याज्ञिक ब्राह्मण को, अपनी भुजाओं से ग्रवण और याज्ञिक ब्राह्मण को, अपनी भुजाओं से **ग्रवण** और याज्ञिक **अन्नेतृ** को उत्पन्न किया। इस प्रकार संसार के दिव्य स्वामी ने समस्त यज्ञों के उच्चारक सोलह श्रेष्ठ ऋत्विजों को उत्पन्न किया। इसलिए यह पुरुष यज्ञ से निर्मित है और इसे वेद कहते हैं; और वेदांगों, उपनिषदों तथा संस्कारों सहित समस्त वेद उसके सार तत्त्व से निर्मित हैं।

एक यज्ञ को संपन्न करने हेतु कुल सत्रह भिन्न-भिन्न वर्गों के पुरोहितों की आवश्कता होती थी। यह किसी के लिए भी संभव नहीं है कि प्रत्येक की उत्पत्ति की व्याख्या के प्रयास में स्रष्टा के शरीर के एक अलग अंग का उल्लेख करे और पुरुष के चरणों का प्रयोग एक वर्ण के उत्पत्ति स्थल के रूप में करने से बच जाए, क्योंकि पुरुष के अंगों की संख्या इतनी कम है और पुरोहितों की संख्या इतनी अधिक। फिर भी, वैशम्पायन ने क्या किया? उसे स्रष्टा के शरीर के एक ही अंग से पुरोहितों के एक से अधिक वर्णों की उत्पत्ति बताने से कोई गुरेज नहीं हुआ। वह किसी भी पुरोहित की उत्पत्ति चरणों से बताने से चालाकी से बच गया है।

यह स्थिति तब नितांत षडयंत्रसूचक हो जाती है जब हम यह तुलना करने बैठते हैं

---

*1. म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 154-155 से उद्धृत*

कि उत्पत्ति के सम्बंध में हरिवंश में ब्राह्मणों को जो सम्मान के साथ प्रस्तुत किया गया है और पुरुष सूक्त में शूद्रों के प्रति ओछापन दिखाया गया है। क्या इसके पीछे विद्वेष की भावना है कि पुरुष सूक्त ने यह कहने में संकोच नहीं किया कि शूद्र की उत्पत्ति पुरुष के चरणों से हुई और उसका कार्य सेवा करना है? यदि यह सच है तो फिर इस विद्वेश का कारण क्या है?

## IV

शूद्रों से सम्बंधित जिन जटिल प्रश्नों का उल्लेख ऊपर किया गया है वे पुरुष सूक्त के समाजशास्त्रीय विवेचन से सामने आते हैं। शूद्र की स्थिति से सम्बंधित अन्य जटिल प्रश्न हैं जो चातुर्वर्ण्य के आदर्श के परवर्ती परिवर्तनों से उत्पन्न होते हैं। इन परिणामों को समझाने के लिए पहले इन परवर्ती परिवर्तनों पर ध्यान देना आवश्यक है। चातुर्वर्ण्य में बाद में होने वाले परिवर्तन मुख रूप में दो हैं। पहला है शूद्रों से भी नीचे पंचम वर्ग बनाना। दूसरा है प्रथम तीन वर्णों से अलग करना। ये परिवर्तन पुरुष सूक्त की मूल योजना में इतने एकीकृत हो गए हैं कि उनसे ऐसी विचित्र अभिव्यक्तियां और शब्द निकल आए हैं जो इतने सुविदित हैं कि हर कोई जानता है कि इनका मतलब क्या है। ये शब्द हैं—सवर्ण, अवर्ण, द्विज, गैर-द्विज और त्रैवर्णिक। ये शब्द मूल चार वर्णों के उप-विभाजनों, और उनके बीच पृथकता के परिमाण के परिचायक हैं। इन वर्णों की तुलनात्मक स्थिति पर ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि ये एक नए जटिल प्रश्न (पहेली) को उजागर करते हैं। यदि यह जटिल प्रश्न लोगों की दृष्टि में नहीं चढ़ा है तो इसके दो कारण हैं। पहला, क्योंकि विद्यार्थियों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है कि ये नाम मात्र नाम ही नहीं हैं, बल्कि ये निश्चित अधिकारों और विशेषाधिकारों के सूचक हैं, और दूसरा, क्योंकि उन्होंने यह पता लगाने का प्रयास नहीं किया है कि इन अधिकारों और विशेषाधिकारों के संदर्भ में, क्या इन नामों के अंतर्गत बनाए गए समूहों में कोई तर्कशीलता भी है।

इसलिए हमें यह देखना होगा कि इन शब्दों का, इन नामों का कानूनी दृष्टि से क्या अर्थ निकलता है। सवर्ण की तुलना सामान्य तौर पर अवर्ण से की जाती है। सवर्ण का अर्थ होता है वह व्यक्ति जो चार वर्णों में से किसी एक का सदस्य है। अवर्ण वह व्यक्ति होता है जो इन चारों में से किसी भी वर्ण का सदस्य नहीं होता। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सवर्ण हैं। अछूतों अथवा अतिशूद्रों को अवर्ण कहा जाता है, अर्थात जिनका कोई वर्ण नहीं है। तर्क के स्तर पर देखा जाए तो ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों की गिनती चातुर्वर्ण्य के अंदर होती है। तर्क के स्तर पर, अछूतों अथवा अतिशूद्रों का स्थान चातुर्वर्ण्य के बाहर है। द्विज की तुलना सामान्य तौर पर गैर-द्विज से होती है। द्विज का शाब्दिक अर्थ होता है दोबारा जन्मा और गैर-द्विज ऐसा व्यक्ति होता है जिसका जन्म केवल एक बार हुआ है। यह भेद उपनयन के अधिकार पर आधारित है। उपनयन को दूसरा जन्म माना जाता है। जिन लोगों को पवित्र सूत्र (जनेऊ) पहनने का अधिकार प्राप्त है वे द्विज कहलाते हैं। जिन्हें

यह अधिकार नहीं है उन्हें गैर-द्विज कहा जाता है। ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को जनेऊ धारण करने का अधिकार है। तर्क की दृष्टि से, वे द्विज हैं। शूद्रों और अतिशूद्रों को जनेऊ धारण करने का अधिकार नहीं है। तर्क की दृष्टि से ये दोनों ही गैर-द्विज हैं। त्रैवर्णिक की तुलना शूद्र से की जाती है। किंतु इस तुलना में कुछ विशेषता नहीं है। इनमें वही अंतर है जो द्विजों और गैर-द्विजों में होता है, सिवाय इसके कि यह तुलना शूद्र तक ही सीमित है और अतिशूद्र इसमें नहीं आते। इसका कारण शायद यह है कि यह शब्दावली अतिशूद्रों के पृथक वर्ण के अस्तित्व में आने से पहले ही प्रचलन में आ गई थी।

यदि यह ध्यान में रखें कि शूद्र और अतिशूद्र दोनों ही गैर-द्विज हैं, तो प्रश्न उठता है कि फिर शूद्र को सवर्ण और अतिशूद्र को अवर्ण क्यों माना जाता है? शूद्र जन चातुर्वर्ण्य के अंदर हैं और अतिशूद्र उससे बाहर क्यों? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी चातुर्वर्ण्य के चारों कोनों में स्थित हैं। ये सभी सवर्ण हैं। तो फिर शूद्र को ही त्रैवर्णिक के अधिकार से क्यों वंचित रखा गया?

क्या शूद्रों के इस जटिल प्रश्न से बढ़कर कोई और जटिल प्रश्न हो सकता है? निश्चय ही, इसकी पड़ताल और व्याख्या होनी चाहिए कि वे कौन थे और आर्यों के समाज का चौथा वर्ण कैसे बने?

अध्याय : दो

# शूद्रों की उत्पत्ति का ब्राह्मणी सिद्धांत

क्या ब्राह्मणी साहित्य में शूद्रों की उत्पत्ति के विषय में कोई व्याख्या मिलती है? इसमें कोई संदेह नहीं कि ब्राह्मणी साहित्य सृष्टि सम्बंधी आख्यानों से भरा पड़ा है, जिनमें विश्व की, मनुष्य की और विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन है। इन आख्यानों में शूद्रों की उत्पत्ति की खोज के लिए कोई सूत्र मिले या न मिले, इस विषय में कोई संदेह नहीं हो सकता कि ऐसे सभी सिद्धांतों को इस पुस्तक में स्थान मिलना चाहिए जिसका सम्बंध शूद्रों की समस्या से है। और, यह किसी और कारण से नहीं तो इस कारण से होना चाहिए कि शूद्रों से सम्बंधित सभी सामग्री को एक जगह एकत्र करके उनकी कहानी को पूरा किया जा सके। बेहतर यही होगा कि ब्राह्मणी साहित्य की प्रत्येक रचना को अलग-अलग लिया जाए और यह देखा जाए कि इस विषय पर उसमें क्या सामग्री मिलती है।

## I

शुरुआत वेदों से करते हैं। जहां तक ऋग्वेद का सवाल है, तो इसके पुरुष सूक्त को हम पिछले अध्याय में प्रस्तुत कर ही चुके हैं जिसमें सृष्टि का आख्यान है। अब दूसरे वेदों में दिए गए आख्यानों पर विचार करना शेष रह जाता है।

यजुर्वेद की दो शाखाएं हैं—(1) शुक्ल यजुर्वेद और (2) कृष्ण यजुर्वेद। पहले हम शुक्ल यजुर्वेद को लेते हैं। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में दो सिद्धांत हैं। एक तो ऋग्वेद के पुरुष सूक्त की मात्र पुनः प्रस्तुति है। अंतर बस इतना है कि इसमें 22 ऋचाएं हैं। यजुर्वेद में सम्मिलित छह अतिरिक्त ऋचाएं इस प्रकार हैं—

> "17. परम पुरुष ने सबसे पहले जल का निर्माण किया। तत्पश्चात पृथ्वी का निर्माण किया। इस पृथ्वी का निर्माण जल के रस से हुआ। त्वष्टा देव संसार को रूप धारण कराते हैं। त्वष्टा देव मनुष्यों को देवत्व और अमरता प्रदान करते हैं।
>
> 18. परम पुरुष को जानने से परम तत्त्व की प्राप्ति होती है। परम पुरुष अंधकार से परे हैं। परम पुरुष आदित्य जैसे वर्ण (रंग) के हैं। इस परम पुरुष को जानकर जो मृत्यु के पथ पर जाते हैं, उन्हें उस पथ से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसके अलावा मोक्ष का कोई और मार्ग नहीं है।
>
> 19. प्रजापति गर्भ में संचरण करते हैं। वह अजन्मा है। फिर भी बहुत रूपों

में प्रकट होते हैं। उन्हीं में सारे लोक स्थित हैं। धीर पुरुष उसके कारण चारों ओर देखते हैं।

20. जो सभी देवताओं में सबसे पहले प्रकटे, जो तेज संपन्न हैं, उन ब्रह्म को नमस्कार है। आप देवताओं के पुरोहित हैं। आप देवताओं को प्रकाशित करने वाले हैं।

21. जो देवताओं में अग्रणी हैं। जिनके बारे में यह कहा गया है कि वे प्रकाशमय ब्रह्म को प्रकटाते हैं, उस परम पुरुष को ब्रह्म ज्ञानी जानते हैं। उस परम पुरुष के वश में सारे देवता रहते हैं।

22. हे परम पुरुष श्री आपकी पत्नी है। लक्ष्मी आपकी पत्नी है। दोनों भुजाएं दिन और रात हैं। नक्षत्र आपके रूप हैं। आप सबकी इच्छा पूर्ति की सामर्थ्य रखते हैं। आप सभी लोकों की इच्छा पूर्ति करने की कृपा कीजिए।''[1]

वाजसनेयी संहिता में जो दूसरी व्याख्या दी गई है वह पुरुष सूक्त से नितांत भिन्न है। इसमें कहा गया है–

''28. प्रजापति ने वाणी से एक स्तुति की। उससे प्रजापति ने प्रजा उत्पन्न की। प्रजापति सबके अधिपति हुए। प्रजापति ने तीनों (प्राण अपान व्यान) से एक स्तुति की। प्रजापति ने ब्रह्मा को उपजाया। ब्रह्मणस्पति को उसका अधिपति बनाया। प्रजापति ने पांचों प्राणों से स्तुति की। प्रजापति ने पंचभूतों को सिरजा। पंचभूतों के स्वामी उसके अधिपति हुए। प्रजापति ने सातों से स्तुति की। प्रजापति ने सात ऋषियों को सिरजा। जगतधारक परमात्मा उसके अधिपति हुए।

29. परम पिता परमेश्वर ने पितरों को सिरजा। देवताओं की माता अदिति उनकी स्वामिनी हैं। देवताओं की माता अदिति की नौ प्राणों से स्तुति की जाती है। नौ प्राणों से ऋतुएं सिरजीं। ऋतुओं के गुण अपने-अपने विषय के अधिपति हैं। उन अधिपतियों की दस प्राणों से स्तुति की गई। परम पिता ने महीनों को सिरजा। वर्ष को उनका अधिपति बनाया। उनकी पंद्रह प्राणों से स्तुति की गई। इंद्रदेव उनके अधिपति हुए जिसने गांवों को सिरजा, जिसने पशुओं को सिरजा, उनकी सत्रह प्राणों से स्तुति की गई। बृहस्पति देव को उनका अधिपति बनाया।

30. दस और नौ अर्थात उन्नीस आंतरिक और बाहरी अंगों की तरह ही शूद्रों और आर्यों को सिरजा। दिन और रात उनके स्वामी हुए। इक्कीस अंगों से प्रजापति की स्तुति की गई। अंगों से ही छोटे-छोटे पशुओं को सिरजा। वरुणदेव उनके स्वामी हुए। तेईस अंगों से उनकी स्तुति की गई। उन अंगों से और छोटे-छोटे जीव-जंतु (पशु) सिरजे। पूषादेव उनके अधिपति हुए। पच्चीस अंगों से उनकी स्तुति की गई। उन अंगों से जंगली पशुओं को सिरजा। वायु उनके स्वामी

---

*1. यजुर्वेद, अध्याय 31, 17-22*

हुए। सत्ताईस अंगों से उनकी स्तुति की गई। इनसे ही स्वर्ग लोग व्याप्त है। इनसे ही पृथ्वी लोक व्याप्त है। उनमें ही आठ वसु वास करते हैं। उनमें ही ग्यारह रुद्र वास करते हैं। उनमें ही बारह मास वास करते हैं। आदित्य देव उनके स्वामी हुए।

31. उनतीस अंगों से परमपिता की स्तुति की गई। उन अंगों से वनस्पति को सिरजा। सोम उसके स्वामी हुए। इकत्तीस अंगों से परमपिता की स्तुति की गई। उन अंगों से प्रजा को सिरजा। स्त्री और पुरुष को उनका स्वामी बनाया। उससे प्राणी सुखी हुए। प्रजापति परम श्रेष्ठ हैं। वही सबके और लोकों के स्वामी हैं। सभी इंद्रदेव की स्तुति करते हैं।''[1]

अब कृष्ण यजुर्वेद पर आते हैं। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में कुल पांच व्याख्याएं दी गई हैं। जो व्याख्या 4.3, 10 में दी गई है वह शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता की उपर्युक्त व्याख्या से समान ही है। शेष में से शूद्रों की उत्पत्ति का वर्णन करने वाली व्याख्याएं निम्नानुसार हैं–

''देवतागण राजन्य से भयभीत थे जब वह गर्भ में था। जब वह गर्भ में था, उन्होंने उसे बंधन में बांध दिया। परिणामतः, राजन्य बंधनसहित उत्पन्न हुआ। यदि वह बंधनमुक्त उत्पन्न होता तो वह अपने शत्रुओं का वध करता रहता। यदि यह अभिलाषित है कि वह बंधनमुक्त उत्पन्न हो और अपने शत्रुओं का वध करता रहे, तो इसके लिए यह **ऐंद्र-ब्राह्मणस्पतय** आहुति दे। राजन्य का चरित्र इंद्र के समान है, और ब्राह्मण बृहस्पति होता है। ब्राह्मण के माध्यम से ही राजन्य को उसके बंधन से मुक्त किया जा सकता है। स्वर्णिम बंधन का उपहार उसे जकड़ने वाले बंधन से उसे मुक्त कर सकता है।''[2]

''प्रजापति ने इच्छा की, 'मैं सृजन करूं'। उन्होंने त्रिवृत (स्तोम) को अपने मुख से उत्पन्न किया। तत्पश्चात अग्नि देव, गायत्री छंद, साम रथांतर, मनुष्यों में ब्राह्मण और पशुओं में अज (बकरा) को उत्पन्न किया गया। इसलिए वे मुख्य हैं क्योंकि वे मुख से उत्पन्न हुए। (अपने) वक्ष, अपनी भुजाओं से उन्होंने पंचदश (स्तोम) की रचना की। तत्पश्चात देवता इंद्र, त्रिष्टुभ छंद, साम बृहत्, मनुष्यों में राजन्य, पशुओं में भेड़ की रचना हुई। इसलिए वे बलशाली हैं क्योंकि उनकी उत्पत्ति बल से हुई। (अपने) मध्य भाग से उन्होंने सप्तदश (स्तोम) की रचना की। तत्पश्चात विश्वदेवों, जगती छंद, साम वैरूप, मनुष्यों में वैश्य, पशुओं में गायों को उत्पन्न किया। इसलिए ये खाने के योग्य हैं क्योंकि इनकी उत्पत्ति उदर से हुई। इसलिए उनकी संख्या दूसरों से अधिक है, क्योंकि सर्वाधिक देवों की उत्पत्ति (सप्तदश के) बाद में हुई। अपने चरण से उन्होंने एकविंश (स्तोम) की

---

1. *यजुर्वेद, अध्याय 14, 28-31* 2. *तैत्तिरीय संहिता, 2.4.13.1*

रचना की। तत्पश्चात अनुष्टुभ छंद, साम वैराज, मनुष्यों में शूद्र, पुरुषों में अश्व की रचना की गई। इसलिए ये दो, घोड़ा और शूद्र दोनों, (दूसरे) प्राणियों के वाहक हैं। इसलिए (भी) शूद्र बलि के अयोग्य है, क्योंकि (एकविंश के) बाद में किसी भी देव को उत्पन्न नहीं किया गया। इसलिए (भी) ये अपने पैरों पर निर्वाह करते हैं, क्योंकि इनकी उत्पत्ति पैर से हुई।''[1]

अथर्ववेद की बात करें तो उसमें कुल चार व्याख्याएं हैं। उनमें से एक वैसी ही है जैसा कि ऋग्वेद का पुरुष सूक्त है। यह 19.6 में दी गई है। शेष तीन निम्नानुसार हैं–

(1) सर्वप्रथम दस सिर और दस मुख युक्त ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई। उसने पहले सोम पिया; उसने विष को प्रभावहीन किया।[2]

(2) उस (व्रत्य) में काम का उदय हुआ और उससे राजन्य की उत्पत्ति हुई।[3]

(3) इसे जानने वाला व्रत्य जिस राजा के घर अतिथि के रूप में आए, उसे उन्होंने स्वयं ही श्रेष्ठ माना। ऐसा करने से उसके राजसी पद अथवा राज्य की कोई क्षति नहीं होती। उससे ब्राह्मण और क्षत्रिय उत्पन्न हुए। उन्होंने कहा, 'किसमें प्रवेश करेंगे हम,' इत्यादि।[4]

## II

अब हम ब्राह्मण ग्रंथों पर आते हैं। शतपथ ब्राह्मण में छह व्याख्याएं मिलती हैं। इनमें से दो में वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन है। इन दो में से जिस व्याख्या में शूद्रों की उत्पत्ति का वर्णन है वह निम्नानुसार है–

''ब्रह्मा (जो टीकाकार के अनुसार अग्नि के रूप में विद्यमान थे और ब्राह्मण जाति के थे) पहले यह (ब्रह्मांड) थे, एक ही थे। एक होने के कारण उनका विस्तार नहीं हुआ। उन्होंने सोत्साह क्षत्रिय का श्रेण रूप उत्पन्न किया। देवताओं में ये शक्तिशाली हैं–इंद्र, वरुण, सोम, रुद्र, परजन्य, यम, मृत्यु, ईषान। इसलिए क्षत्रिय से श्रेष्ठ कोई भी नहीं है। इसलिए ब्राह्मण राजसूय यज्ञ में क्षत्रिय से नीचे बैठता है; यह गौरव वह क्षत्रिय (राज सत्ता) को देता है। यह ब्रह्मा, क्षत्रिय (की उत्पत्ति) का स्रोत है। इस प्रकार, यद्यपि राजा श्रेष्ठता को प्राप्त करता है, अंत में वह अपने उद्‌गम के रूप में ब्राह्मण की शरण में आता है। जो उसे (ब्राह्मण को) नष्ट करता है वह अपने ही उद्‌गम को नष्ट करता है। वह अत्यंत दयनीय बन जाता है, जैसे वह व्यक्ति जो अपने से श्रेष्ठ को आहत करता है। उनका विकास नहीं हुआ। उन्होंने विश को अर्थात देवताओं के उस वर्ग को उत्पन्न किया जिसमें वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वदेव, मारुत आते हैं। उनका विकास नहीं हुआ। उन्होंने शूद्र वर्ण पूषण को उत्पन्न किया। यह पृथ्वी पूषणी है; क्योंकि वह

*1. तैत्तिरीय संहिता, 7.1.1.4*    *2. अथर्ववेद, 4.6.1*

*3. अथर्ववेद, 15.8.1*    *4. अथर्ववेद, 15.9.1*

सब का पोषण करती है। उनका विकास नहीं हुआ। उन्होंने सोत्साह एक श्रेष्ठ रूप धर्म को उत्पन्न किया। यह शासक का शासक अर्थात न्याय है। इसलिए न्याय से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। इसलिए दुर्बल व्यक्ति सबल को न्याय द्वारा, जैसा राजा के द्वारा, जीतता है। यह न्याय ही सत्य है। परिणामतः, सत्यवादी के विषय में कहा जाता है, 'वह न्याय की बात करता है'। क्योंकि यह दोनों ही है। यह ब्रह्मा, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र है। अग्नि के द्वारा यह देवताओं में ब्राह्मण, मनुष्यों में ब्राह्मण, (दिव्य) क्षत्रिय के द्वारा (मानव) क्षत्रिय, (दिव्य) वैश्य द्वारा (मानव) वैश्य, (दिव्य) शूद्र द्वारा (मानव) शूद्र बना। इसलिए, देवताओं में यह अग्नि और मनुष्यों में ब्राह्मण है।"[1]

तैत्तिरीय ब्राह्मण में इसे निम्नानुसार व्याख्यायित किया गया है–

(1) "ब्राह्मण जाति की उत्पत्ति देवताओं से, शूद्रों की उत्पत्ति असुरों से हुई है।"[2]

(2) "इस शूद्र की उत्पत्ति शून्य से हुई है।"[3]

## III

चार वर्णों और शूद्रों की उत्पत्ति के सम्बंध में ब्राह्मणी अटकलों का यहां पूरा संग्रह है। प्राचीन ब्राह्मणों को इस तथ्य का ज्ञान था कि चार वर्णों की उत्पत्ति एक असाधारण और असामान्य सामाजिक परिघटना थी और इसमें शूद्र का स्थान अत्यंत अप्राकृतिक था और इसकी व्याख्या अपेक्षित थी। नहीं तो, चातुर्वर्ण्य और शूद्र की उत्पत्ति को स्पष्ट करने के इन असंख्य प्रयासों का औचित्य बताना असंभव होता।

किंतु इन व्याख्याओं के विषय में क्या कहा जाए? ये विविध व्याख्याएं बस भरमाने वाली हैं। कुछ में कहा गया है कि चार वर्णों की उत्पत्ति पुरुष से हुई, और कुछ इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा से बताते हैं, तो कुछ प्रजापति से इनकी उत्पत्ति मानते हैं और कुछ व्रत्य से। एक ही स्रोत भिन्न-भिन्न व्याख्याएं देता है। शुक्ल यजुर्वेद में दो व्याख्याएं दी गई हैं, एक पुरुष के सम्बंध में और दूसरी प्रजापति के सम्बंध में। कृष्ण यजुर्वेद में तीन व्याख्याएं मिलती हैं। दो प्रजापति के सम्बंध में और तीसरी ब्राह्मण के सम्बंध में। अथर्ववेद में चार व्याख्याएं हैं, एक पुरुष के सम्बंध में, दूसरी ब्राह्मण के सम्बंध में, तीसरी व्रत्य के सम्बंध में, और चौथी इन तीनों से सर्वथा भिन्न है। सिद्धांत एक ही होते हुए भी विवरण में असमानता है। कुछ व्याख्याएं, जैसे प्रजापति अथवा ब्रह्मा वाली व्याख्याएं धर्मशास्त्रीय हैं। मनु अथवा कश्यप सम्बंधी व्याख्याएं मानवीय प्रकृति की हैं। यहां सब कुछ काल्पनिक है। इनमें न तो इतिहास है और न ही कोई तर्कशीलता। ब्राह्मण ग्रंथों पर टिप्पणी करते हुए मैक्स मूलर कहते हैं–

1. *शतपथ ब्राह्मण, 15, 4.2.23*
2. *तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1, 2.6.7*
3. *तैत्तिरीय ब्राह्मण, 3, 2.3.9*

"इसमें कोई संदेह नहीं कि ब्राह्मण ग्रंथ भारतीय मानस के इतिहास के एक अत्यधिक रोचक दौर का प्रतिनिधित्व करते हैं, किंतु साहित्यिक कृतियों के रूप में वे अत्यधिक निराश करते हैं। किसी ने यह सोचा भी नहीं होगा कि इतने प्रारंभिक काल में, और इतने आदिम समाज में, ऐसे साहित्य की रचना हुई होगी जिनके पांडित्यदंभ और अनर्गलता का सानी और कहीं मिलना दुर्लभ है। इनमें जबरदस्त विचार हैं, सशक्त अभिव्यक्तियां हैं, ठोस तर्क हैं, और विचित्र परंपराएं हैं। किंतु ये एक धड़ के खंडित अंशों के समान ही हैं, जैस पीतल और सीसे में कीमती रत्न जड़ दिए हों। इन रचनाओं में छिछला और नीरस शब्दाडंबर है, पुरोहिती दर्प है, और पुरातन पांडित्यदंभ है। इतिहासकार के लिए यह जानना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि पुरोहितलीला और अंधविश्वास किसी राष्ट्र के नूतन और स्वस्थ विकास को कितने शीघ्र बाधित कर सकता है। हमारे लिए यह जानना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि राष्ट्र अपनी तरुणाई में और अपनी परिपक्वावस्था में भी इन महामारियों के शिकार हो सकते हैं। इन रचनाओं का उसी प्रकार से अध्ययन किया जाना चाहिए जैसे चिकित्सक मंदबुद्धियों के अनर्गल प्रलाप और पागलों की बड़बड़ का अध्ययन करता है।"[1]

चार वर्णों की, और विशेषकर शूद्रों की, उत्पत्ति के विषय में इन ब्राह्मणी अटकलों के बारे में पढ़कर प्रो. मैक्स मूलर के इन शब्दों का स्मरण हो आता है। ये सारी अटकलें सचमुच मंदबुद्धियों का अनर्गल प्रलाप और पागलों की बड़बड़ हैं और इसीलिए एक मानवीय समस्या की एक प्राकृतिक व्याख्या की खोज में लगे इतिहास के विद्यार्थी के लिए ये किसी काम की नहीं हैं।

---

*1. मैक्स मूलर, एनशिएंट संस्कृत लिटरेचर (पाणिनी ऑफिस संस्करण), पृष्ठ 200*

अध्याय : तीन

# शूद्रों की स्थिति सम्बंधी ब्राह्मणी सिद्धांत

यह तो रहा शूद्रों की उत्पत्ति के सम्बंध में ब्राह्मणी दृष्टिकोण। अब हम शूद्रों की सामाजिक हैसियत सम्बंधी, ब्राह्मणी दृष्टिकोण की बात करें तो हमारा ध्यान अयोग्यताओं की एक लंबी सूची पर जाता है, और उसके साथ दिखाई देती है पीड़ा और दंड की एक अत्यंत दारुण व्यवस्था, जिसका शिकार ब्राह्मणी विधिकारों ने शूद्रों को बनाया है।

जैसा कि निम्नलिखित अंशों से स्पष्ट होता है, संहिताओं और ब्राह्मण ग्रंथों में शूद्रों की अयोग्यताएं और उन पर लागू दंड कम ही थे—

1. काठक संहिता (31.2) और मैत्रायणी संहिता (4, 1.3; 1, 8.3) के अनुसार—
   "शूद्र को उस गाय का दूध नहीं दुहने देना चाहिए जिसका दूध अग्निहोत्र के लिए इस्तेमाल होता है।"
2. शतपथ ब्राह्मण (3, 1.1.10), मैत्रायणी संहिता (7,1,1,6) और पंचविंश (6, 1.11) में भी कहा गया है—
   "यज्ञ करते समय शूद्र से बात नहीं करनी चाहिए और यज्ञ होते समय शूद्र को वहां उपस्थित नहीं रहना चाहिए।"
3. शतपथ ब्राह्मण (3, 1.1.10) और काठक संहिता (11, 10) में यह भी कहा गया है कि—
   "शूद्र को सोमपान नहीं करने देना चाहिए।"
4. ऐतरेय ब्राह्मण (7, 27.4) और पंचविंश ब्राह्मण (6, 1.11) तो यहां तक कहते हैं कि—
   "शूद्र तो दूसरे का सेवक है और इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।"

किंतु प्रारंभ में जो मनुष्य के हाथ बराबर बादल था, लगता है वह बढ़कर एक तूफान का रूप ले चुका है, और उसने शूद्रों को वस्तुतः तबाह कर दिया है। क्योंकि आपस्तम्ब, बौधायन आदि जैसे सूत्रकारों के और मनु तथा अन्य स्मृतिकारों के परवर्ती दंडविधानों से उद्धृत अंशों से यह स्पष्ट हो जाता है क शूद्रों की अयोग्यताओं के विकास में अंधाधुंध गति रही है और यह इस हद तक हुआ है कि उसके विषय में सोचा भी नहीं जा सकता।

अयोग्यताएं इतनी मारक है कि उन पर तब तक विश्वास ही नहीं होता जब तक आप उन्हें मुद्रित अवस्था में नहीं देख लेते। किंतु ये इतनी अधिक हैं कि उन्हें पूरा का पूरा प्रस्तुत ही नहीं किया जा सकता। जो लोग इनसे अनभिज्ञ हैं, उन्हें इन अयोग्यताओं का कुछ भास करने के उद्देश्य से, वहां मैं विभिन्न सूत्रकारों और स्मृतिकारों के शूद्रों की अयोग्यताओं सम्बंधी उदाहरणीय कथनों को एक जगह ही दे रहा हूं, जो उनके विधानों अथवा स्मृति ग्रंथों में बिखरे पड़े हैं।

## II

### (i)

(क) आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है–

''चार जातियां हैं–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

इन चारों जातियों में हर पूर्ववर्ती जाति अपनी परवर्ती जाति से जन्म के आधार पर श्रेष्ठतर है[1]–

क्योंकि शूद्रों और कुकर्मियों को छोड़ इन सभी को (1) पवित्र धागा (जनेऊ) पहनने की अनुमति है, (2) वेद अध्ययन की अनुमति है, और (3) पवित्र अग्नि प्रज्वलित करने अर्थात यज्ञ करने का अधिकार है।''[2]

(ख) वसिष्ठ धर्मसूत्र में कहा गया है–

''चार जातियां (वर्ण) हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

तीन जातियां ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य (कहलाती हैं) द्विज।

उनका पहला जन्म मां से होता है; दूसरा पवित्र धागा धारण करने से। उस (दूसरे जन्म) में सावित्री (उनकी) मां होती है, किंतु शिक्षक पिता कहा जाता है।

वे शिक्षक को पिता कहते हैं, क्योंकि वह वेद की शिक्षा देता है।[3]

चारों जातियों की पहचान उनके जन्म और विशिष्ट संस्कारों से होती है।

वेद में यह अंश भी है–'ब्राह्मण उसका मुख था, क्षत्रिय उसकी भुजाएं; वैश्य उसकी जंघाएं; शूद्र का जन्म उसके चरणों से हुआ।'

वेद के इस अंश में यह कहा गया है कि शूद्र को संस्कारों का अधिकार नहीं होगा। 'उसने ब्राह्मण को गायत्री (छंद) से, क्षत्रिय को त्रिष्टुभ से, वैश्य को जगती से, और शूद्र को बिना किसी छंद के उत्पन्न किया।''[4]

(ग) मनुस्मृति में इस विषय में निम्नलिखित विचार दिए गए हैं–

''लोकों की समृद्धि के लिए उस (ब्रह्मा) ने अपने मुख, भुजाओं, जंघा और चरण से (क्रमशः) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को बनाया।[5]

ब्राह्मण, क्षत्रिय (और) वैश्य तीन द्विज जातियां हैं, किंतु चौथी जाति शूद्र का एक ही जन्म होता है।''[6]

### (ii)

(क) आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है–

''(एक त्रैवर्णिक) अंत्येष्टि स्थल में अथवा इसके निकट कहीं भी एक साम्य की दूरी (वेद का) अध्ययन नहीं करेगा।

---

*1. प्रश्न 1, पटल 1, खंड 1, सूत्र 4-5*

*2. प्रश्न 1, पटल 1, खंड 1, सूत्र 6*

*3. अध्याय 2, स्तोत्र 1-4*

*4. अध्याय 4, स्तोत्र 3*

*5. अध्याय 1, श्लोक 31*

*6. अध्याय 10, श्लोक 4*

यदि किसी अंत्येष्टि स्थल पर गांव बन गया है अथवा इसकी सतह को खेत के रूप में जोता गया है, तो ऐसे स्थान में वेद पाठ वर्जित है।

किंतु यदि वह स्थान अंत्येष्टि स्थल रहा है, तो वह (वहां) अध्ययन नहीं करेगा।

शूद्र और जाति-बहिष्कृत (लोग) अंत्येष्टि स्थल होते हैं, (और सूत्र 6 में दिया नियम उन पर लागू होता है)।

कुछ कहते हैं कि (व्यक्ति को केवल अध्ययन से बचना चाहए) उसी घर में (जहां वे रहते हैं)।

किंतु यदि (एक विद्यार्थी और) एक शूद्र की स्त्री एक-दूसरे को केवल देख भी लेते हैं, तो वेद पाठ को बीच में ही रुकवा देना चाहिए।[1]

अशुद्ध (ब्राह्मण अथवा उच्च जाति के व्यक्ति) द्वारा हुआ भोजन अशुद्ध तो हो जाता है किंतु खाने के योग्य रहता है।

किंतु जिसे एक अशुद्ध शूद्र लाता है (वह चाहे छुआ हुआ नहीं भी हो) उसे बिलकुल नहीं खाना चाहिए।

शूद्र उस (व्यक्ति) को छूता है, (तब वह खाना छोड़ देगा)।''[2]

(ख) विष्णु स्मृति में कहा गया है–

''उसे एक द्विज जाति के व्यक्ति को एक शूद्र से नहीं उठवाना चाहिए (भले ही वह मृतक का नातेदार हो)।

न ही किसी शूद्र को एक द्विज जाति से।

पिता और माता को उनके पुत्र उठाएंगे; (जो जाति में अपने माता-पिता के बराबर हैं)।

किंतु शूद्रों को कभी भी एक द्विज जाति के व्यक्ति को नहीं उठाना चाहिए, भले ही वह उनका पिता हो।''[3]

(ग) वसिष्ठ धर्मसूत्र में लिखा है–

''इसलिए अब हम बताएंगे कि क्या खाया जा सकता है और क्या नहीं खाया जा सकता।

चिकित्सक (वैद्य), शिकारी, कुलटा स्त्री, गदाधारी, चोर, अभिशप्त, और हिजड़े, (अथवा) जाति-बहिष्कृत के द्वारा दिया गया भोजन बिलकुल नहीं खाना चाहिए।

और कृपण, स्रौत यज्ञ का प्राथमिक संस्कार किए व्यक्ति, कैदी, रोगी, सोम के पौधे को बेचने वाले, बढ़ई, धोबी, मदिरा बेचने वाले, गुप्तचर, सूदखोर, (अथवा) मोची का दिया हुआ (भोजन भी नहीं खाना चाहिए)।

---

1. प्रश्न 1, पटल 3, खंड 9, सूत्र 6-11 2. प्रश्न 1, पटल 5, खंड 16, सूत्र 21-22

3. अध्याय 19, सूत्र 1-4

शूद्र का दिया हुआ भोजन भी नहीं।[1]

कुछ लोग उस शूद्र प्रजाति को अंत्येष्टि स्थल कहते हैं।

इसलिए शूद्र की उपस्थिति में वेद-पाठ बिलकुल नहीं होना चाहिए।''

अब वे (निम्नलिखित) सूत्रों को भी उद्धृत करते हैं जिन्हें यम ने कहा था–

दुष्ट शूद्र प्रजाति प्रकट में एक अंत्येष्टि स्थल है। इसलिए (वेद) पाठ एक शूद्र की उपस्थिति में कभी भी नहीं करना चाहिए।[2]

कुछ पवित्र विद्या द्वारा दान के योग्य पात्र बन जाते हैं, और कुछ तप के द्वारा। किंतु जिस ब्राह्मण के उदर में किसी शूद्र का भोजन नहीं है, वह उन सब में भी योग्यतम होता है।[3]

यदि कोई ब्राह्मण अपने उदर में किसी शूद्र का भोजन लिए हुए मर जाता है तो वह (अपने अगले जन्म में) गावं का सुअर बनेगा अथवा शूद्र के परिवार में जन्म लेगा।

क्योंकि यद्यपि (एक ब्राह्मण) जिसके शरीर का पोषण एक शूद्र के भोजन के सत् से हुआ है, भले ही प्रतिदिन वेद पाठ करे, भले ही वह अग्निहोत्र करे अथवा (प्रार्थनाओं का) उच्चार करे (फिर भी) उसे ऊपर की ओर ले जाने वाला मार्ग नहीं मिलेगा।

किंतु यदि, एक शूद्र का भोजन खाने के उपरांत, वह अपनी पत्नी से सहवास करता है, तो (उसकी अपनी ही जाति की पत्नी से उत्पन्न उसके पुत्र (भी) भोजन देने वाले (अर्थात शूद्र) के होंगे और वह स्वर्ग में नहीं जाएगा।[4]

(घ) मनुस्मृति में लिखा है–

''उसे (ब्राह्मण को) चाहिए कि शूद्र के राज्य में और अधर्मी, अनेक पाखंडी और अंत्यज व्यक्तियों से भरे और घिरे हुए गांव में नहीं बसें।[5]

जो ब्राह्मण किसी शूद्र के लिए यज्ञ करता है उसे श्राद्ध में अन्य ब्राह्मणों के साथ आमंत्रित नहीं किया जाना चाहिए। उसकी संगति से वह सारा पुण्य नष्ट हो जाएगा जो अन्यथा इस भोज से प्राप्त किया जा सकता है।[6]

शूद्र के शव को दक्षिणी नगर द्वार से ले जाना चाहिए, किंतु द्विजों के शव को क्रमशः पश्चिमी, उत्तरी और पूर्वी (द्वारों) से ले जाना चाहिए।[7]

**(iii)**

(क) आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है–

''एक ब्राह्मण अपनी दाहिनी भुजा को अपने कान के स्तर (ऊंचाई) पर फैलाकर

---

*1. अध्याय 14, पद 1-4*
*2. अध्याय 18, पद 11-15*
*3. अध्याय 6, पद 26*
*4. अध्याय 6, पद 27-29*
*5. अध्याय 4, श्लोक 61*
*6. अध्याय 3, श्लोक 178*
*7. अध्याय 5, श्लोक 92*

प्रणाम करे, क्षत्रिय उसे अपने सीने की ऊंचाई पर पकड़कर, वैश्य कमर की ऊंचाई तक रखकर, और शूद्र उसे नीचे रखते हुए (और) जुड़े हाथों को फैलाकर प्रणाम करे।[1]

और प्रथम (तीन) जातियों (के व्यक्ति) के प्रणाम का जवाब देते समय, सम्बोधित व्यक्ति के नाम के अंतिम अक्षर को तीन मात्राओं तक उच्चारित करे।[2]

यदि कोई शूद्र (ब्राह्मण का) अतिथि बनकर आता है, तो वह उसे कुछ काम करने को दे। और (यह हो जाने के) बाद में वह उसे खिलाए। पहले उसे काम करने के लिए न कहकर उसे (भोजन) खिलाना उसे सम्मान देना होगा।

अथवा (ब्राह्मण गृहस्थ के) दास राज-भंडार से (चावल) लाएं, और अतिथि के रूप में शूद्र का सम्मान करें।''[3]

(ख) विष्णु स्मृति में लिखा है–

''देवों के तर्पण अथवा पितरों के श्राद्ध के अवसर पर शूद्र अथवा धार्मिक संन्यासी का सत्कार करने का दंड (एक सौ पण का भुगतान) भी वही होगा।''[4]

(ग) मनुस्मृति में लिखा है–

''दस वर्ष के ब्राह्मण और सौ वर्ष के क्षत्रिय को पिता और पुत्र के समान समझना चाहिए; किंतु उनमें पिता (है) ब्राह्मण।

धन, बंधु, आयु, कर्म और पांचवीं विद्या; ये सम्मान के कारक हैं, और इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है अंतिम (उल्लिखित)।

तीनों (उच्च) जातियों में इन पांच गुणों में से सर्वोत्तम और सर्वाधिक जिसमें हों वह सम्मान योग्य है; शूद्र (अपने धन अथवा ज्ञान के कारण सम्मान योग्य नहीं होता चाहे वे जितने अधिक मात्रा में हों। वह तो केवल अपनी आयु के कारण सम्मान योग्य होता है, और वह भी नब्बे वर्ष का हो जाने पर, उससे पहले नहीं।[5]

क्योंकि वर्षों (आयु) से नहीं श्वेत केशों से नहीं, धन से नहीं, न ही बंधु से (श्रेष्ठता होती है); ऋषियों का बनाया नियम है यह–जिसे वेद का पूर्ण ज्ञान है, वही हममें बड़ा (महान) है।

ब्राह्मण की श्रेष्ठता ज्ञान से (है), किंतु क्षत्रिय की पराक्रम से, वैश्य की संपत्ति (और) धन से, और शूद्र की आयु से होती है।

इसलिए कोई व्यक्ति इस कारण वयोवृद्ध नहीं होता कि उसके केश श्वेत हैं; (किंतु) वह चाहे तरुण भी हो और उसने (वेदों का) गहन अध्ययन किया है, तो उसे देवगण बड़ा मानते हैं।[6]

अब क्षत्रिय तो ब्राह्मण के घर में अतिथि नहीं कहलाता, न ही वैश्य और न

---

*1. प्रश्न 1, पटल 2, खंड 5, सूत्र 16*
*2. प्रश्न 1, पटल 2, खंड 5, सूत्र 16*
*3. प्रश्न 2, पटल 2, खंड 4, सूत्र 19-20*
*4. अध्याय 5, सूत्र 115*
*5. अध्याय 2, श्लोक 135-137*
*6. अध्याय 2, मंत्र 154-56*

ही शूद्र; न ही मित्र, न बंधु, न (गृहपति का) गुरु ही (अतिथि कहलाता है)। (अर्थात केवल ब्राह्मण को ही ब्राह्मण के घर में अतिथि के रूप में सम्मान पाने का अधिकार है)।

किंतु यदि कथित ब्राह्मणों के खा चुकने के उपरांत कोई क्षत्रिय अतिथि के रूप में आ जाए तो व्यक्ति को उसकी इच्छा (होने) पर उसे भोजन देना चाहिए।

यदि वैश्य (अथवा) शूद्र अतिथि के रूप में घर आ जाएं, तो ब्राह्मण को चाहिए कि वह उन्हें दयालुता से सेवकों के साथ भोजन दे।''[1]

**(iv)**

(क) आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार—

जो क्षत्रिय का वध करे वह (अपने इस कृत्य के पश्चातापस्वरूप ब्राह्मणों को) एक हजार गायें दे।

वह वैश्य का वध करने पर एक सौ गायें, (और) शूद्र (का वध करने) पर (केवल) दस गायें दे।[2]

(ख) गौतम धर्मसूत्र के अनुसार—

यदि क्षत्रिय किसी ब्राह्मण को अपशब्द कहे तो उस पर एक सौ (कार्षापण) का दंड लगेगा।

(ब्राह्मण पर) प्रहार करने पर इससे दो गुना (देना पड़ेगा)।

यदि वैश्य किसी ब्राह्मण को अपशब्द कहे तो उस पर (क्षत्रिय से) डेढ़ गुना (दंड लगेगा)।

किंतु (यदि) ब्राह्मण (किसी) क्षत्रिय को (अपशब्द कहे तो उसे) पचास कार्षापण (दंडस्वरूप देने होंगे)।

वैश्य को अपशब्द करने पर उसकी आधी राशि (दंडस्वरूप देनी होगी)।

और शूद्र को अपशब्द कहने पर कुछ भी नहीं (देना होगा)।[3]

(ग) बृहस्पति धर्मसूत्र के अनुसार—

''क्षत्रिय को अपशब्द कहने वाले ब्राह्मण के लिए दंड एक सौ के आधे (पचास) पण होंगे; वैश्य को अपशब्द कहने के लिए; पचास के आधे (पच्चीस) पण, (और) शूद्र को अपशब्द कहने के लिए साढ़े बारह (पण होंगे)।

एक सदाचारी सद्‌गुणी शूद्र (अर्थात जो अपनी निम्न प्रस्थिति [हैसियत] को भी स्वीकार करता और उससे सम्बंधित कर्तव्यों को स्वेच्छा से करता है, उस शूद्र) को अपशब्द कहने के लिए यह दंड बताया गया है, जिसने कोई गलत कार्य नहीं किया है; यदि ब्राह्मण किसी गुणहीन शूद्र को अपशब्द कहे तो इसके लिए कोई दंड नहीं होगा।

---

*1. अध्याय 3, मंत्र 110-112* *2. प्रश्न 1, पटल 9, खंड 24, सूत्र 1-3*

*3. अध्याय 12, सूत्र 8-13*

क्षत्रिय को तिरस्कृत करने पर वैश्य को एक सौ (पण) का दंड देना होगा; वैश्य को तिरस्कृत करने पर क्षत्रिय को उसकी आधी राशि दंड स्वरूप देनी होगी।

यदि क्षत्रिय किसी शूद्र को तिरस्कृत करे तो उसके दंडस्वरूप बीस पण देने होंगे; वैश्य के मामले में विधि के ज्ञाताओं ने इससे दो गुनी राशि को उचित दंड बताया है।

शूद्र को एक वैश्य को अपशब्द कहने पर प्रथम दंड; एक क्षत्रिय को अपशब्द कहने पर मध्यम दंड; और एक ब्राह्मण को अपशब्द कहने पर सर्वोच्च दंड देना पड़ेगा।''[1]

(घ) मनुस्मृति के अनुसार–

''ब्राह्मण को अपशब्द कहने पर क्षत्रिय को एक सौ पण, वैश्य को डेढ़-दो सौ पण दंडस्वरूप देने चाहिएं और शूद्र को मृत्युदंड मिलना चाहिए।

क्षत्रिय को अपशब्द कहने पर ब्राह्मण को दंडस्वरूप पचास, वैश्य को पच्चीस और शूद्र को बारह पण दंडस्वरूप देने होंगे।''[2]

''श्रेष्ठ ब्राह्मण यदि अज्ञानवश क्षत्रिय की हत्या कर दे तो अच्छी तरह से प्रायश्चित करके एक बैल और एक हजार गायें दान करे।

अथवा इंद्रियों को वश में करके और जटा धारण करके गांव से दूर किसी वृक्ष के नीचे कुटी बनाकर रहे और तीन वर्ष तक ब्राह्मण हत्या का व्रत करे।

सद्‌गुणी सदाचारी वैश्य की हत्या करने पर ब्राह्मण इसी प्रकार व्रत करे और एक सौ एक गायों का दान करे।

जो ब्राह्मण किसी शूद्र की हत्या करे वह भी इसी व्रत को छह मास तक करे; अथवा वह एक बैल और दस श्वेत गायें ब्राह्मण को दान करे।''[3]

(च) विष्णु स्मृति के अनुसार–

''कोई निम्न व्यक्ति जिस भी अंग से अपनी से ऊंची जाति के व्यक्ति को अपमानित अथवा आहत करे, उसका वह अंग राजा कटवा दे।

यदि वह अपने से ऊंची जाति वाले के बराबर आसन ग्रहण करे, तो उसके नितंबों को दाग कर उसे निर्वासित कर दिया जाए।

यदि वह उस पर थूके तो उसके दोनों ओंठ काट दिए जाएं।

यदि वह उस पर अपान वायु छोड़े, तो उसके नितंब कटवा दिए जाएं।

यदि वह अपशब्द कहे, तो उसकी जीभ काट दी जाए।

यदि कोई निम्नजात व्यक्ति अभिमान के कारण (सर्वोच्च जाति के किसी व्यक्ति को) निर्देश दे, तो राजा उसके मुख में गरम तेल डलवा दे।

---

*1. अध्याय 20, मंत्र 7-11*  *2. अध्याय 8, श्लोक 267-268*

*3. अध्याय 11, श्लोक 127-131*

यदि शूद्र वर्ण का कोई व्यक्ति अपने से श्रेष्ठ जाति के किसी व्यक्ति का नाम अथवा जाति के विषय में अपशब्द कहे, तो दस इंच लंबी लोहे की कील आग में लाल करके उसके मुंह में घुसेड़ दी जाए।"[1]

**(v)**

(क) बृहस्पति स्मृति के अनुसार–

"जो शूद्र धर्म का उपदेश दे अथवा वेद वचनों का उच्चार करे, अथवा ब्राह्मण का अपमान करे, दंडस्वरूप उसकी जीभ काट दी जाए।"[2]

(ख) गौतम धर्मसूत्र के अनुसार–

"यदि वह साभिप्राय वेद (पाठ) को सुने, तो उसके कानों में पिघला हुआ रांगा अथवा लाख भर दिया जाए।

यदि वह (वैदिक ग्रंथों का) पाठ करे, तो उसकी जीभ काट दी जाए।

यदि वह उन्हें कंठस्थ करे, तो उसके शरीर के दो टुकड़े कर दिए जाएं।"[3]

(ग) मनुस्मृति के अनुसार–

"जो शुल्क लेकर पढ़ाता है, जो शुल्क देकर पढ़ता है (शूद्र) शिक्षक और उससे शिक्षा ग्रहण करने वाला भी देवकार्य और श्राद्ध में आमंत्रित किए जाने के अयोग्य हैं।"[4]

"शूद्र को परामर्श नहीं दें, न ही उसे भोजन की जूठन और हवि का बचा अंश दें।

और कोई उसे धर्म का उपदेश न दे, न उसे व्रत को कहे।

क्योंकि जो कोई शूद्र से धर्म कहता अथवा उसे व्रत का उपदेश देता है, वह उसी के साथ असंवृत नामक नर्क में गिरता है।"[5]

"वेद को अस्पष्ट रूप में अथवा शूद्र की उपस्थिति में न पढ़ा जाए, और रात के अंतिम पहर में वेद पढ़कर थका हुआ व्यक्ति फिर न सोए।"[6]

**(vi)**

मनुस्मृति के अनुसार–

"ब्राह्मण तो शूद्र का धन निश्चिंत होकर ले सकता है, क्योंकि इस शूद्र का अपना कुछ भी नहीं होता, इसलिए उसका स्वामी उसकी संपत्ति ले सकता है।[7]

क्योंकि समर्थ होने पर भी शूद्र को धन का संचय नहीं करना चाहिए, क्योंकि शूद्र का धन संचयन करना ही ब्राह्मण को आहत करता है।"[8]

---

1. अध्याय 5, सूत्र 19-25
2. अध्याय 12, पद 12
3. अध्याय 20, सूत्र 4-6
4. अध्याय 3, श्लोक 156
5. अध्याय 4, श्लोक 78-81
6. अध्याय 4, श्लोक 99
7. अध्याय 8, श्लोक 417
8. अध्याय 10, श्लोक 129

**(vii)**

राजा के लिए मनुस्मृति में यह परामर्श है–

"जो केवल अपने जन्म के आधार पर ब्राह्मण हो सकता है अथवा जो केवल स्वयं को ब्राह्मण कहता है, वह चाहे तो राजा के लिए धर्म वक्ता हो सकता है, किंतु शूद्र कभी नहीं।

यदि न्याय करे और राजा उस समय देखता रहे, तो उसका राज्य दलदल में फंसी गाय के समान दुखमग्न हो जाता है।

जिस राज्य में मुख्यतया शूद्र रहते हैं और जहां नास्तिक होते हैं तथा जो द्विजों से रहित होता है वह अकाल और रोग से उत्पीड़ित होकर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।"[1]

**(viii)**

(क) आपस्तम्ब धर्मसूत्र में लिखा है–

"और जो तप करते, पवित्र धर्म का पालन करते हैं। और जो शूद्र (ब्राह्मण के) चरण धोकर जीता है।

अंधे, गूंगे, बहरे और रोगी व्यक्तियों को भी (जब तक उनकी व्याधियां समाप्त नहीं होतीं) करों (टैक्स) से छूट है।[2]

अन्य तीन जातियों की सेवा करना शूद्र का धर्म है।

वह जितनी ऊंची जाति की सेवा करेगा उतना ही अधिक पुण्य उसे प्राप्त होगा।"[3]

(ख) मनुस्मृति के अनुसार–

"अब इस समस्त सृष्टि के संरक्षण हेतु उस महातेजस्वी (परमात्मा) ने अपने मुख, भुजा, जांघ और चरणों से उत्पन्न वर्णों के लिए अलग-अलग कर्म बनाए।

ब्राह्मण को उसने शिक्षा देने का, अध्ययन का, यज्ञ का, और (पुरोहित के रूप में) दूसरों के लिए बलि करने का, और दान देने तथा लेने का भी आदेश दिया।

क्षत्रिय के लिए लोगों की रक्षा, (दान) देने, बलि, अध्ययन, और विषयों में आसक्त न होना, संक्षेप में ये कर्म बनाए।

पशुओं की देखभाल, (दान) देना, यज्ञ, अध्ययन, व्यापार, सूदखोरी, और कृषि के कर्म वैश्य के लिए बनाए।

परमात्मा ने शूद्र को एक काम दिया–बिना किसी वैर-भाव के (उपर्युक्त) तीनों वर्णों की सेवा करना।"[4]

---

*1. अध्याय 8, श्लोक 20-22*

*2. प्रश्न 2, पटल 10, खंड 26, सूत्र 14-16*

*3. प्रश्न 1, पटल 1, खंड 1, सूत्र 7-8*

*4. अध्याय 1, श्लोक 87-91*

**(ix)**

(क) आपस्तम्ब धर्मसूत्र में लिखा है–

"प्रथम तीन जातियों में से किसी भी जाति का पुरुष किसी शूद्र स्त्री के साथ व्यभिचार करे तो उसे निर्वासित कर दिया जाए।

यदि कोई शूद्र प्रथम तीन जातियों में से किसी भी जाति की स्त्री के साथ व्यभिचार करे तो उसे मृत्यु दंड दिय जाए।"[1]

(ख) गौतम धर्मसूत्र के अनुसार–

"यदि शूद्र किसी आर्य स्त्री के साथ आपराधिक सहवास करे तो उसका लिंग काट दिया जाए और उसकी सारी संपत्ति जब्त कर ली जाए।

यदि स्त्री का कोई संरक्षक अर्थात अभिभावक हो, तो उस (शूद्र) को उपर्युक्त दंड भुगतने के पश्चात मृत्यु दंड दिया जाए।"[2]

(ग) मनुस्मृति में कहा गया है–

"यदि (शूद्र जाति का) पुरुष सर्वोच्च जाति की कन्या से सहवास करे तो वह मृत्यु दंड का अधिकारी होगा।[3]

यदि कोई शूद्र पुरुष द्विज जाति की स्त्री के साथ सहवास करे, चाहे वह स्त्री रक्षित हो अथवा अरक्षित, तो स्त्री के अरक्षित होने की स्थिति में उसका लिंग काट दिया जाए और उसकी सारी संपत्ति ले ली जाए, और यदि वह स्त्री रक्षित है, तो उस (शूद्र पुरुष) का सर्वस्व ले लिया जाए।"[4]

"द्विज पुरुषों के लिए पहले तो उसी (की) जाति की स्त्री श्रेष्ठ मानी गई है; किंतु वासना के वशीभूत पुरुषों के लिए क्रमानुसार निम्न जाति की ये स्त्रियां पत्नी हो सकती हैं।

शूद्र के लिए केवल शूद्र स्त्री ही पत्नी हो सकती है; शूद्र और वैश्य जाति की स्त्री वैश्य पुरुष की जायज पत्नी हो सकती है; शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय स्त्री क्षत्रिय जाति के पुरुष की पत्नी हो सकती है; ब्राह्मण की पत्नी क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और ब्राह्मण स्त्री हो सकती है।

शूद्र पत्नी ब्राह्मण व क्षत्रिय के लिए कहीं भी नहीं बताई गई, भले ही वे संकट में हों।

यदि द्विज पुरुष किसी (शूद्र) स्त्री से मोहवश विवाह करते हैं तो निश्चय ही (उनके) परिवार और वंशज शीघ्र ही शूद्रों की स्थिति में पहुंच जाएंगे।"[5]

"जो ब्राह्मण शूद्रा के साथ सहवास करता है वह पतन के मार्ग पर जाता है; यदि उस स्त्री से उसे पुत्र होता है, तो उसका ब्राह्मणत्व निश्चय ही छिन जाता है।

---

*1. प्रश्न 2, पटल 10, खंड 27, सूत्र 8-9*
*2. अध्याय 12, सूत्र 2-3*
*3. अध्याय 8, श्लोक 366*
*4. अध्याय 8, श्लोक 374*
*5. अध्याय 3, श्लोक 12-15*

अब जिस पुरुष के देव, पितर और अतिथि के कर्म उस (शूद्र) स्त्री पर निर्भर होते हैं, तो देव और पितर उसके हव्य को नहीं खाते और वह स्वर्ग भी नहीं जाता।

ऐसे पुरुष के लिए पश्चाताप नहीं बताया गया है, जिसने शूद्र स्त्री के अधरों की नमी को चूसा है, जिसे उसके श्वास ने स्पर्श किया है, और जिससे उसे पुत्र भी हुआ है।[1]

**(x)**

(क) वसिष्ट धर्मसूत्र के अनुसार–

''यह ज्ञात हो कि ब्राह्मणों के विषय में दुर्वचन कहना, असत्य भाषण करना, ईर्ष्या, द्वेष रखना–ये शूद्र के लक्षण हैं।''[2]

(ख) विष्णु स्मृति में लिखा है–

''ब्राह्मण के लिए चुना जाने वाला नाम शुभ होना चाहिए।

क्षत्रिय के लिए चुना जाने वाला नाम शक्ति का सूचक होना चाहिए।

वैश्य के लिए चुना जाने वाला नाम धन का सूचक होना चाहिए।

और शूद्र के लिए चुना जाने वाला नाम तिरस्कार का सूचक होना चाहिए।''[3]

(ग) गौतम धर्मसूत्र के अनुसार–

''शूद्र की चौथी जाति है, जिसका एक ही जन्म होता है।

और वह उच्च जातियों की सेवा करता है।

उन्हीं से वह अपनी आजीविका चलाएगा।

वह उनके फेंके हुए जूते पहनेगा।

और उनकी जूठन खाएगा।

जो शूद्र जान-बूझ कर द्विजों को अपशब्द कहता है, अथवा उन पर प्रहार करने का अपराध करता है, उसके उस अंग को काट दिया जाएगा जिससे उसने अपराध किया है।

यदि वह बैठने, लेटने, बातचीत में अथवा सड़क पर द्विजों के बराबर स्थान ग्रहण करता है तो वह मृत्यु दंड का भागी होगा।[4]

(घ) इसी प्रकार मनुस्मृति में भी कहा गया है–

''किंतु यदि कोई ब्राह्मण लोभवश अथवा शक्ति संपन्न होने के कारण किसी यज्ञोपवीतधारी द्विज को उनकी इच्छा के विपरीत दासता का कार्य करने के लिए बाध्य करता है, तो राजा उस पर छह सौ पण का दंड लगाएगा।

किंतु शूद्र (ब्राह्मण द्वारा) खरीदा गया हो अथवा नहीं, उसे दासता के लिए बाध्य किया जा सकता है, क्योंकि ब्रह्मा ने शूद्र को केवल ब्राह्मण की सेवा (दासता) के लिए ही उत्पन्न किया था।

---

*1. अध्याय 3, श्लोक 17-19*  *2. अध्याय 6, पद 24*

*3. अध्याय 27, सूत्र 6-9*  *4. अध्याय 10, सूत्र 50, 56-59 और अध्याय 12, सूत्र 1, 7*

अपने स्वामी द्वारा मुक्त किए जाने पर भी, शूद्र दासता से मुक्त नहीं होता; क्योंकि यह (दासता) उसमें जन्मजात है; फिर कौन उसे इससे मुक्त कर सकता है।[1]

पर निंदा से दूर रहने वाला शूद्र जिस प्रकार द्विजातियों की सेवा करता है, उसी प्रकार आनंदित होकर इस लोक में, और परलोक में भी आनंद प्राप्त करता है।[2]

अब शूद्र का परम कर्तव्य तो केवल वेद को समझने वाले और गृहस्थ के रूप में रहने वाले यशस्वी पुरोहितों की आज्ञा मानना (सेवा करना) है और उसी से उसका कल्याण सुनिश्चित होता है।

यदि वह शूद्ध, उच्च जातियों के प्रति आज्ञाकारी, मुधरभाषी, अहंकाररहित और सदा ब्राह्मण की सेवा में समर्पित हो, तो (अगले जन्म में) उच्च जाति प्राप्त करता है।[3]

अब यदि ब्राह्मण की सेवा से शूद्र की जीविका नहीं चलती है तो वह क्षत्रिय की सेवा करे, और यदि वह भी नहीं उपलब्ध हो तो वह धनी वैश्य की सेवा करे।

किंतु वह ब्राह्मणों की सेवा स्वर्ग के लिए, अथवा (स्वर्ग और जीविका) दोनों के लिए करे।

केवल ब्राह्मण की सेवा करना ही शूद्र का सर्वोत्तम व्यवसाय बताया गया है; क्योंकि यदि वह इसको छोड़ कुछ और करता है तो उससे उसे कोई लाभ नहीं होने का।

शूद्र (सेवकों) की सेवाओं के कौशल, उनकी कार्य क्षमता, और उनके आश्रितों की संख्या को ध्यान में रखकर ब्राह्मण अपने घर से ही उनकी आजीविका निश्चित करे।

उसे जूठन और पुराने वस्त्र दिए जाएं, और निकृष्ट धान्य और पुरानी सामग्री देनी चाहिए।[4]

ब्राह्मण का नाम शुभ, क्षत्रिय का नाम शक्ति, वैश्य का नाम धन से युक्त, और शूद्र का नाम तिरस्कार युक्त होना चाहिए।

ब्राह्मण के नाम के साथ शर्मा, क्षत्रिय के नाम के साथ रक्षा सूचक, वैश्य के नाम के साथ धन सूचक और शूद्र के नाम के साथ सेवा सूचक शब्द (उपाधि) का प्रयोग किया जाए।[5]

यदि एक जन्म वाला व्यक्ति (शूद्र) किसी द्विज को कठोर वचन कहे, तो उसकी जीभ काट दी जाए क्योंकि वह निम्नतम (अर्थात पैर से उत्पन्न) है।

यदि वह उनके नाम और जाति का उल्लेख अपमानजनक ढंग से करे, तो उसके मुख में दस अंगुल लंबी लोहे की गरम छड़ घुसेड़ दी जाए।

यदि व्यक्ति (शूद्र) अभिमान से पुरोहितों को अपने कर्तव्य के विषय में उपदेश दे, तो राजा उसके मुख और कान में खौलता गरम तेल डलवा दे।[6]

---

*1. अध्याय 8, श्लोक 412-414*
*2. अध्याय 10, श्लोक 128*
*3. अध्याय 9, श्लोक 334-335*
*4. अध्याय 10, श्लोक 121-125*
*5. अध्याय 2, श्लोक 31-32*
*6. अध्याय 8, श्लोक 270-272*

कोई निम्नतम व्यक्ति (शूद्र) किसी उच्च जाति के व्यक्ति को जिस भी अंग से आहत करे, उसका वही अंग काट दिया जाए; मनु का यही आदेश है।

यदि वह उस पर अपना हाथ अथवा डंडा उठाए, तो उसका हाथ काट दिया जाए; और यदि क्रोध में उस पर लात उठाए, तो उसके पैर काट दिए जाएं।

यदि कोई शूद्र किसी द्विज की बगल में बैठ जाए, तो उसके नितंबों को दागकर उसे निर्वासित कर दिया जाए, अथवा (राजा) उसके नितंबों को कटवा दे।

यदि वह अभिमानवश उस (द्विज) पर थूक दे, तो राजा उसके अधर कटवा दे; और यदि वह उस (द्विज) पर मूते (पेशाब करे) तो उसका लिंग और यदि अपान वायु निकाले तो उसकी गुदा कटवा दे।

यदि वह (शूद्र) उस (द्विज) को बालों से पकड़े, तो राजा बिना संकोच के उसके दोनों हाथ कटवा दे, और यदि वह उसे पैरों, दाढ़ी, गर्दन अथवा अंडकोशों से पकड़े, तो उसके यही अंग राजा कटवा दे।

जो किसी दूसरे की चमड़ी फाड़े और किसी का रक्त निकाले, तो उस पर पांच सौ (पण) का दंड लगाया जाए, और यदि मांस फाड़े तो उस पर छह निष्क का दंड लगाया जाए, किंतु यदि वह हड्डी तोड़े तो उसे निर्वासित कर दिया जाए।[1]

(ङ) नारद स्मृति के अनुसार–

"शूद्र जाति के जो व्यक्ति किसी द्विज आर्य पर झूठा आरोप लगाएं, राजा के अधिकारी उसकी जीभ कटवा दें, और वह उन्हें फांसी के तख्ते पर लटकवा दे।

एक बार जन्मा (शूद्र) व्यक्ति द्विजों को अपमानसूचक शब्द कहे, तो उसकी जीभ काट दी जाए; क्योंकि उसका जन्म नीच कुल में हुआ है।

यदि वह तिरस्कारवश उनके नाम अथवा जाति का उच्चार करता है, तो दस अंगुल लंबी लोहे की छड़ तपाकर उसके मुख में घुसेड़ दी जाए।

यदि वह अभिमानवश ब्राह्मण को उनके कर्तव्य की शिक्षा दे, तो राजा उसके मुख और कानों में गरम तेल डलवा दे।

निम्न जाति का व्यक्ति जिस भी अंग से ब्राह्मण को आहत करे, उसका वही अंग कटवा दिया जाए, उसके अपराध का यही प्रायश्चित होगा।

जो निम्न व्यक्ति अपने से श्रेष्ठ जाति के व्यक्ति के बराबर आसन पर बैठने का प्रयास करे, उसके नितंब को दागकर उसे निर्वासित कर दिया जाए, अथवा राजा उसके नितंब को गहरा कटवा दे।

यदि वह धृष्टतावश किसी श्रेष्ठ (जाति के व्यक्ति) पर थूके, तो राजा उसके अधर कटवा दे; यदि वह उस पर मूते, तो उसका लिंग कटवा दे; यदि उस पर अपान वायु छोड़े, तो उसके नितंब कटवा दे।"[2]

---

1. अध्याय 8, श्लोक 279-284 2. अध्याय 15, पद 22-27

## III

ब्राह्मणवादी स्मृतिकारों ने शूद्रों के विरुद्ध ऐसे ही विधान बनाए थे। इनका सार निम्नानुसार दिया जा सकता है–

1. सामाजिक सोपान में शूद्र सबसे नीचे था।
2. शूद्र अशुद्ध है इसलिए कोई भी पवित्र कार्य वहां नहीं किया जा सकता जहां शूद्र उसे देख अथवा सुन सके।
3. शूद्र को वह सम्मान नहीं दिया जा सकता जो अन्य वर्णों को प्राप्त है।
4. शूद्र के जीवन का कोई महत्त्व नहीं है और कोई भी व्यक्ति उसे मार डाले तो उसे कोई मुआवजा देने की जरूरत नहीं है। और यदि उसका थोड़ा-बहुत महत्त्व है भी तो वह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की तुलना में कुछ भी नहीं है।
5. शूद्र को ज्ञान प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं है। उसे शिक्षा देना पाप व अपराध है।
6. शूद्र को संपत्ति अर्जित करने का कोई अधिकार नहीं है। ब्राह्मण जब चाहे उसकी संपत्ति ले (हड़प) सकता है।
7. शूद्र किसी राजकीय पद पर नहीं रह सकता।
8. शूद्र का कर्तव्य है कि वह उच्च वर्णों की सेवा करे, और इसी में उसका मोक्ष भी है।
9. उच्च जातियों को शूद्र से अंतरविवाह नहीं करना चाहिए। हां, यदि वे चाहें तो शूद्र स्त्री को रखैल बनाकर रख सकते हैं। किंतु यदि शूद्र किसी उच्च जाति की स्त्री को छुए तो वह कठोर दंड का भागी होगा।
10. शूद्र का जन्म दासता में हुआ है और उसे हमेशा दासता में ही रखा जाना चाहिए।

जो व्यक्ति इस सार को पढ़ेगा उसे दो बातें चकित करेंगी। उसे यह बात चकित करेगी कि ब्राह्मण स्मृतिकारों ने अकेले शूद्र को ही अपने शिकार के रूप में चुना। आश्चर्य तब और भी बढ़ जाता है जब यह स्मरण किया जाता है कि प्राचीन ब्राह्मणी साहित्य में प्राचीन भारतीय-आर्यों के समाज में शूद्र नहीं बल्कि वैश्य ही उत्पीड़ित जाति थी। इस सम्बंध में 'ऐतरेय ब्राह्मण' का उल्लेख किया जा सकता है। ऐतरेय ब्राह्मण में राजा विश्वांतर और श्यापर्ण ब्रह्मण की कथा है जिसमें विभिन्न वर्णों के लिए सोमरस पान की बात कही गई है। इस कथा में वैश्य के विषय में निम्नानुसार कहा गया है–

> "आगे, यदि पुरोहित **दही** लाता है तो यह वैश्य की घूंट है, इससे वैश्यों को संतुष्ट करो। वैश्य के समान एक तुम्हारे वंश में उत्पन्न होगा, जो दूसरे का **बलिदायी** होगा, जो दूसरे द्वारा प्रयुक्त किया (खाया) जाएगा, और जिसे जब चाहो उत्पीड़ित किया जा सकेगा।"[1]

सवाल यह उठता है कि वैश्य को क्यों छोड़ दिया गया और शूद्रों को कोपभाजन क्यों बनाया गया?

---

*1. म्यूर, खंड 1, पृ. 436-40, 42, अध्याय 12, सूत्र 2-3*

पाठक को शूद्र की अयोग्यताओं और ब्राह्मण के विशेषाधिकारों के घनिष्ट सम्बंध पर भी आश्चर्य होगा। शूद्र को त्रैवर्णिकों के नीचे रखा गया है और त्रैवर्णिकों से उसकी तुलना की गई है। इस स्थिति में, सभी त्रैवर्णिकों को शूद्रों के विरुद्ध समान अधिकार मिलने की ही अपेक्षा बनती है। किंतु तथ्य क्या हैं? तथ्य ये हैं कि क्षत्रियों और वैश्यों को शूद्रों के विरुद्ध कोई उल्लेखनीय अधिकार नहीं मिले हैं। जिस त्रैवर्णिक को विशिष्ट अधिकार और विशेषाधिकार प्राप्त हैं वह अकेला ब्राह्मण है। उदाहरणस्वरूप, यदि शूद्र ने ब्राह्मण के विरुद्ध कोई अपराध किया है तो ब्राह्मण को यह विशेषाधिकार है कि क्षत्रिय अथवा वैश्य के मुकाबले उसके लिए अधिक दंड की मांग कर सकता है। शूद्र यदि किसी अपराध का दोषी नहीं है तब भी ब्राह्मण यज्ञ के लिए शूद्र की संपत्ति ले सकता है। शूद्र को इसलिए संपत्ति का संचय नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे ब्राह्मण आहत होता है। ब्राह्मण को उस देश में नहीं रहना चाहिए जिसका राजा शूद्र हो। ऐसा क्यों है? क्या ब्राह्मण किसी कारण से शूद्र को अपना विशेष शत्रु मानता था?

इन से भी अधिक महत्त्वपूर्ण एक और बात है। वह है, शूद्रों की इन अयोग्यताओं के बारे में आम ब्राह्मण क्या सोचता है? सब यही स्वीकार करेंगे कि उनकी धारणा असाधारण और उनका स्वभाव लज्जाजनक। क्या ब्राह्मण इसे स्वीकार करेगा? यदि अयोग्यताओं की इस सूची का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो यह अस्वाभाविक नहीं होगा। पहले तो, लंबे समय की आदत और परिपाटी ने उसके नैतिक बोध को इतना भोथरा कर दिया है कि उसमें शूद्रों की इन अयोग्यताओं के कारण के बारे में सोचना ही छोड़ दिया है। दूसरे यह कि जो लोग इन अयोग्यताओं के विषय में सचेत हैं, उन्हें यह लगता है कि दूसरे देशों में भी विशेष वर्गों पर ऐसी ही अयोग्यताएं थोपी गई हैं और इसलिए शूद्रों की अयोग्यताओं में कुछ भी असामान्य अथवा लज्जार्जनक नहीं है। इस दूसरी मानसिकता को ही उजागर किए जाने की जरूरत है।

यह मानसिकता अत्यंत सहज-साध्य है और इसे इसलिए सहेजा जाता है क्योंकि इससे प्रतिष्ठा और दास-विवेक को बचाने में मदद मिलती है। किंतु, इन बातों को यों ही छोड़ देने में भी कोई फायदा नहीं है। यह स्पष्ट करना अत्यंत आवश्यक है कि दुनिया में और कहीं भी ऐसी अयोग्यताएं नहीं मिलतीं। अधिकारों और अयोग्यताओं के आधार पर ब्राह्मणी विधान की तुलना अन्य सभी वैधानिक व्यवस्थाओं से करना तो असंभव है। फिर भी, यहां ब्राह्मणी विधान की तुलना रोमन विधान से करना पर्याप्त होगा।

## IV

इस तुलनात्मक विश्लेषण का शुभारंभ हम उन वर्गों से कर सकते हैं जिन्हें रोमन कानून के अंतर्गत अधिकार प्राप्त थे और जो अयोग्यताओं से युक्त थे। रोमन विधिकारों ने मनुष्यों को पांच श्रेणियों में बांटा हुआ था—(1) कुलीन और जनसाधारण; (2) स्वाधीन नागरिक और गुलाम; (3) नागरिक और विदेशी; (4) स्वाधीन व्यक्ति और पराधीन व्यक्ति; और (5) ईसाई और विधर्मी।

रोमन कानून के अनुसार, जिन व्यक्तियों को विशेषाधिकार प्राप्त थे, वे थे–(1) कुलीन; (2) स्वाधीन नागरिक; (3) नागरिक; (4) स्वाधीन व्यक्ति; और (5) ईसाई। इनके विपरीत, रोमन कानून के अंतर्गत अयोग्यता भोगने वाले व्यक्ति थे–(1) जन साधारण; (2) गुलाम; (3) विदेशी; (4) पराधीन व्यक्ति; और (5) विधर्मी।

रोमन कानून में नागरिक का दर्जा प्राप्त स्वाधीन नागरिक को नागरिक और राजनीतिक दोनों प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। एक नागरिक के नागरिक अधिकारों में वैधानिक और वाणिज्यिक अधिकार सम्मिलित थे। नागरिक अधिकारों के अंतर्गत, एक नागरिक दीवानी कानून के अनुसार वैध विवाह कर सकता था, और उसके परिणामस्वरूप अधिकारों को प्राप्त कर सकता था, विशेषकर सपितृता कहे जाने वाले पैतृक अधिकार और नागरिक सम्बंध को, जो बिना वसीयत मरने वालों की संपत्ति के उत्तराधिकार के लिए परम आवश्यक था। वाणिज्यिक अधिकार के अंतर्गत वह रोमन कानून के स्वरूप के अनुसार और उसके विशिष्ट विशेषाधिकारों के साथ सभी प्रकार की संपत्ति को खरीद और बेच सकता था। रोमन नागरिक के राजनीतिक अधिकारों में सार्वजनिक चुनावों में वोट देने और पद पर आसीन होने के अधिकार सम्मिलित थे।

जो गुलाम होता था वह स्वाधीन नागरिक से इस मायने में भिन्न होता था कि वह अपने मालिक के अधीन होता था और इस प्रकार कोई अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता था।

विदेशियों को 'पेरेग्रिन' (प्रवासी) कहा जाता था; वे नागरिक नहीं होते थे और उन्हें वे राजनीतिक अथवा नागरिक अधिकार नहीं मिलते थे जो 'नागरिकों' को प्राप्त होते थे। विदेशियों को तभी संरक्षण प्राप्त होता था जब वे किसी नागरिक के संरक्षण में नहीं होते थे।

'स्वाधीन व्यक्ति' और 'पराधीन व्यक्ति' में यह अंतर होता था कि पराधीन व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के अधिकार में होते थे और स्वाधीन व्यक्ति उससे मुक्त होते थे। इस अधिकार को (1) प्रोटेस्टास, (2) मानुस, और (3) मार्सिपियम जैसे विभिन्न नाम दिए गए थे, हालांकि इन सबका अभिप्राय एक ही था। रोमन कानून के अंतर्गत पोटेस्टास के दो वर्ग थे। इसके अंतर्गत (1) गुलाम, (2) बच्चे, (3) पत्नी (मानुस में), (4) ऋणदाता को अदालत से सौंपा गया कर्जदार, और (5) भाड़े का ग्लेडिएटर आते थे। ... ... ...

पोटेस्टास के अधीन होने के कारण पराधीन व्यक्ति की अयोग्यताएं ये थीं कि–(1) वे स्वतंत्र नहीं थे, (2) वे संपत्ति अर्जित नहीं कर सकते थे, और (3) वे अपने प्रति किए गए किसी गलत कार्य अथवा आघात का प्रतिकार नहीं कर सकते थे।

विधर्मियों की अयोग्यताओं की शुरुआत ईसाई धर्म के आगमन के साथ हुई। मूल रूप में, जब सभी रोमन विधर्मी अथवा मूर्तिपूजक हुआ करते थे, तब नागरिक अधिकारों के उपभोग के मार्ग में धर्म रोड़ा नहीं बनता था। ईसाई सम्राटों के शासनकाल में अपधर्मी और धर्मविमुख और मूर्तिपूजक और यहूदी सभी पर कठोर प्रतिबंध लगे हुए थे। विशेषकर ये प्रतिबंध संपत्ति के उत्तराधिकार और गवाही के सम्बंध में थे। पूरे नागरिक अधिकार केवल उन पुरातनपंथी (ऑर्थोडॉक्स) ईसाइयों को मिले हुए थे जो चार 'अखिल मसीही' परिषदों के निर्णयों को मानते थे।

रोमन कानून के अधिकारों और अयोग्यताओं के इस सर्वेक्षण से हिंदुओं को यह सांत्वना मिल सकती है कि ब्राह्मणी विधान ऐसा अकेला विधान नहीं था जो कुछ वर्गों पर अयोग्यताएं थोपने का दोषी था, हालांकि रोमन कानून द्वारा थोपी गई अयोग्यताओं में ऐसी कोई भी क्रूरता नहीं थी जो, ब्राह्मणी विधान द्वारा आरोपित अयोग्यताओं में निहित है। किंतु जब हम रोमन कानून के सिद्धांत की तुलना इन अयोग्यताओं वाले ब्राह्मणी सिद्धांत से करते हैं तो ब्राह्मणी विधान की अधमता उजागर हो जाती है।

पहले तो हमें यह जानना होगा कि रोमन कानून में अधिकारों और अयोग्यताओं का आधार क्या था। रोमन कानून का सतही अध्ययन करने वाला भी यह जानता है कि ये तो (1) **कापूत** और (2) **एक्जिस्टीमाशियो** पर आधारित थे।

कापूत का अर्थ होता था व्यक्ति की नागरिक प्रस्थिति। रोमनों में नागरिक प्रस्थिति अथवा हैसियत का सम्बंध मुख्य रूप में तीन तत्वों से होता था—स्वतंत्रता, नागरिकता, और परिवार। स्वतंत्रता की हैसियत रखने वाला व्यक्ति एक स्वाधीन नागरिक होता था, गुलाम नहीं। यदि स्वाधीन नागरिक एक रोमन नागरिक भी होता था तो उसे नागरिकता की हैसियत भी प्राप्त होती थी। इस हैसियत के रहते वह राजनीतिक अधिकारों का तो उपभोग कर ही सकता था, दीवानी कानून का भी लाभ उठाता था। पारिवारिक हैसियत का लाभ किसी परिवार विशेष के नागरिक को प्राप्त होता था, और वह उन अधिकारों का उपभोग कर सकता था जो सपित्र्य होने के नाते केवल उस परिवार के सदस्यों को ही प्राप्त होते थे।

यदि कोई मोजूदा हैसियत समाप्त अथवा परिवर्तित हो जाती थी तो वह व्यक्ति 'कैपिटस डिमिनूशियो' का शिकार हो जाता था, जिसमें उसकी पूरी की पूरी अथवा आंशिक राजसी सामर्थ्य का समापन हो जाता था। स्थिति अथवा अवस्था में तीन परिवर्तन हो सकते थे जिनके परिणाम अलग-अलग होते थे। इन्हें मैक्सिमा, मीडिया, और मिनिमा कहते थे। सबसे गंभीर स्थिति में स्वतंत्रता, नागरिकता, और परिवार का हनन होता था; और यह तब होता था तब कोई रोमन नागरिक युद्ध में बंदी बना लिया जाता था, अथवा अपने अपराधों के कारण गुलाम की श्रेणी में डाल दिया जाता था, तो कैद से लौटने पर उसके नागरिक अधिकार बहाल कर दिए जाते थे।

हैसियत में अगला बदलाव नागरिकता और पारिवारिक अधिकारों का समापन लेकर आता था, जिसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन नहीं होता था। यह तब होता था जब कोई नागरिक किसी अन्य राज्य का सदस्य हो जाता था। तब उसके लिए आग और पानी का उपयोग वर्जित हो जाता था, जिससे वह रोमन राज्य छोड़ने को बाध्य हो जाता था, अथवा उसे देश-निकाला दे दिया जाता था।

अंत में, जब कोई व्यक्ति किसी परिवार विशेष का सदस्य नहीं रह जाता था, और उसकी स्वतंत्रता अथवा नागरिकता समाप्त नहीं होती थी, तो कहा जाता था कि उसकी स्थिति में न्यूनतम परिवर्तन हुआ है। उदाहरणस्वरूप, जब कोई स्वतंत्र व्यक्ति अनधिकारपूर्वक किसी दूसरे स्वतंत्र व्यक्ति के अधीन हो जाता था, अथवा जब कोई पुत्र अपने पिता द्वारा कानूनी तौर पर मुक्त कर दिया जाता था।

नागरिकता पहले तो जन्म द्वारा प्राप्त होती थी। विधिसम्मत विवाह में बच्चे को पिता की स्थिति प्राप्त होती थी, और पिता यदि गर्भाधान के समय नागरिक होता था तो उसका बच्चा भी नागरिक हो जाता था। यदि बच्चा विधिसम्मत विवाह से उत्पन्न नहीं होता था तो जन्म के समय उसे मां की स्थिति प्राप्त होती थी। दूसरे, कानूनी औपचारिकताओं के अनुसार, एक रोमन नागरिक का गुलाम भी नागरिक हो जाता था। इस नियम को कानूनों द्वारा संशोधित कर दिया गया था। ये थे **'ईलिया सेंशिया'** और **'जूनिया नोरबाना'**। इनके अनुसार, कुछ मामलों में, स्वतंत्र हुए व्यक्ति को केवल एक विदेशी **'पेरेग्रिनस डेडिटिटियस'** अथवा लैटिन **'लैटिनस जूनियानस'** की हैसियत प्राप्त होती थी। जस्टिनियन ने प्राचीन सिद्धांत को बहाल किया, जिसके अनुसार नियमित मताधिकार का प्रयोग करने वाले प्रत्येक गुलाम को एक रोमन नागरिक के पूरे अधिकार मिल जाते थे। तीसरे, पूरे समुदाय अथवा एक व्यक्ति को भी कृपास्वरूप नागरिकता का अधिकार प्रदान किया जाता था। यह अधिकार जनता अथवा सीनेट द्वारा गणराज्य के दौरान और शासक राजकुमार द्वारा साम्राज्य के दौरान दिया जाता था; और यह आज के 'देशीयकरण' के समतुल्य था।

नागरिकता तीन कारणों से समाप्त होती थी। पहला, स्वतंत्रता समाप्त होने पर, जैसे कि जब कोई रोमन युद्ध में बंदी हो जाता था; दूसरा, जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे राज्य का नागरिक हो जाता था; तीसरा, किसी अपराध के दंडस्वरूप देश-निकाला अथवा निर्वासन होने पर।

रोमन कानून के अंतर्गत किसी व्यक्ति की नागरिक प्रस्थिति **'सिविस ऑप्टिमो जूरे'** हो भी सकती है और नहीं भी। इसमें केवल नागरिक अधिकार की नहीं राजनीतिक अधिकार भी प्राप्त होते हैं, जैसे **'जुस सफ्रैजी एत ठोनोरम'** अर्थात वोट देने का अधिकार और सार्वजनिक पद पर आसीन होने का अधिकार। राजनीतिक अधिकार की योग्यता **'एक्जिस्टीमेशियो'** पर आधारित होती थी, जिसका अर्थ होता है कानून की दृष्टि में प्रतिष्ठा। एक रोमन के पास **'कापूत'** भी हो सकता है और **'एक्जिस्टीमेशियो'** भी। दूसरी ओर, उसके पास **'कापूत'** तो हो सकता है, कितु **'एक्जिस्टीमेशियो'** नहीं। जिसके पास ये दोनों होते थे उसे नागरिक अधिकार भी प्राप्त होते थे और राजनीतिक अधिकार भी। जिसके पास **'कापूत'** होता था कितु **'एक्जिसऔमेशियो'** नहीं, उसे बस नागरिक अधिकार ही मिल सकते थे।

कानून की दृष्टि में किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा दो प्रकार से समाप्त होती थी। यह स्वतंत्रता समाप्त होने पर अथवा किसी अपराध का दोषी घोषित होने पर समाप्त हो सकती थी। यदि किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती थी, तो कानून की दृष्टि में उसकी प्रतिष्ठा बिलकुल समाप्त हो जाती थी। अपराध का दोषी होने पर इस प्रतिष्ठा का समाप्त होना अपराध की गंभीरता[1] पर निर्भर करता था। यदि अपराध गंभीर होता था, तो कानून

*1. जैसे डकेती, चोरी, झूठी गवाही, धोखाधड़ी, एक अभिनेता अथवा ग्लेडिएटर के रूप में सार्वजनिक मंच पर आना, सेना से अपमानजनक निष्कासन, वेश्यावृत्ति अथवा अन्य असम्मानजनक व्यवसायों में सहायता देकर जीविका लाभ करना और गंभीर नैतिक भ्रष्टाचार वाले अन्य काम।*

की दृष्टि में उसकी प्रतिष्ठा का कम होना 'इनफेमिया' कहलाता था। यदि अपराध कम गंभीर होता था, तो यह 'टरपीटूडो' कहलाता था। गंभीर अपराध के कारण कानूनी प्रतिष्ठा कम होने से कानून की दृष्टि में व्यक्ति की प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती थी। रोमन कानून के अनुसार बचाव पक्ष को आम नुकसान के अतिरिक्त 'इनफेमिया' का भी शिकार होना पड़ता था। चोरी, डकैती, आघात अथवा धोखाधड़ी का अपराधी ठहरने से अपयश प्राप्त होता था। इसलिए यदि किसी साझेदार, मैंडेटेरियस, डिपोसिटेरियस, शिक्षक, गिरवीदार को जान-बूझकर कर्तव्य का उल्लंघन करने का दोषी करार दे दिया जाता था, तो उसे अपयश का भागी होना पड़ता था।

'इनफेमिया' का परिणाम यह होता था कि व्यक्ति के राजनीतिक अधिकार[1] समाप्त हो जाते थे, उसे उसके पद से और मताधिकार से भी वंचित होना पड़ता था।

रोमन कानून में अधिकारों और अयोग्यताओं के आधार के इस संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह आधार सभी के लिए समान था। यह अलग-अलग समुदाय के लिए अलग-अलग नहीं था। रोमन कानून के अनुसार, अधिकारों और अयोग्यताओं को 'कापूत' और 'एक्जिस्टीमेशियो' जैसे आधारों पर लागू किया जाता था। जिनके पास ये होते थे, उनके पास अधिकार होते थे। इनसे वंचित होने पर व्यक्ति अयोग्यताओं से घिर जाता था। ब्राह्मणी विधान में क्या स्थिति है? यहां भी, यह बिलकुल स्पष्ट है कि अधिकारों और अयोग्यताओं के आधार में सामान्य एकरूपता नहीं थी। उनका आधार तो सांप्रदायिक था। प्रथम तीन वर्णों के लिए सारे अधिकार और शूद्रों के लिए सारी अयोग्यताएं ही वह सिद्धांत था जिस पर ब्राह्मणी विधान आधारित था।

ब्राह्मणी विधानों के समर्थक यह कह सकते हैं कि यह तुलना रोमन कानून के अत्यधिक पक्ष में है और यह कहना सही नहीं है कि रोमन कानून में अधिकारों और दायित्वों का वितरण सांप्रदायिक आधार पर नहीं किया गया। इसे स्वीकार किया जा सकता

---

1. *'इनफेमिया' के और भी दुष्परिणाम होते थे, जैसे एटॉर्नी के पद से निष्कासन, किसी मुकदमे में किसी और की तरफ से कार्य करने की अयोग्यता। इनफेमिया अथवा अपयश दो प्रकार से निर्णित होता था, या तो सेंसर द्वारा या अदालत के फैसले द्वारा। सार्वजनिक नैतिकता को सुनिश्चित करते हुए, सेंसर को यह अधिकर होता था कि वे सिनेटरों को उनके सम्मान से वंचित कर दें, नाइट्स को उनकी व्यवस्था से हटा दें और किसी नागरिक के सारे राजनीतिक अधिकार छीन लें। सेंसर नागरिकों की सूची में किसी व्यक्ति के नाम के आगे (प्रतिकूल) टिप्पणी भी लिख देते थे; और वे (सेंसर) यह सब अपनी जिम्मेदारी पर कर देते थे, और किसी विशेष जांच की भी उन्हें जरूरत नहीं होती थी, हालांकि आम तौर पर वे जनमत के अनुसार ही कार्रवाई करते थे। यह प्रतिकूल टिप्पणी (नोटा सेंसरिया) केवल इसे थोपने वाले सेंसर की दंडाधिकारिता (मजिस्ट्रेसी) के दौरान ही प्रभावी होती थी। इस मायने में यह 'अपयश' से बुनियादी तौर पर भिन्न थी। यह निरंतर चलने वाली थी। इस कलंक को जनता अथवा सम्राट के विशेषाधिकार से ही मिटाया जा सकता था।*

है। क्योंकि जहां तक कुलीनों और जन साधारण के सम्बंधों का सवाल है, अधिकारों और दायित्वों का वितरण सांप्रदायिक आधार पर ही था। किंतु इस सम्बंध में निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में अवश्य रखना चाहिए।

पहले तो यह ध्यान में रखना होगा कि जो जनसाधारण थे वे गुलाम नहीं थे। वे इस मायने में स्वाधीन नागरिक थे कि उन्हें संपत्ति अर्जित करने, उसे रखने और हस्तांतरित करने का अधिकार था। उनकी अयोग्यता यह थी कि उन्हें राजनीतिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। दूसरी बात यह ध्यान में रखनी होगी कि उनकी अयोग्यताएं स्थाई नहीं थीं। उनकी सामाजिक अयोग्यताएं दो प्रकार की थीं। एक तो यह कि कुलीनों और उनके बीच अंतरविवाह पर 'बारह पटलों' (रोमन नियमावली)[1] द्वारा प्रतिबंध था। इस अयोग्यता को 445 ई.पू. में **कानुलेनियन** कानून पारित करके समाप्त कर दिया गया, जिसमें कुलीनों और जनसाधारण के बीच विवाह को वैध कर दिया गया। उनकी दूसरी अयोग्यता यह थी कि वे रोम के सार्वजनिक पूजा-गृहों में धर्माधिकारी अथवा प्रधान पादरी और शकुन विचारने वाले के पद पर आसीन नहीं हो सकते थे। इस अयोग्यता को 300 ई.पू. में **ओगलनियन** कानून पारित करके समाप्त कर दिया गया।

जहां तक जनसाधारण की राजनीतिक अयोग्यता का प्रश्न है तो उन्हें रोम के छठवें राज सर्वियस टुलियस के संविधान में लोक असेंबली में वोट देने का अधिकार मिल गया था। केवल वे राजनीतिक अयोग्यताएं ही बनी रह गई थीं जिनका सम्बंध पद पर आसीन होने से था। इसे भी 509 ई.पू. में गणराज्य की स्थापना हो जाने के बाद समाप्त कर दिया गया था। इस दिशा में पहला कदम था 494 ई.पू. में प्लेबियन (जनसाधारण) ट्रिब्यून की नियुक्ति; 421 ई.पू. में उनके लिए खजांची के पद को औपचारिक रूप में और 409 ई.पू. में वास्तविक रूप में खोल दिया गया; 367 ई.पू. में कौंसल के पद को; 366 ई.पू. में सर्वोच्च नागरिक अधिकारी-भवन, सड़क, स्वच्छता, सार्वजनिक खेलों के प्रभारी अधिकारी के पद को; 356 ई.पू. में अधिनायक के पद को; 351 ई.पू. में सेंसर के पद को; और 336 ई.पू. में न्यायाधीश के पद को उनके लिए खोल दिया गया। 287 ई.पू. में लागू होर्टेनशियन कानून जनसाधारण के लिए पूरी जीत का सूचक था। उस कानून के द्वारा जनजातियों की असेंबली के प्रस्ताव प्रत्यक्ष तौर पर और बिना किसी संशोधन, नियंत्रण अथवा विलंब के, समूची रोमन जनता के लिए बाध्यकारी हो गए।

इसके साथ ही कुलीन और जनसाधारण, राजनीतिक स्तर पर, पूरी तौर पर और बराबरी के आधार पर जुड़ गए।

जनसाधारण, राजनीतिक बिसात और सामाजिक हैसियत के स्तर पर, कुलीनों के बराबर तो आ ही गए, अमीरी (अभिजात) का रास्ता भी उनके लिए खुल गया। रोमन समाज में, जन्म और समृद्धि ही पद और व्यक्तिगत विशिष्टता के दो बड़े स्रोत थे।

---

*1. यह प्रतिबंध बारह पटलों से भी पुराना था। बारह पटलों में तो केवल इसे मान्यता दी गई थी।*

किंतु, इनके अतिरिक्त, न्यायाधीश के सर्वोच्च नागरिक पद पर होना भी अभिजात वर्ग की सदस्यता का स्रोत था। इस पद तक पहुंचने वाला प्रत्येक नागरिक, चाहे वह कुलीन हो अथवा जनसाधारण, व्यक्तिगत विशिष्टता प्राप्त कर लेता था, और यह विशिष्टता उनके वंशजों को मिल जाती थी, जो उन लोगों से अलग होते थे जिन्हें ख्याति नहीं मिली हुई थी। यह पद जनसाधारण के लिए खुल जाने से, अनेक जनसाधारण[1] अमीर की श्रेणी तक पहुंच गए थे और अमीरी (अभिजात) के मामले में उन्होंने कुलीनों को भी पीछे छोड़ दिया गया था।

हो सकता है कि रोमन कानून अधिकारों और अयोग्यताओं के वितरण के मामले में सांप्रदायिक भेद को मानता हो। किंतु, यहां विचारणीय यह है कि जनसाधारण की अयोग्यताओं को स्थाई नहीं माना जाता था। वे विद्यमान तो थे किंतु कालांतर में उन्हें समाप्त भी कर दिया गया था। इस स्थिति में ब्राह्मणी विधान के समर्थक केवल इस बात से सांत्वना नहीं ले सकते कि उन्हें रोमन कानून में एक समान उदाहरण मिल गया है, बल्कि वे तो यह जवाब दें कि ब्राह्मणी विधान में त्रैवर्णिकों और शूद्रों के भेद को उस तरह समाप्त क्यों नहीं किया गया जैसे रोमन कानून में जनसाधारण और कुलीनों को बराबरी का दर्जा दिया गया? इसलिए यह तर्क दिया जा सकता है कि अधिकारों और अयोग्यताओं का रोमन कानून सांप्रदायिक नहीं था जबकि ब्राह्मणी विधान सांप्रदायिक था।

रोमन कानून और ब्राह्मणी विधान में बस यही एक अंतर नहीं है। दो अंतर और भी हैं। एक है आपराधिक मामलों में कानून के समक्ष समानता। रोमन कानून ने नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की समानता भले ही नहीं दी हो, किंतु आपराधिक कानून के मामले में वहां दो नागरिकों के बीच कोई भेद नहीं किया जाता था, कुलीन और जनसाधारण के बीच भी नहीं। एक-से अपराध के लिए एक-सा दंड होता था, चाहे कोई भी शिकायतकर्ता हो और कोई भी आरोपी। अपराध सिद्ध हो जाने पर, दंड एक जैसा ही होता था। और, धर्मसूत्र और स्मृतिग्रंथ क्या करते हैं? वे एक बिलकुल अलग सिद्धांत पर चलते हैं। एक ही अपराध के लिए आरोपी के समुदाय और शिकायतकर्ता के समुदाय को देखकर दंड का प्रावधान होता है। यदि शिकायतकर्ता शूद्र हुआ और आरोपी तीन में से किसी वर्ण का हुआ तो उसके लिए कम दंड होगा, जबकि इसके विपरीत स्थिति होने पर दंड अधिक होगा। दूसरी ओर, यदि शिकायतकर्ता कोई त्रैवर्णिक हुआ और आरोपी शूद्र, तो दंड उपर्युक्त मामले की अपेक्षा बहुत भारी होगा। बर्बरता का यह एक और उदाहरण है जिससे ब्राह्मणी विधान और रोमन कानून का अंतर स्पष्ट होता है।

रोमन कानून को ब्राह्मणी विधान से भिन्न दिखाई देने वाली अगली विशेषता अत्यंत उल्लैखनीय है। यह अयोग्यताओं को समाप्त करने से सम्बंधित है। यहां दो बातें ध्यान में

1. *जो जनसाधारण पहले सर्वोच्च नागरिक पद पर पहुंचे और एक अमीर परिवार का संस्थापक बने, रोमन उसे 'नोवस होमो' अथवा नया मनुष्य कहते थे।*

रखनी होंगी। पहली यह कि रोमन कानून के अंतर्गत अयोग्यताएं केवल आकस्मिक थीं। जब तक कोई विशिष्ट स्थितियां रहती थीं, तब तक वे अयोग्यताओं को जन्म देती थीं। जैसे ही स्थितियां बदलती थीं, अयोग्यताएं समाप्त हो जाती थीं और कानून के समक्ष समानता की दिशा में कदम उठा दिया जाता था। दूसरी बात यह कि रोमन कानून ने कभी भी स्थितियों को जड़ करके अयोग्यताओं को बनाए नहीं रखा। दूसरी ओर, रोमन कानून तो उन स्थितियों को समाप्त करने को हमेशा तैयार रहता था जिनके साथ ये अयोग्यताएं जुड़ी थीं, जैसा कि जनसाधारण, गुलामों, विदेशियों और विधर्मी मूर्तिपूजकों के उदाहरण से स्पष्ट होता है।

यदि रोमन कानून के अंतर्गत अयोग्यताओं से सम्बंधित इन दो बातों को ध्यान में रखें, तो यह एकदम से समझ में आ जाता है कि शूद्रों पर अयोग्यताएं थोप कर धर्मसूत्रों और स्मृति ग्रंथों ने कैसी शरारत की है। यदि अयोग्यताओं का आधार स्थितियां होतीं और यदि अयोग्यों को उन स्थितियों से निकलने की आजादी होती, तो अयोग्यताओं को थोपा जाना इतना अत्याचारपूर्ण नहीं होता। किंतु ब्राह्मणी विधान केवल अयोग्यताएं ही नहीं थोपता, बल्कि यह तो उन स्थितियों को जड़ कर देने का प्रयास करता है। और इस प्रयास में उसने उन स्थितियों के उल्लंघन को एक ऐसा अपराध बना दिया है जिसका दंड अत्यंत कठोर है। इस प्रकार, ब्राह्मणी विधान केवल अयोग्ताएं थोपने का ही प्रयास नहीं करता, बल्कि यह उन्हें स्थायित्व देने की भी कोशिश करता है। यहां एक उदाहरण देना काफी होगा। शूद्र को वैदिक यज्ञ करने का अधिकार इसलिए नहीं होता क्योंकि मंत्रों का उच्चार नहीं कर सकता। इस प्रकार की अयोग्यता से कोई झगड़ा नहीं करेगा। किंतु धर्मसूत्र यहीं नहीं रुक जाते। वे तो इससे भी आगे बढ़कर यह कहते हैं कि शूद्र के लिए वेदों का अध्ययन करना अथवा उनका श्रवण करना अपराध होगा और यदि वह ऐसा अपराध कर देता है तो उसकी जीभ काट देनी चाहिए अथवा उसके कान में पिघला हुआ सीसा डाल देना चाहिए। व्यक्ति को उसकी अयोग्यताओं से निकलने नहीं देने से बढ़कर भी कोई और बर्बरता हो सकती है? इन अयोग्यताओं की व्याख्या क्या है? ब्राह्मणी स्मृतिकारों ने शूद्रों के प्रति ऐसी क्रूर मानसिकता क्यों रखी? ब्राह्मणी विधान के ग्रंथों में केवल अयोग्यताओं का ही उल्लेख किया गया है। इनमें कहा गया है कि शूद्रों को उपनयन का अधिकार नहीं है। इनमें कहा गया है कि शूद्र कोई पदग्रहण नहीं करेंगे। इनमें कहा गया है कि शूद्र संपत्ति नहीं रखेंगे। किंतु इनमें इस सबका कारण नहीं बताया गया। सब कुछ मनमाना है। शूद्र की अयोग्यताओं का सम्बंध उसके व्यक्तिगत आचरण से है ही नहीं। यह अपयश का परिणाम भी नहीं है। शूद्र इसलिए दंडित है क्योंकि वह शूद्र है। यह एक ऐसा रहस्य है जिसे सुलझाया जाना चाहिए। ब्राह्मणी विधान की किताबें क्योंकि इसे सुलझाने में हमारी मदद नहीं करतीं, इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि हम इसके लिए अन्य स्रोतों की मदद लें।

अध्याय : चार

# शूद्र बनाम आर्य

## I

पहले जो कुछ कहा जा चुका है उससे यह तो स्पष्ट है कि ब्राह्मणी लेखकों से हमें इस बात का कोई सूत्र नहीं मिलता है कि शूद्र कौन थे और वे चौथा वर्ण कैसे बने। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम पाश्चात्य लेखकों की ओर उन्मुख हों और यह देखें कि इस विषय में उनका क्या कहना है। शूद्रों की उत्पत्ति के विषय में पाश्चात्य लेखकों का एक निश्चित सिद्धांत है। हालांकि सभी पाश्चात्य लेखक इस सिद्धांत के सभी पहलुओं को लेकर एकमत नहीं हैं, फिर भी कुछ बिंदु हैं जिन पर उनमें एक हद तक सहमति दिखाई देती है। ये निम्नानुसार हैं–

1. वैदिक साहित्य की रचना करने वाले आर्य प्रजाति के थे।
2. यह आर्य प्रजाति भारत में बाहर से आई थी और उसने भारत पर आक्रमण किया था।
3. भारत के मूलनिवासी दास व दस्यु कहलाते थे तथा उनकी प्रजाति आर्यों से भिन्न थी।
4. आर्य गोरे रंग के थे। दास और दस्यु काले थे।
5. आर्यों ने दासों और दस्युओं को पराजित किया था।
6. पराजित होने और गुलाम बना लिए जाने के बाद ये दास एवं दस्यु लोग शूद्र कहलाए।
7. आर्य लोग (मनुष्य की चमड़ी के) रंग के बारे में पूर्वग्रह से ग्रस्त थे, इसलिए उन्होंने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था कायम की और इसके अंतर्गत गोरी प्रजाति (नस्ल) को काली प्रजाति–जैसे दास और दस्यु–से अलग कर दिया।

भारतीय-आर्यों के समाज में शूद्रों की उत्पत्ति और स्थिति के पाश्चात्य सिद्धांत के ये मुख्य तत्त्व हैं। यह बात अलग है कि यह सिद्धांत मान्य भी है अथवा नहीं। किंतु इसके बारे में पढ़ने के बाद–जिनकी लंबी-लंबी और नीरस व्याख्याओं में एक सामाजिक तथ्य को एक दैवीय विधान का रूप देने का प्रयास हुआ है–अपने सामने एक ऐसा सिद्धांत पाकर अत्यंत राहत का अनुभव होता है जिसमें एक सामाजिक तथ्य की स्वाभाविक व्याख्या की गई है। जहां तक ब्राह्मणी सिद्धांतों का सवाल है, तो उन्हें एक मूर्ख मस्तिष्क का बेतुका उफान कहने के सिवाय और क्या किया जा सकता है। इनमें समस्या को तो छुआ ही नहीं गया है। वहीं आधुनिक सिद्धांत कम से कम हमें सही दिशा में ले जाने का उद्यम तो करता है।

इस सिद्धांत के औचित्य की परख के लिए सबसे अच्छा तरीका तो यही होगा कि उसकी अंश-अंश करके समीक्षा की जाए और यह देखा जाए कि प्रत्येक अंश की पुष्टि में साक्ष्यों का कहां तक प्रयोग हुआ है।

यह पूरा सिद्धांत इस विचार पर आधारित है कि अतीत में ऐसे लोग रहते थे जिनकी प्रजाति आर्य थी। इसलिए उचित यही होगा कि सबसे पहले इसी मसले से निपटा जाए।

यह आर्य प्रजाति है क्या? आर्य प्रजाति के मसले पर विचार करने से पहले हमें यह निश्चित कर लेना होगा कि 'प्रजाति' (नस्ल) शब्द से हमारा तात्पर्य क्या है। यह सवाल उठाना इसलिए जरूरी है क्योंकि एक कौम को प्रजाति समझने की गलती करना असंभव नहीं है। इस तरह की गलती का सबसे अच्छा उदाहरण यहूदी हैं। अधिकांश लोग यही मानते हैं कि यहूदी एक प्रजाति है। नंगी आंखों से देखने पर वे ऐसे दिखाई भी देते हैं। किंतु विशेषज्ञों का इस विषय में क्या मत है? यहूदियों के बारे में प्रो. रिप्ले[1] का यह कहना है—

> "तो, हमारा अंतिम निष्कर्ष यह है—यह हमारी दृढ़ोक्ति है कि यह विरोधाभासपूर्ण किंतु सत्य है। यहूदी एक प्रजाति नहीं है, बल्कि आखिरकार एक कौम हैं। उनके चेहरों में हमें इसकी पुष्टि पढ़ने को मिलती है; जबकि उनके अन्य लक्षणों के विषय में हम आश्वस्त हैं कि उनकी जो व्यक्तिगत विशिष्टता है वह—किसी भी प्रकार से नगण्य न होते हुए—उनकी पीढ़ी दर पीढ़ी की उनकी अपनी निर्मिति है और अभूतपूर्व वंशानुगत शुद्धता का परिणाम नहीं है।"

प्रजाति (नस्ल) क्या होती है? इसे परिभाषित करें, तो प्रजाति उन लोगों का समूह होता है जिनमें कुछ विशिष्ट वंशानुगत लक्षण पाए जाते हैं। कभी यह माना जाता था कि प्रजाति में ये विशिष्ट लक्षण होते हैं—(1) सिर की आकृति, (2) बालों और आंखों का रंग, (3) चमड़ी का रंग, और (4) कद-काठी। आज आम धारणा यह है कि चमड़ी का रंग और कद ऐसे लक्षण हैं जो जलवायु और निवास के परिवेश के अनुसार बदलते रहते हैं, और इसलिए लोगों की प्रजाति तय करने के मानदंड के रूप में इन्हें खारिज ही कर देना चाहिए। मनुष्य का सिर ही एकमात्र स्थिर (अपरिवर्तनीय) लक्षण है—जिसका अर्थ होता है लंबाई, चौड़ाई और ऊंचाई का आम अनुपात, और इसीलिए मानव विज्ञानी और मानव जाति विज्ञानी इसे प्रजाति का सर्वोत्तम उपलब्ध मानदंड मानते हैं।

व्यक्ति की प्रजाति तय करने के संदर्भ में सिर की आकृति के प्रयोग को मानव विज्ञानियों ने एक यथार्थ विज्ञान का रूप दे दिया है। इसे मानवभिति (authropometry) कहते हैं। मानवभिति के इस विज्ञान ने सिर की आकृति की माप के दो तरीके निश्चित किए हैं—(1) शिरस्य सूचकांक (cephalic index), और (2) आनन सूचकांक (facial index); और यह सूचकांक ही प्रजाति का लक्षक होता है।

कानों के ऊपर सिर की जो चौड़ाई होती है वही शिरस्य सूचकांक होता है और माथे

---

1. *रिप्ले, डबल्यू.ई., द रेसेज़ ऑव यूरोप, पृष्ठ 400*

से पीछे तक की इसकी लंबाई के प्रतिशत में इसे व्यक्त किया जाता है। यदि यह मान लिया जाए कि यह लंबाई 100 है, तो चौड़ाई को इसके एक अंश के रूप में व्यक्त किया जाता है। सिर जब अनुपात में अधिक चौड़ा–अर्थात ऊपर से नीचे की ओर देखने पर अधिक गोल–होता है, तो यह शिरस्य सूचकांक बढ़ जाता है। जब यह 80 के ऊपर पहुंच जाता है, तो सिर को लघु शिरस्क (brachycephalic) कहते हैं। जब यह 75 के नीचे आ जाता है, तो इसके लिए दीर्घशिरस्क (dolichocephalic) शब्द का प्रयोग होता है। 75 और 80 के बीच के सूचकांकों को मध्यशिरस्क (mesocephalic) कहा जाता है। ये पारिभाषिक शब्द हैं। प्रजाति के मसलों से सम्बंधित साहित्य में ये शब्द बार-बार आते रहते हैं, और यदि किसी को इनका मतलब पता नहीं हो तो इस विषय पर होने वाली चर्चा को बुद्धिमतापूर्वक समझना अत्यंत कठिन हो जाता है। इसलिए यहां रुककर इन्हें लोक भाषा में समझाना लाभप्रद ही होगा। मध्यशिरस्क को लोक या आम भाषा में मध्यम आकार के सिर वाला कहा जा सकता है, जिसके सिर का सूचकांक मध्यम होता है, और खोपड़ी की चौड़ाई की माप लंबाई की तीन चौथाई और चार बटा पांच के बीच होती है। दीर्घशिरस्क का मतलब होता है लंबे सिर वाला, जिसके सिर का सूचकांक कम होता है, और खोपड़ी की माप लंबाई का चार बटा पांच होती है।

चेहरे की आकृति और सिर के अनुपातों के बीच जो सहसम्बंध होता है उसे आनन सूचकांक (facial index) कहते हैं। अधिकांश मामलों में यह देखा गया है कि अपेक्षाकृत चौड़े सिर वाले व्यक्ति का चेहरा गोल होता है, जिसमें गलों की हड्डियों के पीछे की चौड़ाई माथे से ठुड्डी तक की ऊंचाई के मुकाबले काफी होती है। माप लेने के तरीके में एकरूपता नहीं होने के कारण अब तक ऐसे विस्तृत अध्ययन नहीं हो पाए हैं जिनसे सही तुलना हो सके। फिर भी, यह नियम अपनाना सुरक्षित रहा है–लंबा सिर, अंडाकार चेहरा; छोटा सिर, गोल चेहरा।

मानवभिति की इन मापों का प्रयोग करते हुए, प्रजाति के विषय पर अधिकार रखने वाले प्रो. रिप्ले इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जहां तक शिरस्य और आनन सूचकांक का सवाल है तो यूरोपीय लोग तीन विभिन्न प्रजातियों के हैं। उनके निष्कर्षों का सार अगले पृष्ठ पर दी गई तालिका में प्रस्तुत किया गया है।[1]

शारीरिक संदर्भ में बात करें; तो क्या आर्य एक प्रजाति है? इस विषय में दो विचार दिखाई देते हैं। इनमें से एक मत आर्य प्रजाति के होने की बात करता है। इसके अनुसार–[2]

> आर्य प्रजाति...की विशिष्टता एक अपेक्षाकृत लंबा सिर (दीर्घशिरस्क); एक सीधी तराशी हुई नाक (सरल-नासा–leptorrhine); एक लंबा आनुपातिक संकीर्ण चेहरा; सुविकसित, सुगढ़ नैन-नक्श और चेहरे की उठी हुई हड्डियां हैं। कद खासा ऊंचा होता है–और देह की आम बनावट भारी-भरकम न होकर नपी-तुली और छरहरी होती है।

1. रिप्ले, डबल्यू.ई., द रेसेज़ ऑव यूरोप, पृष्ठ 121
2. रिप्ले, डबल्यू.ई., वही, पृष्ठ 121

दूसरा मत प्रो. मैक्स मूलर का है। उनके अनुसार इस शब्द का इस्तेमाल तीन भिन्न अर्थों में होता है। **साइंस ऑव लैंग्वेज** (भाषा का विज्ञान) विषय पर अपने व्याख्यानों में वह कहते हैं–

> 'अर' अथवा 'अरा' में मुझे जोती हुई भूमि के रूप में धरती का एक प्राचीनतम नाम दिखाई देता है, जो संस्कृत में तो लुप्त हो गया किंतु यूनानी में 'इरा' के रूप में संरक्षित है। इस प्रकार मूल में 'आर्य' शब्द का अर्थ भूस्वामी, भूमि को जोतने वाला रहा होगा, जबकि 'विश' से निकले वैश्य शब्द का अर्थ गृहस्थ होता था। मनु की पुत्री 'इड़ा' जोती हुई भूमि का एक और नाम है और संभवतः 'अरा' का ही संशोधित रूप है।

## यूरोपीय प्रजातियों की किस्में

| | सिर | चेहरा | बाल | आंखें | कद | नाक |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. ट्यूटनी | लंबा | लंबा | बहुत हल्के | नीली | लंबा | पतली टेढ़ी (तोते जैसी) |
| 2. ऐल्पीय (केल्ट) | गोल | चौड़ा | हल्के लाल भूरे | कुछ-कुछ भूरे (hazel) | मंझोले भारी गठीले | विभिन्न आकार की : कुछ चौड़ी भारी |
| 3. भूमध्यसागरीय | लंबा | लंबा | गहरे कत्थई अथवा काले | गहरे रंग की | मंझोले पतले | कुछ चौड़ी |

इस शब्द का जिस अन्य अर्थ में प्रयोग किया जाता था वह था मिट्टी में हल चलाना अथवा उसे जोतना। इस विषय में प्रो. मैक्स मूलर कहते हैं–

> मैं बस यही कह सकता हूं कि आर्य (शब्द) का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ यही प्रतीत होता है–हल चलाने वाला अथवा जोतने वाला। आर्यों ने यह नाम अपने लिए संभवतः खानाबदोश प्रजातियों, 'तूरनियों', से स्वयं को भिन्न दिखाने के उद्देश्य से रखा होगा, जिनके मूल नाम 'तुरा' का अर्थ होता है घुड़सवारों की तेजी।

तीसरे अर्थ में इस शब्द का प्रयोग वैश्यों अर्थात सामान्य जनसमूह के एक सामान्य नाम के तौर पर होता था, जिसमें सारे ही लोग आ जाते थे। इस सम्बंध में प्रो. मैक्स मूलर ने पाणिनी (3.1, 103) को अपना आधिकारिक स्रोत बनाया है। फिर आता है चौथा अर्थ, जो इस शब्द के साथ परवर्ती काल में जुड़ा, और यह अर्थ है 'श्रेष्ठ कुल वाला'।

किंतु इसमें विशेष महत्त्वपूर्ण तो प्रो. मैक्स मूलर का वह मत है जो उन्होंने आर्य प्रजाति के मसले पर व्यक्त किया है। इस विषय में उनका कहना है–[1]

---

1. *बायोग्राफी ऑव वर्ड्स, पृष्ठ 89 और 120-21*

आर्य प्रजाति का सम्बंध रक्त से नहीं है; वैज्ञानिक भाषा में आर्य शब्द का प्रयोग प्रजाति के सम्बंध में हो ही नहीं सकता। इसका अर्थ भाषा होता है, भाषा के अतिरिक्त और कुछ नहीं; और यदि हम आर्य प्रजाति की बात करते भी हैं, तो हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि इसका अर्थ कुछ नहीं बस...आर्य भाषा है।''

* * *

मैं बार-बार यह कह चुका हूं कि जब मैं 'आर्य' शब्द का उच्चारण करता हूं, तो मेरा आशय न तो रक्त से होता है न ही अस्थियों से, न तो बालों से और न ही खोपड़ी से; मेरा आशय तो बस उन लोगों से होता है जो एक आर्य भाषा बोलते हैं। यही बात हिंदुओं, यूनानियों, रोमनों, जर्मनों, केल्टों, और स्लाबों पर भी लागू होती है। जब मैं उनकी बात करता हूं तो किसी विशिष्ट शारीरिक विशेषता की बात नहीं करता। नीली आंखों और सफेद बालों वाले स्कैंडिनेवियाई विजेता रहे होंगे या फिर विजित, उन्होंने अपने काले मालिकों की भाषा अपनाई होगी या फिर उनकी प्रजा की, या फिर इससे उलटा रहा होगा। जब मैं उन्हें हिंदू, यूनानी, रोमन, जर्मन, केल्ट और स्लाब कहता हूं तो मैं उनकी भाषा के अतिरिक्त और किसी बात पर जोर नहीं देता; और उस अर्थ में, केवल उसी अर्थ में मैं यह कहता हूं कि गोरे से गोरे स्कैंडिनेवियाई की तुलना में काले से काले हिंदू भी आर्य भाषा और चिंतन के एक प्रारंभिक चरण का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह कठोर भाषा प्रतीत हो सकती है, किंतु ऐसे महत्त्वपूर्ण मामले में हम अपनी भाषा में बहुत अधिक निश्चित नहीं हो सकते। मेरी दृष्टि में आर्य प्रजाति, आर्य रक्त, आर्य आंखों और आर्य बालों की बात करने वाला मानव जाति विज्ञानी भी उतना ही बड़ा पापी है जितना वह भाषा विज्ञानी जो एक दीर्घशिरस्क शब्दकोश की अथवा लघुशिरस्क व्याकरण की बात करता है। यह बाबेल में हुए भाषा के संभ्रम (देखिए बाइबिल, पुराना नियम, उत्पत्ति, 11, 1-9—अनु.) से भी बुरा है—यह तो सरासर चोरी है। हमने भाषा के वर्गीकरण के लिए अपनी स्वयं की शब्दावली बनाई है; अब खोपड़ियों और बालों और रक्त के वर्गीकरण के लिए मानव जाति विज्ञानी अपनी शब्दावली बनाएं।

प्रो. मैक्स मूलर के इस मत को वे लोग समझेंगे-सराहेंगे जिन्हें यह पता है कि वह कभी आर्य प्रजाति के सिद्धांत को मानने वालों में हुआ करते थे और इसके प्रचार-प्रसार में उनकी अहम भूमिका भी रही।

ये दोनों मत स्पष्ट तौर पर एक-दूसरे से भिन्न हैं। एक मत के अनुसार, आर्य प्रजाति शारीरिक विशिष्टताओं के साथ विद्यमान थी, उसमें विशिष्ट वंशानुगत लक्षण थे, और एक निश्चित शिरस्थ तथा आनन सूचकांक था। प्रो. मैक्स मूलर के अनुसार, आर्य प्रजाति का आधार उसकी भाषाई विशिष्टता थी, वे एक साझा भाषा बोलने वाले लोग थे।

इन विरोधाभासी मतों को देखते हुए यह प्रश्न उठ सकता है–वैदिक साहित्य क्या साक्ष्य प्रस्तुत करता है? वैदिक साहित्य के विवेचन से यह पता चलता है कि ऋग्वेद में दो शब्द आए हैं–एक है 'अर्य' और दूसरा है 'आर्य'। अर्य शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में[1] अठासी (88) स्थानों पर हुआ है। इसका प्रयोग किस अर्थ में हुआ है? इस शब्द[2] का प्रयोग चार भिन्न अर्थों में हुआ है–(1) शत्रु के अर्थ में, (2) सम्माननीय व्यक्ति के अर्थ में, (3) भारत के नाम के रूप में, और (4) स्वामी, वैश्य अथवा नागरिक के रूप में।

आर्य शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में इकतीस स्थानों पर हुआ है।[3] किंतु इनमें से किसी में भी इस शब्द का प्रयोग प्रजाति के अर्थ में नहीं हुआ है।

इस चर्चा से एक निर्विवाद निष्कर्ष यह निकलता है कि वेदों में आने वाले 'अर्य' और 'आर्य' शब्दों का प्रयोग प्रजाति के अर्थ में तो बिलकुल नहीं हुआ है।

प्रश्न यह भी उठ सकता है–मानवभिति क्या साक्ष्य प्रस्तुत करती है? आर्य प्रजाति का वर्णन लंबे सिर वालों के रूप में मिलता है। यह वर्णन पर्याप्त नही है। क्योंकि, जैसा कि प्रो. रिप्ले द्वारा दी गई तालिका से पता चलता है, लंबे सिर वाली दो प्रजातियां हैं। यह प्रश्न अभी भी बना हुआ है कि इनमें से कौन-सी आर्य प्रजाति है।

## II

अब हम अगले आधार पर आते हैं कि आर्य लोग भारत में बाहर से आए थे, उन्होंने भारत पर आक्रमण किया और यहां की मूल जनजातियों पर जीत हासिल की थी। इन मसलों को अलग-अलग लेना बेहतर होगा।

आर्य प्रजाति भारत में कहां से आई? आर्यों के मूल स्थान का पता करने के सम्बंध में विविध प्रकार के मत और विकल्प उपलब्ध हैं जो चकरा देने वाले हैं। बेनफे के अनुसार, आर्य प्रजाति के मूल स्थान का निर्धारण साझा शब्द भंडार के संदर्भ से ही होना चाहिए। इस विषय पर उनके विचारों को प्रो. आइज़क टेलर ने[4] बड़ी अच्छी तरह से संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया है–

> ''समूची आर्य भाषाओं में उपलब्ध साझा शब्द भंडार के विवेचन से यह पता चल सकता है कि भाषाई अलगाव से पहले आर्य किस क्षेत्र में रहते थे। उनकी (बेनफे की) दलील थी कि भालू और भेड़िया जैसे कुछ जानवर, और करंज और भूर्ज जैसे कुछ पेड़, जिनसे आदिम आर्य अवश्य ही परिचित रहे होंगे, वे सभी शीतोष्ण प्रदेश, और सर्वोपरि तो यूरोप, के लिए स्वदेशी हैं, जबकि

1. *ऋग्वेद में आए संदर्भों की सूची के लिए, देखिए परिशिष्ट 1*
2. *इस शब्द का प्रयोग किस स्थान पर और किस अर्थ में हुआ है, इसकी सूची के लिए, देखिए परिशिष्ट 2*
3. *संदर्भों की सूची के लिए, देखिए परिशिष्ट 3*
4. *आइज़क टेलर, दि अमेरिजन ऑव दि आर्यन्स, पृष्ठ 24-26*

दक्षिण एशिया के विशिष्ट पशु और वृक्ष, जैसे शेर, बाघ और ताड़ से केवल भारतीय और ईरानी ही परिचित थे। उनके अनुसार, यदि इस सिद्धांत को सही माना जाए कि आर्य लोग कैस्पियन सागर के पूर्वी क्षेत्र से आए थे, तो फिर इस तथ्य की व्याख्या कठिन हो जाएगी कि आदिम आर्य शब्द-भंडार में एशिया के दो महत्त्वपूर्ण शिकारी पशुओं, शेर और बाघ के अथवा एशिया के प्रमुख सवारी पशु, ऊंट के लिए कोई सामान्य नाम क्यों विद्यमान नहीं हैं। यूनानी लोग शेर के लिए उसके सामी (भाषा वाले) नाम का प्रयोग करते थे और भारतीय लोग उसके लिए जिस नाम का प्रयोग करते थे उसका सम्बंध किसी भी आर्य मूल से नहीं कहा जा सकता—इससे यह तर्क सामने आता है कि यूनानियों और भारतीयों के साझा वास स्थान में लोग शेर से परिचित नहीं थे।

* * *

बेनफे के इस कथन का परिणाम तेजी से सामने आया और जाइगर भी उसी खेमे में शामिल हो गए। किंतु उन्होंने बेनफे की तरह आर्यों का मूल स्थान कृष्ण सागर के उत्तर में न बताकर थोड़ा और उत्तर पश्चिम की ओर मध्य और पश्चिमी जर्मनी में बताया। इस बहस में जाइगर के योगदान का अपना अलग महत्त्व था। उन्होंने अपने निष्कर्षों का आधार अधिकतर उन वृक्षों के नामों को बनाया है जो आदिम आर्य शब्द भंडार में पाए जाते हैं। उनका मानना है कि देवदार (fir), बेंत (willow), ऐश (ash), भिदुर (alder) और पिंगल (hazel) के अतिरिक्त भूर्ज (birch), करंज (beech) और बलूत (oak) वृक्षों के नाम विशेषकर निर्णायक हैं। बलूत का यूनानी नाम 'फेगोस' क्योंकि ट्यूटनी 'बीच' और लैटिन fague का समतुल्य है, इसलिए उनका निष्कर्ष है कि यूनानी लोग करंजों के देश से बलूतों के देश में आए थे, और उन्होंने 'खाने योग्य' फल के नाम को एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष में स्थानांतरित कर दिया था।''

एक अन्य चिंतकों के अन्य वर्ग का मानना है कि आर्य प्रजाति का मूल वास स्थान काकेशिया में था, क्योंकि काकेशिया के निवासी भी आर्यों के समान गोरे सुनहरे केशों वाले, सीधी-चोंचदार नाक और सुंदर मुख वाले होते हैं। इस विषय में प्रो. रिप्ले[1] के विचार उद्धृणीय हैं। वह कहते हैं—

पश्चिम यूरोप की नीली आंखों और सफेद बालों वाली 'आर्य'(?) प्रजाति के लिए जो 'काकेशियाई' शब्द का मिथ्या प्रयोग किया गया है इसका नितांत बेतुकापन दो निर्विवाद तथ्यों से उजागर होता है। पहली बात तो इस आदर्श सुनहरी प्रजाति के लोग काकेशिया के आसपास कई सौ मीलों तक नहीं पाए

---

1. *रिप्ले, रेसेज़ ऑव यूरोप, पृष्ठ 436-437*

जाते; और दूसरी बात यह कि विशाल काकेशियाई श्रृंखला के आसपास कहीं भी ऐसी एक भी मूल जनजाति नहीं है जो किसी विशुद्ध विभक्ति प्रधान अथवा आर्य भाषा का प्रयोग करती हो।

* * *

ओसेट जन ने भी, जिनकी भाषा ही संभवतः एक मात्र विभक्ति प्रधान भाषा है, अभी तक आर्य होने का दावा स्पष्ट नहीं किया है। और ओसेट यदि आर्य हों भी, तब भी यह मानने के पर्याप्त कारण हैं कि ये लोग ईरान की दिशा से आए थे और काकेशिया के मूलनिवासी नहीं थे। उनके सिर की आकृति से और इस तथ्य से भी कि उनका अधिकार वहां के एक मात्र मुख्य मार्ग--दारिएल के दर्रे--पर रहा है, इसी सिद्धांत की पुष्टि होती है। ओसेट लोग आर्य हों या नहीं हों, फिर भी उनके आसपास रहने वाली अन्य कौमों में उन्हें श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता। उनमें वह शारीरिक सौंदर्य भी नहीं है जिसके लिए यह प्रदेश उचित ही मशहूर है, और उनमें साहस भी नहीं है जो इस तथ्य के आधार पर तय किया जा सकता है कि उन्होंने रूसियों के आगे कायरता से और छाया मात्र भी प्रतिरोध किए बगैर घुटने टेक दिए थे।

* * *

यह सच नहीं है कि ये काकेशियाई 'कुछ-कुछ विशिष्ट' भी हैं। वस्तुतः वे कभी किसी भी मामले में 'विशिष्ट' नहीं हो सकते। इस नाम में यूरेशियाई महाद्वीप का लगभग प्रत्येक शारीरिक प्रकार और भाषाई परिवार आ जाता है, सिवाय, जैसा कि हम कह चुके हैं, उस लंबे, गौरवर्ण और स्वर्णकेशी 'आर्य' जन के, जिनके लिए इस नाम का विशेषकर प्रयोग हुआ है। यह गलत है; यह केवल असंभाव्य ही नहीं, बल्कि बेतुका भी है। काकेशस तो कौमों का, भाषाओं का, प्रथाओं का, और शारीरिक प्रकारों का पालना नहीं बल्कि कब्रिस्तान है। हमें प्रारंभ में ही उस विषय में आश्वस्त हो जाना चाहिए। दुनिया में और कहीं भी शायद लोगों, भाषाओं और धर्मों का इतना विषमजातीय जमावड़ा एक ही स्थान पर नहीं है, जितना कि काकेशस पर्वत-श्रृंखला के विस्तार-क्षेत्र में।

तिलक के अनुसार आर्य प्रजाति का मूल वास स्थान आर्कटिक अर्थात उत्तरी ध्रुव प्रदेश में था। उनके मत को संक्षेप में उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रारंभ में उन्होंने उत्तरी ध्रुव के आसपास के प्रदेश की खगोलीय और जलवायु सम्बंधी स्थिति की ओर ध्यान दिया है। उनके अनुसार--[1]

"दो प्रकार की विशेषताएं अथवा विलक्षणताएं (हैं); एक ठीक स्थलीय

1. *तिलक, बी.जी., दि आर्कटिक होम इन द वेदाज़, 58-60*

उत्तरी ध्रुव पर स्थित दर्शक के लिए और दूसरी परिध्रुवीय प्रदेश में अर्थात उत्तरी ध्रुव और उत्तर ध्रुव वृत्त के बीच के भूभाग में स्थित दर्शक के लिए।''

तिलक ने इन दो विलक्षणताओं को ध्रुवीय और परिध्रुवीय कहा है, और इन्हें सार रूप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया है–

## 1. ध्रुवीय विशेषताएं

(1) सूर्य दक्षिण में निकलता है।

(2) सितारे निकलते अथवा डूबते नहीं हैं; बल्कि वे एक क्षैतिज चक्कर में घूमते रहते हैं, और 24 घंटों में एक चक्कर पूरा करते हैं। सिर के ऊपर केवल उत्तरी आकाशीय गोलार्ध ही होता है और यह पूरे वर्ष दिखाई देता है; और दक्षिणी अथवा निम्न आकाशलोक हमेशा अदृश्य रहता है।

(3) एक वर्ष यहां एक दिन और एक रात का होता है; और यहां का दिन छह महीने का और रात भी छह महीने की होती है।

(4) यहां केवल एक सुबह और एक शाम होती है, अर्थात सूर्य यहां साल में केवल एक बार निकलता और एक बार डूबता है। किंतु यहां सुबह और शाम का संधि आलोक लगातार लगभग दो महीनों तक बना रहता है, अर्थात चौबीस-चौबीस घंटों की 60 अवधियों तक। सुबह की लालिमा अथवा शाम का संधि आलोक क्षितिज के एक विशेष हिस्से (पूर्वी अथवा पश्चिमी) तक ही सीमित नहीं रहता, जैसा कि हमारे यहां होता है; बल्कि यह वहां के सितारों की तरह क्षितिज पर ऐसे गोल-गोल घूमता है जैसे कुम्हार का चाक, और चौबीस घंटे में एक चक्कर पूरा करता है। सुबह की लालिमा के ये दौर तब तक चलते रहते हैं जब तक सूरज का गोला क्षितिज के ऊपर नहीं आ जाता; और फिर सूर्य छह महीनों तक उसी पथ पर रहता है, अर्थात दर्शक के चारों ओर गोल-गोल घूमता है और डूबता नहीं है, और चौबीस घंटों में एक चक्कर पूरा करता है।

## 2. परिध्रुवीय विशेषताएं

(1) सूर्य हमेशा दर्शक के शीर्ष के दक्षिण में रहेगा, क्योंकि यह शीतोष्ण प्रदेश में स्थित दर्शक के साथ भी होता है, इसलिए इसे एक असाधारण विशेषता नहीं माना जा सकता।

(2) बहुत सारे सितारे परिध्रुवीय होते हैं, अर्थात वे चक्कर लगाते समय पूरी अवधि में क्षितिज के ऊपर होते हैं और इसलिए हमेशा दिखाई भी देते रहते हैं। अन्य सितारे वैसे ही निकलते और डूबते हैं जैसे शीतोष्ण क्षेत्र में निकलते-डूबते हैं, किंतु अपेक्षाकृत अधिक तिरछे चक्करों में घूमते हैं।

(3) साल के तीन हिस्से होते हैं–(i) एक लंबी लगातार रात, जो मकर संक्रांति के समय होती है और उस स्थान के अक्षांश के अनुसार 24 घंटों से अधिक और छह महीनों से कम की अवधि तक रहती है; (ii) वैसा ही लंबा और लगातार रहने वाला दिन, जो कर्क संक्रांति के समय होता है; और (iii) वर्ष की शेष अवधि में आम दिनों और रातों का

सिलसिला, इकट्ठा एक दिन और एक रात, जिसकी अवधि 24 घंटों से अधिक नहीं होती है। लगातार लंबी रात के बाद, दिन पहले तो रात से छोटा होता है, किंतु फिर तब तक बड़ा होता है जब तक यह लगातार लंबे दिन में तब्दील नहीं हो जाता। लंबे दिन की समाप्ति पर, रात पहले तो दिन से छोटी होती है, किंतु फिर यह बड़ी होती जाती है और तब लगातार लंबी रात की शुरुआत होती है, और इसके साथ ही वर्ष समाप्त हो जाता है।

(4) लगातार लंबी रात की समाप्ति पर, भोर कई दिनों तक रहती है, किंतु इसकी अवधि और भव्यता, स्थान के अक्षांश के अनुसार, उत्तरी ध्रुव की अपेक्षा कम होती है। जो स्थान उत्तरी ध्रुव के कुछ अंशों के भीतर आते हैं, वहां चक्कर लगाते सुबह के प्रकाश का दृश्य भोर की अवधि के अधिकांश समय तक भी दिखाई देता है। आम दिनों और रातों के बीच पड़ने वाली भोरें, शीतोष्ण क्षेत्र की भोरों के समान, केवल कुछ ही घंटों तक रहती हैं। सूर्य जब लगातार दिन के दौरान क्षितिज के ऊपर होता है, तब वह दर्शक के चारों ओर, बिना डूबे, चक्कर काटता दिखाई देता है—किंतु क्षैतिज नहीं बल्कि तिरछे चक्करों में—और लंबी रात के दौरान वह पूरा क्षितिज के नीचे होता है, जबकि वर्ष की शेष अवधि में वह 24 घंटों में से कुछ समय तक क्षितिज के ऊपर रहते हुए निकलता और डूबता है, और यह समय सूर्यपथ में सूर्य की स्थिति के अनुसार बदलता रहता है।

अपने विश्लेषण के निष्कर्षस्वरूप तिलक कहते हैं—

"यहां हम ध्रुवीय और परिध्रुवीय प्रदेशों की दो भिन्न प्रकार की विलक्षणताएं देखते हैं—ऐसी विशेषताएं जो धरती पर और कहीं नहीं मिलतीं। और फिर धरती के ध्रुव आज भी वैसे ही हैं जैसे लाखों-करोड़ों वर्ष पहले थे, इसलिए उपर्युक्त खगोलीय विशेषताएं किसी भी काल में ऐसी ही रहेंगी, ध्रुवीय जलवायु में अत्यंत नूतन (Pleistocene) काल के दौरान भले ही प्रचंड परिवर्तन हुए हों।"

उत्तर ध्रुवीय दृश्य की समीक्षा के बाद तिलक यह तर्क रखते हैं कि—

"यदि किसी वैदिक वर्णन अथवा परंपरा में उपर्युक्त में से कोई भी विशेषता उजागर होती है, तो हम निश्चिंत होकर यह अर्थ निकाल सकते हैं कि इस परंपरा का मूल ध्रुवीय अथवा परिध्रुवीय है, और इस दृश्य को यदि (वैदिक) कवि ने स्वयं देखा नहीं भी हो तो कम से कम पीढ़ियों से चली आ रही परंपरा के माध्यम से वह इससे परिचित तो था ही। सौभाग्यवश वैदिक साहित्य में ऐसे अनेक अंश अथवा उल्लेख मिलते हैं और सुविधा के लिए, इन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है; पहले वे अंश जिनमें सीधे-सीधे लंबी रात अथवा लंबी भोर का वर्णन अथवा उल्लेख है; और दूसरे वे मिथक और दंतकथाएं जिनसे पहले अंशों की पुष्टि और उनका अप्रत्यक्ष समर्थन होता है।"

तिलक इस बात से आश्वस्त हैं कि वेदों में निहित मिथक और दंतकथा और प्राकृतिक परिघटनाओं के चित्रण उत्तरी ध्रुव के निकट दिखने वाली प्राकृतिक परिघटना (दृश्य) से मेल

खाते हैं, और इस आधार पर वह यह निष्कर्ष निकालते हैं कि वैदिक कवियों अर्थात वैदिक आर्यों का मूल निवास स्थल उत्तर ध्रुवीय प्रदेश ही रहा होगा।

यह निश्चय ही एक अत्यंत मौलिक सिद्धांत है। इसमें बस एक बात की अनदेखी कर दी गई है। वैदिक आर्यों का प्रिय पशु घोड़ा है। यह उनके जीवन और उनके धर्म से अत्यंत घनिष्ठता से जुड़ा था। वैदिक आर्यों के जीवन में घोड़े का क्या स्थान था, इसका पता इस तथ्य से चलता है कि अश्वमेध यज्ञ में घोड़े के साथ मैथुन करने के लिए रानियों में आपस में होड़ होती थी।[1] सवाल यह है—क्या घोड़ा उत्तर ध्रुवीय प्रदेश में पाया जाता था? इसका उत्तर यदि 'नहीं' में है तो फिर उत्तरी ध्रुव का मूलनिवासी होने का सिद्धांत अत्यंत निराधार हो जाता है।

## III

इस बात का क्या प्रमाण है कि आर्य प्रजाति ने भारत पर आक्रमण किया था और यहां की मूल जनजातियों को अपने अधीन कर लिया था? जहां तक ऋग्वेद का सवाल है, तो उसमें इस बात का रत्ती भर भी प्रमाण नहीं है कि भारत के बाहर से आर्यों ने इस पर आक्रमण किया था। जैसा कि पी.टी. श्रीनिवास आयंगर[2] कहते हैं—

> "जिन मंत्रों में आर्य, दास और दस्यु शब्द आते हैं उनकी सावधानीपूर्वक जांच करने से यह पता चलता है कि उनका सम्बंध प्रजाति से न होकर पूजा-पद्धति से है। ये शब्द अधिकतर ऋग्वेद में आए हैं, जहां आर्य शब्द मंत्रों में लगभग 33 बार आया है जिनमें कुल मिलाकर 1, 53, 972 शब्द हैं। इन शब्दों का इतनी कम बार आना ही इस बात का प्रभाव है कि जो जनजातियां स्वयं को आर्य कहती थीं वे देश को जीतने वाली और लोगों को तहस-नहस कर देने वाले आक्रमणकारी नहीं थे। क्योंकि आक्रामक जनजाति स्वाभाविक तौर पर अपनी उपलब्धियों की लगातार डींग मारती रहती हैं।"

जहां तक वैदिक साहित्य के साक्ष्य का सवाल है, वह इस सिद्धांत के विपरीत है कि आर्यों का मूल निवास स्थान भारत से बाहर था। ऋग्वेद (10, 75.5) में सप्त नदियों का उल्लेख जिस भाषा में हुआ है वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जैसा कि प्रो. डी.एस. त्रिवेद ने कहा है[3]—नदियों को 'मेरी गंगा, मेरी यमुना, मेरी सरस्वती' आदि कहकर सम्बोधित किया गया है। कोई भी विदेशी किसी नदी को इतने परिचित और प्रेमिल अंदाज में तभी सम्बोधित करेगा तब बहुत समय तक उसके सान्निध्य में रह लेने पर उसके साथ उसका भावनात्मक लगाव हो जाए।

---

1. देखिए यजुर्वेद, माधवाचार्य के भाष्य सहित
2. लाइफ इन एनशिएंट इंडिया इन दि एज ऑव द मंत्राज़, पृष्ठ 11-12
3. दि ओरिजनल होम ऑव दि आर्यन्स, डी.एस. त्रिवेद, ऐनल्स ऑव द भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, खंड 20, पृष्ठ 62

जहां तक विजय और अधीनता का सवाल है, तो इस सम्बंध में निस्संदेह ऋग्वेद में उल्लेख मिल सकते हैं जहां दासों और दस्युओं को आर्यों का शत्रु बताया गया है और ऐसे अनेक स्तोत्र हैं जिनमें वैदिक ऋषियों ने अपने देवों का आवाहन किया है कि वे उन्हें मार डालें और उनका उच्छेद कर दें। किंतु, आर्यों ने इनको जीत कर अपने अधीन कर लिया था, इससे यह निष्कर्ष निकालने से पहले हमें निम्नलिखित बातों को अवश्य ध्यान में रखना होगा।

सबसे पहली बात तो यह कि ऋग्वेद में दासों और दस्युओं के विरुद्ध आर्यों की लड़ाइयों के उल्लेखों का ऋग्वेद में अभाव है। ऋग्वेद में जिन 33 स्थानों पर इस शब्द का उल्लेख हुआ है, उनमें से केवल आठ स्थानों में इसका प्रयोग दासों के विरुद्ध और केवल सात स्थानों में दस्युओं शब्द के विरुद्ध हुआ है। इससे यह तो पता चल सकता है कि दोनों के बीच छिटपुट झड़पें हुई थीं, किंतु यह निश्चय ही किसी जीत अथवा अधीनता का साक्ष्य नहीं है।

दूसरी बात दासों के सम्बंध में यह है कि यहां उनके और आर्यों के बीच जो भी टकराव था, इन दोनों के बीच एक आपसी समझौता हो गया था, जो सम्मान सहित शांति पर आधारित था। इसकी पुष्टि ऋग्वेद में आए उन उल्लेखों से होती है जिनसे यह पता चलता है कि दास और आर्य एक साझा दुश्मन के खिलाफ कैसे एकजुट होकर खड़े हो गए हैं। ऋग्वेद के इन स्तोत्रों को देखिए–

ऋग्वेद : 6, 33.3   7, 83.1   8, 51.9   10, 102.3

यहां तीसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि टकराव चाहे जिस सीमा तक रहा हो, यह प्रजाति का टकराव नहीं था। यह एक ऐसा टकराव था जो अलग-अलग धर्म होने के कारण पैदा हुआ था। यह टकराव जनजातिगत न होकर धार्मिक था, इस तथ्य की पुष्टि स्वयं ऋग्वेद से होती है। दस्युओं के विषय में इसमें[1] कहा गया है–

"वे आव्रत हैं, (आर्य) संस्कारों से विहीन (ऋग्वेद, 1, 51.8, 9; 1, 132.4; 4, 41.2; 6, 14.3); अपव्रत हैं (ऋग्वेद, 5, 42.2); अन्यव्रत हैं, भिन्न संस्कार वाले (ऋग्वेद, 8, 59.11; 10, 22.8); अनग्नित्र अग्निविहीन (ऋग्वेद, 5, 189.3); अयज्यु, अयज्वन हैं, यज्ञ से रहित (ऋग्वेद, 1, 131.44; 1, 33.4; 8, 59.11); अब्रह्म हैं, प्रार्थनाओं से रहित (अथवा ब्राह्मण पुरोहित से विहीन (ऋग्वेद, 4, 15.9; 10, 105.8); अनऋचा हैं, ऋचा विहीन (ऋग्वेद, 10, 105.8); ब्राह्मणद्वेषी, प्रार्थनाओं (अथवा ब्राह्मणों) से घृणा करने वाले (ऋग्वेद, 5, 42.9); और अनिंद्र, इंद्र से रहित, इंद्र की अवमानना करने वाले (ऋग्वेद, 1, 133.1; 5, 2.3; 7, 18.6; 10, 27.6; 10, 48.7)। 'वे न सोम निचोड़ते न कड़ाही गरम करते हैं' (ऋग्वेद, 3, 53.4)। वे ब्राह्मणों को दान नहीं देते (ऋग्वेद, 5, 7.10)।"

---

*1. आयंगर, दि ओरिजनल होम ऑव दि आर्यन्स, डी.एस. त्रिवेद, ऐनल्स ऑव द भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, खंड 20, पृ. 13*

ऋग्वेद 10, 22.8 भी ध्यान देने योग्य है जिसमें कहा गया है–

"हे इंद्र! हमारे चारों ओर यज्ञकर्म से शून्य, किसी को न मानने वाले, वेद स्तुति के प्रतिकूल कर्म करने वाले एवं मानवोचित व्यवहार से रहित दस्यु हैं। हे शत्रुनाशक इंद्र! तुम शूर मरुतों के साथ हमारी रक्षा करो।"

ऋग्वेद के इन कथनों के आलोक में, इस सिद्धांत के लिए स्पष्ट ही कोई जगह नहीं है कि आर्य प्रजाति ने दासों और दस्युओं की अनार्य प्रजातियों पर सैनिक विजय हासिल की होगी।

## IV

तो यह था विवेचन आर्यों, भारत पर उनके आक्रमण, और दास-दस्युओं को उनके द्वारा अपने अधीन किए जाने का। अभी तक इस प्रश्न पर हमने आर्यों के परिप्रेक्ष्य से विचार किया। अब इस पर दासों और दस्युओं के पक्ष से चर्चा कर ली जाए तो ठीक रहेगा। दास और दस्यु नामों का प्रयोग किस अर्थ में किया जाता है? क्या इनका प्रयोग प्रजाति के अर्थ में होता है?

जिन लोगों का यह मानना है कि दास और दस्यु शब्दों का प्रयोग प्रजाति के अर्थ में होता है, वे इन परिस्थितियों को आधार बनाते हैं–(1) ऋग्वेद में 'मृध्रावक' और 'अनास' शब्दों का प्रयोग दस्युओं के विशेषणों के रूप में हुआ है। (2) ऋग्वेद में दासों को कृष्ण वर्ण का बताया गया है।

मृध्रावक शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में निम्नलिखित अंशों में हुआ है–

(1) ऋग्वेद – 1, 174.2 (2) ऋग्वेद – 5, 32.8

(3) ऋग्वेद – 7, 6.3 (4) ऋग्वेद – 7, 18.3

मृध्रावक विशेषण का अर्थ क्या है? मृध्रावक का अर्थ होता है असभ्य, अपरिष्कृत भाषा बोलने वाला। क्या अस्भ अपरिष्कृत भाषा को प्रजाति के अंतर का सबूत माना जा सकता है? इसे प्रजाति के अंतर का आधार मानना लड़कपन होगा।

अनास शब्द का प्रयोग ऋग्वेद 5, 29.10 में हुआ है। इस शब्द का क्या अर्थ है? इसकी दो व्याख्याएं हैं। एक, प्रो. मैक्स मूलर द्वारा दी गई है। दूसरी सायनाचार्य की है। प्रो. मैक्स मूलर के अनुसार इसका अर्थ होता है 'बिना नाक वाला' अथवा 'चपटी नाक वाला', और इस व्याख्या को ही इस दृष्टिकोण के समर्थनकारक प्रमाण के तौर पर अधिक प्रामाणिक माना गया है कि आर्य लोग दस्युओं से भिन्न प्रजाति के थे। सायनाचार्य इसका अर्थ 'मुखविहीन' अर्थात उत्तम वाणी से रहित बताते हैं। अर्थ का यह अंतर इस शब्द (अनास) को अलग-अलग ढंग से पढ़ने के कारण है। सायनाचार्य इसे अन-असा पढ़ते हैं जबकि मैक्स मूलर इसे अ-नासा पढ़ते हैं। प्रो. मैक्स मूलर इसे जिस रूप में पढ़ते हैं उससे इसका अर्थ निकलता है 'बिना नाक वाला'। सवाल यह है–इन दोनों में से कौन-सा पाठ सही है। यह मानने का कोई कारण नहीं है कि सायण का पाठ गलत है। दूसरी ओर यह

हर प्रकार से सही प्रतीत होता है। सबसे पहले तो, इसमें इस शब्द का अनर्थ नहीं होता। दूसरी बात यह कि क्योंकि अन्य किसी भी स्थल पर दस्युओं को नासिकाविहीन (बिना नाक वाला) नहीं बताया गया है, इसलिए ऐसा कोई कारण नहीं है कि इस शब्द को इस ढंग से क्यों पढ़ा जाए कि इसका बिलकुल नया अर्थ निकले। इसे मृध्रावक के पर्यायवाची शब्द के रूप में पढ़ना ही उचित है। इसलिए इस निष्कर्ष के समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं है कि दस्यु किसी भिन्न जाति के थे।

अब दासों की बात करें, तो यह सच है कि ऋग्वेद 6, 47.21 में उन्हें कृष्ण योनि बताया गया है किंतु इसका कोई अर्थ निकालने से पहले हमें कई बातों पर विचार करना होगा। पहली तो यह कि ऋग्वेद में यह अकेला अंश है जहां दासों के लिए 'कृष्ण योनि' का प्रयोग हुआ है। दूसरी बात, यह बिलकुल भी निश्चित नहीं है कि 'कृष्ण योनि' का प्रयोग शाब्दिक अर्थ में हुआ है अथवा लाक्षणिक अर्थ में। तीसरी बात यह कि हमें यह नहीं ज्ञात कि यह यथार्थ कथन है अथवा अपशब्द। जब तक इन बातों का स्पष्टीकरण नहीं हो जाता, तब तक इस मत को स्वीकार करना संभव नहीं है कि दासों को क्योंकि 'कृष्ण योनि' कहा गया है इसलिए वे काले रंग की प्रजाति के थे।

इस सम्बंध में, ऋग्वेद के निम्नलिखित स्तोत्रों की ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है—

1. ऋग्वेद, 6, 22.10—"हे वज्रि, तुमने अपनी शक्ति से दासों को आर्य बनाया, बुरे मनुष्यों को अच्छा बनाया है। हमें वैसे ही शक्ति दो जिससे हम उसके द्वारा अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकें।"
2. ऋग्वेद, 10, 49.3 (इंद्र कहते हैं)—"मैंने दस्युओं से आर्यों की उपाधि से वंचित कर दिया है।"
3. ऋग्वेद, 1, 151.8—"हे इंद्र, यह पता करो कि कौन आर्य है और कौन दस्यु और उन्हें पृथक करो।"

इन स्तोत्रों से क्या पता चलता है? इससे यह पता चलता है कि आर्यों और दास-दस्युओं के बीच जो विभेद था वह रंग अथवा मुखाकृति पर आधारित प्रजातीय विभेद नहीं था। तभी तो एक दास अथवा दस्यु एक आर्य बन सकता था। तभी तो इंद्र को यह काम सौंपा गया था कि वह उन्हें आर्य से पृथक करें।

## V

कहना न होगा कि पाश्चात्य लेखकों ने आर्य प्रजाति का जो सिद्धांत दिया है वह हर तरह से धराशायी हो गया है। यह अपने आप में आश्चर्यजनक है क्योंकि पाश्चात्य विद्वता को आम तौर पर गहन अनुसंधान और सतर्क विश्लेषण से जोड़कर देखा जाता है। यह सिद्धांत क्यों विफल हो गया? इसके कारणों का ज्ञान महत्त्वपूर्ण है। जो कोई भी इस सिद्धांत की छानबीन करेगा उसे पता चलेगा कि यह दोहरे संक्रमण से ग्रस्त है। पहले तो यह सिद्धांत

केवल सुखद मान्यताओं पर और उन मान्यताओं पर आधारित अनुमानों पर टिका है। दूसरे यह सिद्धांत तो वैज्ञानिक अनुसंधान का विकृत रूप है। इसे तथ्यों पर आधारित नहीं किया गया। इसके विपरीत यह सिद्धांत पूर्वकल्पित है और तथ्यों का चयन उसे प्रमाणित करने के लिए कर लिया गया है।

आर्य प्रजाति का सिद्धांत मात्र एक मान्यता अथवा धारणा है और इससे अधिक कुछ भी नहीं है। यह उस भाषाविज्ञानी प्रस्तावना पर आधारित है जिसे डॉ. बॉप ने 1835 में प्रकाशित अपनी युगांतरकारी पुस्तक 'कम्परेटिव ग्रामर' (तुलनात्मक व्याकरण) में प्रस्तुत किया था। इस पुस्तक में डॉ. बॉप ने यह दिखाया था कि यूरोप की बहुत सारी भाषाओं और एशिया की कुछ भाषाओं का स्रोत एक साझा पुश्तैनी भाषा ही है। डॉ. बॉप की प्रस्तावना जिन यूरोपीय भाषाओं और एशियाई भाषाओं पर लागू होती है उन्हें भारतीय-जर्मन कहा जाता है। सामूहिक रूप में, वे आर्य भाषाएं कहलाईं, और इसका प्रमुख कारण यह है कि वैदिक भाषा का सम्बंध आर्यों से है और यह भी भारतीय-जर्मन भाषा परिवार की ही है। यह धारणा वह मुख्य आधार है जिस पर आर्य प्रजाति का सिद्धांत टिका है।

इस मान्यता अथवा धारणा से दो निष्कर्ष निकलते हैं–(1) प्रजाति की एकता और (2) वह प्रजाति आर्य प्रजाति है। यहां तर्क यह है कि यदि इन भाषाओं का जन्म एक साझा पुश्तैनी भाषा से हुआ है तो ऐसी कोई प्रजाति अवश्य ही रही होगी जिसकी मातृभाषा यही थी और क्योंकि इस मातृभाषा को आर्य भाषा कहा जाता था, इसलिए इसे बोलने वाली प्रजाति आर्य प्रजाति थी। इस प्रकार, एक पृथक और विशिष्ट आर्य प्रजाति का होना मात्र एक अनुमान है। इस अनुमान से एक और अनुमान एक साझा मूल निवास स्थान का सामने आना है। यह तर्क दिया जाता है कि भाषा का कोई समुदाय तभी हो सकता है जबकि एक साझा निवास स्थान हो और उसमें निकट संसर्ग की छूट हो। इस प्रकार, साझा मूल निवास तो एक अनुमान से निकला अनुमान है।

आक्रमण वाला सिद्धांत तो एक आविष्कार है। यह आविष्कार पाश्चात्य सिद्धांत में निहित एक अकारण धारणा के कारण आवश्यक हो गया है। धारणा यह है कि भारतीय-जर्मन लोग तो मूल आर्य प्रजाति के वर्तमान प्रतिनिधियों में सबसे अधिक शुद्ध हैं। इनका पहला मूल निवास यूरोप में कहीं माना गया है। इन धारणाओं से एक सवाल उठता है–आर्य भाषा भारत में कैसे आई होगी? इस सवाल का जवाब केवल इस धारणा में मिल सकता है कि आर्य लोग भारत में बाहर से ही आए होंगे। इसीलिए आक्रमण वाले सिद्धांत का आविष्कार करना आवश्यक हो गया।

तीसरी धारणा यह है कि आर्य लोगों की प्रजाति श्रेष्ठ थी। इस सिद्धांत के मूल में यह विश्वास है कि आर्य लोग यूरोपीय प्रजाति के हैं और एक यूरोपीय प्रजाति होने के नाते यह एशियाई प्रजातियों से तो श्रेष्ठ होगी ही। इसकी श्रेष्ठता की धारणा बना लेने के बाद, अगला तार्किक कदम यह हो जाता है कि श्रेष्ठता के तथ्य को प्रमाणित किया जाए। पाश्चात्य लेखकों को यह पता था कि आर्य प्रजाति की श्रेष्ठता प्रमाणित करने का

सबसे अच्छा आधार है। मूल स्वदेशी प्रजातियों पर आक्रमण और जीत, इसलिए उन्होंने आर्यों द्वारा भारत पर आक्रमण और दासों तथा दस्युओं पर विजय की कहानी को आविष्कृत कर लिया।

चौथी धारणा यह है कि यूरोपीय प्रजातियां गोरी थीं[1] और काली प्रजातियों के विरुद्ध पूर्वग्रह से ग्रस्त थीं। आर्य क्योंकि यूरोपीय प्रजाति के थे, इसलिए यह मान लिया गया है कि उनमें रंग को लेकर तो पूर्वग्रह रहा ही होगा। इस सिद्धांत में रंग सम्बंधी पूर्वग्रह के प्रमाण ढूंढ़ने के लिए भारत में आने वाले आर्यों का उदाहरण ले लिया गया है। यह प्रमाण इसे 'चातुर्वर्ण्य' में मिल गया है। इस संस्था की स्थापना आर्यों ने भारत में आने के बाद की थी, और जिसका आधार इन विद्वानों के अनुसार 'वर्ण' है, जिसका अर्थ वे रंग लगाते हैं।

इनमें से एक भी धारणा की पुष्टि के लिए तथ्य नहीं हैं। आर्य प्रजाति सम्बंधी कथन को ही लें। इस सिद्धांत में इस संभावना का ध्यान नहीं रखा गया है कि शरीर विज्ञान के अर्थ में आर्य प्रजाति एक बात है और भाषाविज्ञान के अर्थ में आर्य प्रजाति बिलकुल अलग बात है, और यह पूरे तौर पर संभव है कि यदि कोई आर्य प्रजाति है तो शरीरविज्ञान के अर्थ में उसका निवास किसी एक स्थान में हो और भाषाविज्ञान के अर्थ में उस आर्य प्रजाति का निवास किसी बिलकुल अलग स्थान में हो। आर्य प्रजाति का सिद्धांत एक साझा भाषा पर आधारित है और इसे साझा इसलिए माना जाता है कि क्योंकि इसमें संरचनागत समानता है। आर्य लोग बाहर से आए और उन्होंने भारत पर आक्रमण किया, इसका प्रमाण नहीं है, और यह भी गलत है कि दास और दस्यु भारत की आदिम जनजातियां हैं।[2]

यह कहना भी अतिशयोक्ति होगी कि चातुर्वर्ण्य संस्था तो आर्यों के रंग सम्बंधी जन्मजात पूर्वग्रह का प्रतिफलन है। यदि रंग ही वर्ण भेद का मूल है तो फिर चातुर्वर्ण्य के चार विभिन्न वर्गों अथवा वर्णों के लिए चार विभिन्न रंग भी होने ही चाहिएं। किसी ने यह नहीं कहा है कि वे चार रंग कौन-से हैं और कौन-सी वे चार अगौर प्रजातियां थीं जिन्हें जोड़कर चातुर्वर्ण्य का निर्माण हुआ था। वस्तुतः यह सिद्धांत केवल दो विरोधी लोगों, आर्यों और दासों से शुरू होता है—जिसमें एक को गोरा माना गया है और दूसरे को काला।

आर्य प्रजाति सिद्धांत के जनक अपना मत स्थापित करने को इतने आतुर हैं कि उनमें यह देखने का भी धैर्य नहीं है कि वे किन अनर्गल बातों में पड़ रहे हैं। वे जो कुछ सिद्ध करना चाहते हैं उसे सिद्ध करने के अभियान पर निकल पड़ते हैं और वेदों से ऐसे साक्ष्यों को लेने में भी संकोच नहीं करते जो उनके विचार में उनके काम के हैं।

प्रो. माइकेल फॉस्टर ने कहीं कहा है कि 'परिकल्पना तो विज्ञान का लवण है।' परिकल्पना के अभाव में सफल अनुसंधान की कोई संभावना नहीं होती। किंतु यह भी

---

1. *दास और दस्यु कौन थे, इस सम्बंध में चर्चा के लिए, देखिए अध्याय 6*
2. *मूल में यूरोपीय प्रजातियां गोरी थीं या काली थीं, इस विषय पर चर्चा के लिए देखिए प्रो. रिप्ले के विचार, पृष्ठ 82*

उतना ही सच है कि जहां एक परिकल्पना विशेष को सिद्ध करने की इच्छा हावी रहती है, परिकल्पना वहां विज्ञान का विष बन जाता है। पाश्चात्य विद्वानों का आर्य प्रजाति वाला सिद्धांत इस बात का अच्छा उदाहरण है कि परिकल्पना किस प्रकार विज्ञान का विष बन सकता है।

आर्य प्रजाति वाला सिद्धांत इतना अनर्गल है कि इसे तो बहुत पहले मृत (प्रचलन से बाहर) हो जाना चाहिए था। किंतु प्रचलन से बाहर होने की बात तो छोड़िए, इसने तो लोगों पर अच्छा-खासा असर जमा रखा है। इस स्थिति की दो व्याख्याएं हैं। पहली व्याख्या इस सिद्धांत को ब्राह्मण विद्वानों से प्राप्त होने वाले समर्थन के रूप में मिलती है। यह अत्यंत विचित्र स्थिति है। हिंदू होने के नाते, आम तौर पर उन्हें तो आर्य सिद्धांत को नापसंद कर देना चाहिए था जो एशियाई प्रजातियों पर यूरोपीय प्रजातियों की श्रेष्ठता का दम भरता है। किंतु ब्राह्मण विद्वान में ऐसी अरुचि तो है ही नहीं, बल्कि वह तो बड़ी तत्परता से इसका जय-जयकार करता है। इसके कारण भी स्पष्ट हैं। ब्राह्मण द्वि-राष्ट्र सिद्धांत में विश्वास करता है। वह आर्य प्रजाति का प्रतिनिधि होने का दावा करता है और वह शेष हिंदुओं को अनार्यों की संतान मानता है। इस सिद्धांत से उसे यूरोपीय प्रजातियों के साथ अपनी नातेदारी प्रमाणित करने और उनकी तरह अपना दंभ और अपनी श्रेष्ठता जताने में मदद मिलती है। उसे इस सिद्धांत का वह हिस्सा विशेष अच्छा लगता है जिसमें आर्य प्रजाति को अनार्य आदिम प्रजातियों का विजेता और आक्रमणकारी बताया जाता है। क्योंकि इससे उसे गैर-ब्राह्मणों पर अपना आधिपत्य बनाए रखने, और उसे उचित ठहराने में भी मदद मिलती है।

आर्य प्रजाति वाला सिद्धांत प्रचलन से बाहर क्यों नहीं हुआ है, इसकी दूसरी व्याख्या यूरोपीय विद्वानों के इस आम आग्रह में मिलती है कि 'वर्ण' शब्द का अर्थ 'रंग' होता है, और अधिकांश ब्राह्मण विद्वान इस मत को स्वीकार करते हैं। सच में, आर्य सिद्धांत का मूलाधार ही यही है। इसमें कोई संदेह नहीं कि जब तक 'वर्ण' की वह व्याख्या स्वीकार की जाती रहेगी तब तक आर्य सिद्धांत जीवित (प्रचलन में) रहेगा। इसलिए आर्य सिद्धांत का यह हिस्सा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और इसकी और भी ढंग से छानबीन होनी चाहिए। इसमें तीन भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों की जांच होनी चाहिए— (1) यूरोपीय प्रजातियां गोरी थीं अथवा काली? (2) क्या भारतीय-आर्य गोरे थे? और (3) वर्ण शब्द का मूल अर्थ क्या है?

प्राचीनतम यूरोपवासियों के प्रश्न पर प्रो. रिप्ले का निश्चित मत है कि वे काले रंग के थे। प्रो. रिप्ले आगे कहते हैं—[1]

> "हमने अभी तक जो छानबीन की है उसके विभिन्न तथ्यों से हमारी यह धारणा बलवती होती है कि प्रचीनतम यूरोपवासी केवल लंबे सिर वाले ही नहीं

---

*1. प्रो. रिप्ले, रेसेज़ ऑव यूरोप, पृष्ठ 466*

थे, काले भी थे। हम दक्षिणी फ्रांस में जीवित क्रोमैगनॉन किस्म की प्रागैतिहासिक प्राचीनता को प्रमाणित कर चुके हैं; और हमने देखा है कि इस किसानों में काले केशों और आंखों का पाया जाना एक असाधारण बात है। और ब्रिटिश आइल्स में (प्रजाति की) किस्मों की तुलना करते हुए हमने देखा कि हर तथ्य से यही बात सामने आती थी कि वेल्स, आयरलैंड और स्कॉटलैंड के पिंगल (केशी) लोग ब्रिटेन की जनसंख्या के सबसे आदिम स्तर के थे। और, गारफागनाना के उस विचित्र स्थल में भी, जहां उत्तरी इटली की प्राचीन लिगूरियन जनसंख्या के जीवित होने का संकेत मिलता है, वहां के लोग भी काले रंग के हैं। इसलिए, चाहे सामान्य सिद्धांतों के आलोक में इनके विषय में कोई निष्कर्ष निकाला जाए अथवा स्थानीय विवरणों के आलोक में, प्रतीत यही होगा मानो यूरोप की यह प्राचीनतम प्रजाति अत्यंत काली ही रही होगी...चमड़ी के रंग के सम्बंध में यह भूमध्यसागरीय थी, न कि स्कैंडिनेवियाई।''

आर्यों में रंग को लेकर क्या कोई पूर्वग्रह था? इसके जवाब के लिए यदि हम वेदों में जाना चाहें, तो ऋग्वेद के निम्नलिखित अंशों का उल्लेख कर सकते हैं–

ऋग्वेद 1, 117.8 में अश्विनी कुमारों का उल्लेख है जिन्होंने श्याव (ऋषि) का विवाह **रुशति** से करवाया। श्याव काले हैं और रुशति गोरी।

ऋग्वेद 1, 117.5 में अश्विनकुमारों द्वारा वंदन (ऋषि) को बचाने का उल्लेख है, जिन्हें स्वर्णिम रंग का बताया गया है।

ऋग्वेद 2, 3.9 में एक आर्य द्वारा देवों का आवाहन है कि वे उसे कतिपय गुणों वाला पुत्र दें, किंतु वह 'स्वर्ण के समान उज्ज्वल रंग वाला होना चाहिए।

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि वैदिक आर्यों में रंग को लेकर कोई पूर्वग्रह नहीं था। और होता भी कैसे? वैदिक आर्य एक रंग के नहीं थे। उनका रंग अलग-अलग था; कुछ ताम्र रंग के थे, कुछ श्वेत, और कुछ श्याम। दशरथ पुत्र राम को श्याम अर्थात काले रंग वाला कहा गया है। एक और आर्य कुल यदुवंश के कृष्ण भी काले हैं। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों के रचयिता दीर्घतमस ऋषि का यह नाम यदि उनके रंग के कारण पड़ा था, तो वह काले ही रहे होंगे। कण्व एक अति प्रतिष्ठित आर्य ऋषि हैं। किंतु, ऋग्वेद 10, 31.11 में दिए वर्णन के अनुसार वह काले रंग के थे।

अब हम तीसरी और अंतिम बात अर्थात वर्ण[1] शब्द के अर्थ पर आते हैं। पहले तो हम यह देखते हैं कि ऋग्वेद में इसका प्रयोग किस अर्थ में हुआ है। ऋग्वेद में वर्ण शब्द[2] का प्रयोग 22 जगह हुआ है। इनमें से लगभग 17 स्थानों पर इसका प्रयोग उषा, अग्नि, सोम आदि देवों के लिए हुआ है और इसका अर्थ कांति, आकृति अथवा रंग निकलता है।

---

*1. देखिए, महाराष्ट्र ज्ञानकोश, खंड 3, पृष्ठ 39-42*

*2. देखिए, परिशिष्ट 4*

यहां इस शब्द का प्रयोग क्योंकि देवों के सम्बंध में हुआ है, इसलिए यह निश्चित करना निरापद नहीं होगा कि मनुष्यों के सम्बंध में इस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में किस अर्थ में हुआ। ऋग्वेद में चार और अधिकतम पांच स्थल ऐसे हैं जहां इस शब्द का प्रयोग मनुष्यों के लिए हुआ है। ये हैं–

(1) 1, 104.2 (2) 1, 179.6 (3) 2, 12.4

(4) 3, 34.5 (5) 9, 71.2

क्या इन अंशों से यह प्रमाणित होता है कि ऋग्वेद में वर्ण शब्द का प्रयोग रंग और स्वाभाविक रंग-रूप के लिए हुआ है?

ऋग्वेद 3, 34.5 में अर्थ की अनिश्चितता है। इसमें कहा गया है कि 'चमकीले रंग को बढ़ाया', जिसके दो अर्थ निकाले जा सकते हैं। इसका एक अर्थ तो यह हो सकता है कि इंद्र ने उषा से उसका प्रकाश विकीर्ण करवाया और इस प्रकार चमकीले रंग को बढ़ाया, अथवा इसका यह भी अर्थ निकल सकता है कि मंत्र रचयिता क्योंकिं श्वेत रंग का था, इसलिए उसके अर्थात चमकीले रंग के लोग बढ़े। यह दूसरा अर्थ इस कारण से अत्यंत असहज होगा कि 'चमकीले' अथवा श्वेत रंग बढ़ना प्रभाव है और उषा का प्रकाशन कारण है।

ऋग्वेद 9, 71.2 में जो असुर वर्ण छोड़ने का उल्लेख है, उसे यदि सूक्त के अन्य छंदों के आलोक में पढ़ा जाए तो उसका अर्थ स्पष्ट नहीं होता है। यह सूक्त सोम पवमान के सम्बंध में है। इसे ध्यान में रखते हुए, असुर वर्ण छोड़ने को तो सोम का वर्णन ही समझा जाएगा। यहां वर्ण शब्द का प्रयोग 'रूप' के लिए हुआ है। छंद के दूसरे भाग में कहा गया है, "वह अपने श्याम अथवा काले आवरण को फेंक देते हैं और चमकीला आवरण धारण करते हैं।" इससे यह स्पष्ट हो जाता है क वर्ण शब्द का प्रयोग अंधकार को इंगित करता है।

ऋग्वेद 1, 179.6 इस संदर्भ में अत्यंत सहायक है। इस छंद में यह स्पष्ट होता है कि ऋषि अगस्त्य ने प्रजा, संतान और शक्ति की प्राप्ति के लिए लोपमुद्रा से सहवास किया और यह कहा गया कि इसके फलस्वरूप दो वर्ण संपन्न हुए। इस छंद से यह स्पष्ट नहीं है कि छंदों में किन दो वर्णों का उल्लेख किय गया है, हालांकि अभिप्राय आर्यों और दासों के उल्लेख से है। इस तरह, इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस छंद में वर्ण का अर्थ वर्ग है, रंग नहीं।

ऋग्वेद 1, 104.2 और ऋग्वेद 2, 12.4 ऐसे दो छंद हैं जिनमें वर्ण शब्द का प्रयोग दास के लिए हुआ है। सवाल है–दासों के सम्बंध में वर्ण शब्द का क्या अर्थ है? क्या इसका सम्बंध दास के रंग और रंग-रूप से है, अथवा यह इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि दास एक अलग वर्ग के सदस्य थे? इन दोनों में कौन-सा अर्थ स्पष्ट है, इस सम्बंध में किसी सकारात्मक निष्कर्ष पर पहुंचने का कोई तरीका नहीं है।

ऋग्वेद का साक्ष्य किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचाता। इस सम्बंध में, यह जानकारी

काफी सहायक सिद्ध हो सकती है कि क्या यह शब्द भारतीय-ईरानियों के साहित्य में आता है, और यदि आता है तो किस अर्थ में।[1]

सुयोगवश, वर्ण शब्द जेंद अवेस्ता में आता है। यहां यह **'वरण'** अथवा **'वरेणा'** के रूप में प्रयुक्त हुआ है। यह विशिष्ट रूप में ''आस्था, धार्मिक सिद्धांत, मत अथवा विश्वास'' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द 'वर' मूल से निकलता है। जिसका अर्थ होता है (किसी में) आस्था रखना, (किसी में) विश्वास करना। गाथाओं में **वरण** अथवा **वरेण** का प्रयोग आस्था, सिद्धांत, मत अथवा विश्वास के अर्थ में लगभग छह बार हुआ है।

यह शब्द गाथा **अहुनावेति–यश्न हा** छंद 2 में आया है, जिसका हिंदी रूपांतर निम्नानुसार है–

> ''मैं कहता हूं अपने कानों से सुनो और सर्वोत्तम सत्य पर विचार करो, अपने प्रबुद्ध मन से आत्मचिंतन करो। प्रत्येक मनुष्य को अपने लिए अपनी आस्था तय करनी चाहिए। महान घटना के समक्ष, प्रत्येक व्यक्ति हमारे सिखाए सत्य के प्रति जाग्रत हो।''

यह गाथा का एक सर्वाधिक प्रसिद्ध पद्य है जिसमें जरतुस्त प्रत्येक व्यक्ति से अलग-अलग यह कहते हैं कि वे अपनी आस्था (अपने दीन) को चुनते समय अपनी तर्क शक्ति और चयन की स्वतंत्रता का उपयोग करें। यहां **'आवरेणाओ विचिथया'** शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिसमें **'आवरेणाओ'** का अर्थ है दीन, विश्वास और **'विचि-थया'** का अर्थ है 'विभेदन का, चयन का, निर्धारण का'।

यह अंश गाथा **अहुनावेति–यश्न हा** 31 छंद 11 में आया है। यहां **'वरेणेंग'** शब्द का प्रयोग हुआ है, जो **'वरेण'** का बहुवचन है, जिसका अर्थ होता है 'विश्वास, दीन।' इस छंद में, जरतुश्त ने मनुष्य की उत्पत्ति का सिद्धांत दिया है। मनुष्य की रचना पूरी हो जाने के बारे में बताने के बाद, अंतिम आधी पंक्ति में जरतुश्त कहते हैं ''ऐच्छिक विश्वास (मनुष्य को) दिए जाते हैं''।

यह अंश गाथा **उष्तावेति–यश्न हा** 45 छंद 1 में आया है। इसमें 'वेरण्य' का प्रयोग हुआ है। इस पद्य क़ी अंतिम पंक्ति में, जरतुश्त कहते हैं 'पापमय विश्वास (अथवा दुष्ट दीन) के कारण दुष्ट लोग दुष्टतापूर्ण भाषा का प्रयोग करते हैं'।

यह गाथा **उष्तावेति–यश्न हा** 45 छंद 2 में आया है। यहां भी इस **'वरेणा'** शब्द का प्रयोग आस्था (दीन), धर्म, विश्वास आदि के स्पष्ट अर्थ में हुआ है। इस छंद में जरतुश्त अपना अच्छा-बुरा सम्बंधी दर्शन दे रहे हैं और मानव मन के दोहरे पक्ष की बात कर रहे हैं। इस छंद में, दोनों मानसिकताएं–अच्छी मानसिकता और बुरी मानसिकता–एक-दूसरे

---

1. *भारतीय-ईरानी साहित्य में 'वर्ण' शब्द के अर्थ की जानकारी के लिए मैं अपने विद्वान मित्र दस्तूर बोडे का आभारी हूं।*

से कह रही हैं ''न तो चिंतन, वचन, बुद्धि, आस्था (अथवा धर्म अथवा मत), वाणी, कर्म, विवेक में, और न ही आत्मा में हम सहमत हैं।''

यह गाथा **स्पेंता मन्यु–यश्न हा** 48 छंद 4 में आया है। यहां इसका प्रयोग 'वरेणेंग' के रूप में हुआ है, जिसका अर्थ धर्म, दीन होता है मूल **'वेरे'** पारसी **'गेरविदान'** अर्थात (किसी में आस्था होना)।

यह गाथा **स्पेंता मैन्यु–यश्न हा** 49 छंद 3 में आई है। यहां इसका प्रयोग **'वरेणी'** के रूप में हुआ है, जिसका अर्थ होता है 'धर्म'। इसी छंद में एक और शब्द आया है **'थाएशाई'** और इसका अर्थ भी धर्म, मत, धार्मिक विधान होता है। इस छंद में इन दोनों ही शब्दों **'वेरणै'** और **'त्केशा'** संयुक्त शब्द **'आहुरत्केशा'** का अर्थ **'आहूट** धर्म' होता है, अैर इस प्रकार **'त्केशा'** का स्पष्ट अर्थ धर्म ही निकलता है। इस शब्द **'त्केशा'** का पहलवी में अनुवाद **'किश'** होता है, जिसका अर्थ है धर्म।

अवेस्ता भाषा में लिखी जरूस्ती स्वच्छता के नियमों की पुस्तक वेंदीदाद में एक शब्द आया है **'आन्यो वरेणा'**। यहां **'आन्यो'** का अर्थ है दूसरा और **'वरेणा'** का अर्थ है धर्म। इस प्रकार, भिन्न धर्म, दीन, विश्वास वाले व्यक्ति को **'आन्यो वरेणा'** कहा जाता है। इसी प्रकार, वेंदीदाद में **'आन्यो त्केशा'** शब्द आया है, और उसका अर्थ भी भिन्न धर्म वाला व्यक्ति होता है।

गाथा में ऐसे अनेक क्रिया रूप आए हैं जो इस मूल से निकले हैं, जैसे **अहुनवैति** गाथा **यश्न हा** 31, छंद 3 है। जरतुश्त कहते हैं 'या ज्वांतो विस्पेंग वौराया'; यहां 'वौराया' क्रिया का अर्थ है (समस्त प्राणियों में) मैं (ईश्वर के प्रति) विश्वास, आस्था जाग्रत कर सकता हूं। **यश्न हा** 28, छंद 5 में एक क्रिया आई है **'वौरोईमैदी'**, जिसका अर्थ होता है 'हम (व्यक्ति को) आस्था दे सकते हैं'। गाथा **वहिश्तैश्तिश; यश्न हा** 53, छंद 9 में यह शब्द **'दुज़ वरेणैश'** के रूप में आया है। यहां **'दुज'** का अर्थ है दुष्ट, झूठा और **'वरेणै'** का अर्थ है विश्वासी। इस तरह, इस शब्द का अर्थ है ''झूठे अथवा दुष्ट धर्म वाला व्यक्ति अथवा एक झूठा अथवा दुष्ट विश्वासी''।

जरतुस्त मत में आस्था के स्वीकरण में, जो यश्न हा 12 में मिलता है, **'फ्रावरणे'** शब्द आता है जिसका अर्थ होता है 'मैं माज़दायाश्नो ज़रथुश्त्रिश (माज़दा पूजक जरतुस्त धर्म) में अपनी आस्था, अपने विश्वास का स्वीकरण करता हूं'। यह जुमला जरतुस्त धर्म की लगभग सभी प्रार्थनाओं में मिलता है। यश्न 12 में जरतुस्त स्वीकरण का एक और रूप मिलता है, 'या-वारेणा'। यहां 'या' सर्वनाम का अर्थ है 'जिस' और 'वारेणा' का अर्थ है आस्था, धर्म। इस प्रकार, इस शब्द का अर्थ है 'वह धर्म जिसे'। इस रूप 'या वारेणा' का प्रयोग यश्न 12 में आस्था अथवा धर्म के स्पष्ट अर्थ में नौ बार हुआ है। यहां भी 'वारेणा' शब्द को 'त्केशा' शब्द के साथ रखा गया है जिसका अर्थ होता है धर्म।

यश्न 16 'जरथुश्ट्रहे वोरणेमचा त्केशेमचा याजमैदे' में एक अत्यंत रोचक उल्लेख मिलता है। यहां जरतुस्त के 'वारेणा' और 'त्केशा' की पूजा होती है। इन अनुरूप और

सम्बंधित शब्दों का प्रयोग से यह बिलकुल स्पष्ट है कि आशय जरतुस्त की आस्था और धर्म से आशय है। उपर्युक्त पंक्ति का अर्थ है 'हम जरतुस्त के दीन (आस्था) और धर्म की पूजा करते हैं'।

जेंद अवेस्ता में उपलब्ध वर्ण शब्द के अर्थ सम्बंधी इस प्रमाण के बाद इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि इस शब्द का मूल अर्थ 'एक दीन विशेष वाला वर्ग' होता था और रंग अथवा रंग-रूप से इसका कोई वास्ता नहीं था।

पाश्चात्य सिद्धांत की मीमांसा से जो निष्कर्ष निकलते हैं। उन्हें संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. वेद तो आर्य जैसी किसी भी प्रजाति से अनभिज्ञ हैं।
2. वेदों में इसका कोई प्रमाण नहीं है कि आर्य प्रजाति ने कभी भारत पर आक्रमण किया था और भारत के मूलनिवासी माने जाने वाले दासों और दस्युओं को अपने अधीन कर लिया था।
3. इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि आर्यों और दासों-दस्युओं के बीच जो अंतर था वह प्रजातिगत था।
4. वेद इस तर्क की पुष्टि नहीं करते कि आर्य लोग दासों और दस्युओं से भिन्न रंग के थे।

अध्याय : पांच

# आर्यों के विरुद्ध आर्य

हमने जितना कह दिया है वह यह स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है कि यह आर्य सम्बंधी सिद्धांत कितना दोषपूर्ण है जिसे पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित किया गया और उनके ब्राह्मण बंधुओं द्वारा इतनी तत्परता से स्वीकार कर लिया गया है। फिर भी सामान्य लोगों पर इस सिद्धांत का इतना जबरदस्त प्रभाव है कि इसके विरोध में कही बातों से शायद इस पर खरोंच ही पड़कर रह जाएगी। इसे तो सांप की तरह मार ही डालना चाहिए। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इस सिद्धांत के खोखलेपन के पूरे तौर पर बेनकाब करने के इरादे से इसका और भी विवेचन किया जाए।

जो लोग इस सिद्धांत का समर्थन करते हैं कि आर्य प्रजाति ने भारत पर आक्रमण किया और दासों तथा दस्युओं पर विजय प्राप्त की थी, वे ऋग्वेद के कुछ स्तोत्रों की अनदेखी कर जाते हैं। इन स्तोत्रों का अत्यधिक महत्त्व है। इन स्तोत्रों का उल्लेख किए बिना, आर्य प्रजाति के भारत में आने और यहां की मूल गैर-आर्य जनजातियों पर विजय प्राप्त करने जैसे किसी सिद्धांत को विकसित करना नितांत व्यर्थ ही होगा। मेरे दिमाग में जो स्तोत्र हैं, मैं उन्हें यहां प्रस्तुत कर रहा हूं–

(1) ऋग्वेद, 6, 33.3–"हे इंद्र, तुमने हमारे दोनों शत्रुओं, दासों और आर्यों को मार दिया है।"

(2) ऋग्वेद, 6, 60.3–"इंद्र और अग्नि–धर्म और न्याय के रक्षक–हमें आहत करने वाले दासों और दस्युओं का हनन करें।"

(3) ऋग्वेद, 7, 81.1–"इंद्र और वरुण ने सुदास के शत्रु दासों और आर्यों को मार डाला और इस प्रकार उनसे सुदास की रक्षा की।"

(4) ऋग्वेद, 8, 24.27–"हे इंद्र, तुम जिसने सिंधु तट पर रहने वाले आर्यों और क्रूर राक्षसों से हमें बचाया, तुम दासों को उनके शस्त्रों से विहीन करो।"

(5) ऋग्वेद, 10, 38.3–"हे अति आदरणीय इंद्र, वे दास और आर्य जो अधर्मी हैं, और जो हमारे शत्रु हैं, उनका दमन करने हेतु हमें अपना आशीर्वाद दो। तुम्हारी सहायता से हम उन्हें मार देंगे।"

(6) ऋग्वेद, 10, 86.19–"हे मामेयु, जो तुमसे प्रार्थना करता है, तुम उसे समस्त शक्तियां दो। तुम्हारी सहायता से हम अपने आर्य और दस्यु शत्रुओं का नाश करेंगे।"

जो भी व्यक्ति इन स्तोत्रों को पढ़ेगा, उनके कथ्य पर शांत भाव से ध्यान देगा और उन्हें पाश्चात्य सिद्धांत के विरुद्ध समझेगा, वह उन्हें पढ़कर स्तब्ध रह जाएगा। यदि उन मंत्रों के रचयिता आर्य थे, तो इन मंत्रों से यह विचार संप्रेषित होता है कि आर्यों के दो भिन्न समुदाय थे जो केवल भिन्न ही नहीं थे। बल्कि एक-दूसरे के विरोधी और शत्रु भी थे। दो आर्यों का होना मात्र अनुमान अथवा व्याख्या की बात नहीं है। यह एक तथ्य है, जिसके समर्थन में अनेकानेक प्रमाण उपलब्ध हैं।

## II

ऐसा पहला प्रमाण, जिसकी ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है, वह भेदभाव है जो विभिन्न वेदों की पवित्रता को मानने के सम्बंध में एक लंबे समय से विद्यमान था। वेदों के सभी अध्येता यह जानते हैं कि वास्तव में वेद दो हैं–(1) ऋग्वेद, और (2) अथर्ववेद। सामवेद और यजुर्वेद तो ऋग्वेद के ही विभिन्न रूप हैं। वेदों के सभी अध्येता जानते हैं कि एक लंबे समय तक ब्राह्मण लोग अथर्ववेद को ऋग्वेद जैसा पवित्र नहीं मानते थे। ऐसा अंतर क्यों रखा गया? ऋग्वेद को पवित्र क्यों माना गया? अथर्ववेद को असंस्कृत क्यों माना गया? मेरे अनुसार इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि ये आर्यों की दो भिन्न प्रजातियां थीं; और जब दोनों में एका हो गया तब जाकर अथर्ववेद को ऋग्वेद के समान माना गया।

इसके अतिरिक्त, समग्र ब्राह्मणी साहित्य में दो भिन्न विचार-धाराओं के विद्यमान होने के प्रमाण बिखरे पड़े हैं, जो विशेषकर सृष्टि रचना के सम्बंध में हैं। इनसे भी आर्यों की दो भिन्न प्रजातियों के अस्तित्व का संकेत मिलता है। इनमें से एक का उल्लेख हम अध्याय दो में कर चुके हैं। अब दूसरे प्रकार की विचारधारा की ओर ध्यान आकर्षित करना शेष रह जाता है।

प्रारंभ में हम वेदों को ही लेते हैं। तैत्तिरीय संहिता में निम्नलिखित विचारधारा मिलती है–

तैत्तिरीय संहिता, 6, 5.6.1 (म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 26 से उद्धृत अंश का अनुवाद)–"पुत्रों की प्राप्ति की इच्छुक अदिति ने देवताओं और साध्यों हेतु ब्रह्मोदन आहुति तैयार की। उन्होंने अदिति को उसका शेषांश दिया, जिसे उसने खा लिया। उसे गर्भाधान हुआ और उसने चार आदित्यों को जन्म दिया। अदिति ने दूसरा ब्रह्मोदन तैयार किया। उसने सोचा कि आहुति के शेषांश से मुझे ये उत्पन्न हुए हैं। यदि मैं इसे पहले खा लूं तो और भी पुत्र उत्पन्न होंगे। उसने इसे पहले खा लिया; उसे गर्भाधान हुआ; उससे एक अपूर्ण अंडा बना। उसने तीसरी आहुति आदित्यों के लिए तैयार की, और यह सूत्र दोहराया कि यह धार्मिक उधम मेरे आनंद हेतु किया गया। आदित्यों ने कहा, "हम एक वरदान का चयन करते हैं। इससे जो भी उत्पन्न हो वह केवल हमारा हो; जो समृद्ध है उसकी कोई भी संतान हमारे लिए आनंद का स्रोत हो।" इसके फलस्वरूप आदित्य विवस्वत का जन्म हुआ। यह उसकी संतान अर्थात मनुष्य हैं। उनमें केवल वही समृद्ध होता है जो आहुति देता है, और वह देवताओं के लिए आनंद का कारण होता है।"

अब ब्राह्मण ग्रंथों की बात करते हैं। शतपथ ब्राह्मण में सृष्टि (विश्वोत्पत्ति) की कथाएं इस प्रकार दी गई हैं–

शतपथ ब्राह्मण, 1, 8.1.1 (म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 181-184 से उद्धृत अंश का अनुवाद)–"सुबह वे मनु के लिए प्रक्षालन हेतु जल लेकर आए जैसी कि मनुष्यों की आदत है। जब मनु इस प्रकार प्रक्षालन कर रहे थे तो उनके हाथों में एक मछली आ गई। मछली ने उनसे कहा कि मुझे बचा लो, मैं तुम्हें बचाऊंगी। मनु ने उससे पूछा कि वह उन्हें किससे बचाएगी? मछली ने उत्तर दिया, "एक बाढ़ इन सभी प्राणियों को बहा ले जाएगी; मैं तुम्हें इससे बचाऊंगी।" मनु ने पूछा, "तुम मुझे कैसे बचाओगी?" मछली ने कहा, "जब तक हम छोटी रहती हैं, हम अत्यधिक खतरे में रहती हैं, क्योंकि मछली ही मछली को खा जाती है; तुम पहले मुझे एक पात्र में बचाकर रखोगे। जब (मैं बड़ी हो जाऊंगी और) पात्र मेरे लिए छोटा पड़ जाएगा, तब तुम मुझे सागर में ले जाना। तब मैं खतरे से बाहर हो जाऊंगी।" वह तुरंत बहुत बड़ी मछली बन गई। उसने कहा, "अमुक-अमुक वर्ष में बाढ़ आएगी; जब बाढ़ का पानी ऊपर चढ़े तो तुम नौका में सवार हो जाना, और मैं तुम्हें इससे बचाऊंगी।" इस प्रकार मछली को बचाकर मनु उसे सागर में ले गए। और मछली के बताए वर्ष में ही मनु ने एक नौका बनाई और उसका सहारा लिया। जब बाढ़ का पानी चढ़ा तो मनु नौका में सवार हो गए। मछली तैरती हुई उनकी ओर आई। उन्होंने नौका की रस्सी को मछली के सींग में बांध दिया। इस माध्यम से उसने उस उत्तरी पर्वत को पार किया। मछली ने कहा, "मैंने तुम्हे बचाया है; नौका को किसी वृक्ष से बांध दो। किंतु जब तक तुम पर्वत पर हो, ऐसा न हो कि पानी तुम्हें काट दे, इसलिए जैसे-जैसे पानी (का स्तर) घटे, वैसे-वैसे तुम नीचे आना।" मनु ने ऐसा ही किया। इसीलिए उत्तरी पर्वत का नाम 'मनु का उतरना' पड़ा। अब बाढ़ इन सभी प्राणियों को बहाकर ले जा चुकी थी, इसलिए अकेले मनु वहां रह गए। संतान की इच्छा से मनु ने पूजा और श्रमसाध्य धार्मिक संस्कार करने शुरू कर दिए। उन्होंने पाक की आहुति भी दी। उन्होंने घी, दूध, छाछ और दही की आहुति जल में दी। तब एक वर्ष में उससे एक स्त्री उत्पन्न हुई। वह चिकनी थी। घी उसके पैरों से चिपका था। मित्र और वरुण उसे मिले। उन्होंने उससे कहा, "तुम कौन हो?" "मनु की पुत्री" (उसने उत्तर दिया)। "(यह) कहो (कि तुम) हमारी (हो)," (उन्होंने कहा)। उसने कहा, "नहीं, मैं उसकी हूं, जिसने मुझे उत्पन्न किया।" उन्होंने उसमें हिस्सेदारी चाही। उसने इसका वचन दिया, अथवा नहीं दिया, किंतु वह आगे निकल गई। वह मनु के पास आई। मनु ने उससे कहा, "तुम कौन हो?" उसने उत्तर दिया, "तुम्हारी पुत्री।" "तुम मेरी पुत्री कैसे हो?" "तुमने मुझे उत्पन्न किया है," वह बोली। "(तुमने मुझे) उन आहुतियों से, घी, दूध, छाछ और दही से (उत्पन्न किया है), जो तुमने जल में डाली थीं। मैं एक आशीष हूं। मुझे आहुति में प्रयोग करो। यदि तुम मुझे आहुति में प्रयोग करोगे तो तुम्हारे पास बहुतायत में संतानें और मवेशी होंगे। मेरे माध्यम से तुम जो भी आशीष मांगोगे, वह तुम्हें मिलेगी।" मनु ने (तदनुसार) उसका प्रयोग आहुति (यज्ञ) के मध्य में करना प्रारंभ

किया। उसके साथ वह संतान की इच्छा से पूजा करते और कठोर धार्मिक संस्कार करते रहे। उससे उन्होंने जो भी आशीषें मांगीं, वे सभी उन्हें मिलीं। यही मूल रूप में इड़ा है। जो कोई भी, यह जानते हुए, इड़ा के साथ रहता है, उसे यही संतान प्राप्त होती है, जो मनु को प्राप्त हुई थी। वह उससे जो भी आशीष उससे मांगता है, वह उसे मिलती है।''

(2) शतपथ ब्राह्मण, 6, 1.2.11 (म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 30 से उद्धृत अंश का अनुवाद)–''उन लोकों की रचना कर लेने के उपरांत, प्रजापति को पृथ्वी पर धारण किया गया। उसके लिए इन औषधियों को भोजनार्थ पकाया गया। उस (भोजन) को उन्होंने खाया। वह गर्भवान हुए। अपनी ऊपरी प्राणवायु से देवताओं को रचा और निम्न प्राणवायु से मर्त्य संतति को। उन्होंने जैसे भी रचा, वैसे रचा। किंतु प्रजापति ने इस सबको रचा, जो कुछ भी अस्तित्वमान है।''

(3) शतपथ ब्राह्मण, 7, 5.2.6 (म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 24 से उद्धृत अंश का अनुवाद)–''प्रजापति पहले यह (विश्व) थे, केवल एक थे। उन्होंने इच्छा की, 'मैं भोजन को उत्पन्न करूं और प्रसारित होऊं।' अपने श्वास से उन्होंने पशुओं को बनाया, अपनी आत्मा से एक मनुष्य को, अपनी आंख से एक घोड़े को, अपने श्वास से एक सांड को, अपने कान से एक भेड़ को, अपनी वाणी से एक बकरे को बनाया। पशुओं को क्योंकि उन्होंने अपने श्वास से बनाया, इसलिए मनुष्य कहते हैं, 'श्वास तो पशु हैं।' आत्मा ही पहला श्वास है। क्योंकि उन्होंने मनुष्य का अपनी 'आत्मा' से बनाया, इसलिए कहते हैं 'मनुष्य सबसे पहला पशु है, और सबसे शक्तिशाली भी।' आत्मा समस्त श्वास हैं; क्योंकि समस्त श्वास आत्मा पर निर्भर करते हैं। क्योंकि उन्होंने मनुष्य को अपनी आत्मा से बनाया, इसलिए कहते हैं, 'मनुष्य समस्त पशु हैं', क्योंकि ये सब मनुष्य के हैं।

(4) शतपथ ब्राह्मण, 10, 1.3.1 (म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 31 से उद्धृत अंश का अनुवाद)–''प्रजापति ने प्राणियों को उत्पन्न किया। अपनी ऊपरी प्राण वायु से उन्होंने देवताओं को उत्पन्न किया; अपनी निम्न प्राण वायु से मर्त्य जीवों को। बाद में उसने प्राणियों का भक्षण करने वाली मृत्यु को बनाया।''

(5) शतपथ ब्राह्मण, 14, 4.2.1 (म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 25 से उद्धृत अंश का अनुवाद)–''यह विश्व पहले केवल आत्मा था जो पुरुष के रूप में था। निकट से देखने पर, उसे बस वह स्वयं (आत्मा) दिखाई दिया। पहले उसने कहा, 'यह मैं हूं।' फिर वह एक हो गया और उसका नाम हो गया मैं।' इसलिए आज भी जब किसी मनुष्य को पुकारा जाता है, तो वह पहले यही कहता है, 'यह मैं हूं।' और फिर वह अपना दूसरा नाम बताता है। क्योंकि उसने इससे पहले (पूर्व) समस्त पापों को जला डाला (ओषल), इसलिए उसे 'पुरुष' कहा जाता है जो मनुष्य यह जानता है वह उस व्यक्ति को जला देता है जो उससे पहले होने की कामना करता है। वह भयभीत हुआ। इसलिए मनुष्य एकाकी होने पर डरता है। इस (जीव) ने सोचा कि 'मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है; मैं किससे भयभीत हूं?' तब उसका भय जाता रहा। क्योंकि वह डरता भी क्यों? लोग दूसरे व्यक्ति से भय खाते हैं।

उसने सुख का आनंद नहीं लिया। इसलिए अकेला होने पर कोई व्यक्ति सुखी नहीं होता। उसने दूसरे की इच्छा की। आलिंगनबद्ध अवस्था में वह नर भी था और नारी भी। उसने इसे दो भागों में विभक्त कर दिया। उससे पति और पत्नी की उत्पत्ति हुई। इसीलिए याज्ञवल्क्य ने कहा है कि ''इसका स्व एक फटे मटर के आधे के समान है।'' इसलिए निर्वात को नारी ने भरा। उसने उस (नारी) से सहवास किया। उनसे मनुष्यों की उत्पत्ति हुई। उस (नारी) ने सोचा, 'अपने आप में से मुझे उत्पन्न करने के बाद, उसने मुझसे सहवास क्यों किया? मैं विलुप्त हो जाती हूं!' वह गाय बन गई, और वह सांड; और उसने उसके साथ सहवास किया। उनसे गाएं उत्पन्न हुईं। वह घोड़ी बन गई, और वह घोड़ा। उसने उसके साथ सहवास किया। वह गधी बन गई, और वह गधा। उसने उसके साथ सहवास किया। उनसे अविभक्त खुरों वाले पशु उत्पन्न हुए। वह बकरी बन गई, और वह बकरा; वह भेड़ बन गई, और वह मेंढ़ा। उसने उसके साथ सहवास किया। उनसे बकरे-बकरियां और भेंड़ें उत्पन्न हुईं। इस प्रकार सभी जीवों के, (बड़े से लेकर) चीटियों तक के जोड़े उत्पन्न हुए।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में इस प्रकार लिखा है—

तैत्तिरीय ब्राह्मण, 2, 2.9.1 (म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 28-29 से उद्धृत अंश का अनुवाद)—''पहले यह (विश्व) कुछ नहीं था। न आकाश था, न धरती, न वायु। इसने संकल्प किया 'मेरा अस्तित्व हो।' यह तेजमय हो गया। उस तेज से धुएं की उत्पत्ति हुई। वह फिर तेजमय हुआ। उस तेज से अग्नि उत्पन्न हुई। यह फिर तेजमय हुआ। उस तेज से प्रकाश उत्पन्न हुआ। यह फिर तेजमय हुआ। उस तेज से लौ उत्पन्न हुई। यह फिर तेजमय हुआ। इस तेज से किरणें उत्पन्न हुईं। यह फिर तेजमय हुआ। इस तेज से कौंध उत्पन्न हुईं। यह फिर तेजमय हुआ। यह एक मेघ के समान घनीभूत हो गया। यह फटा। इससे सागर बना। इसलिए मनुष्य सागर का जल नहीं पीते। क्योंकि वे इसे उत्पत्ति का स्थान मानते हैं। इसीलिए जब कोई जीव उत्पन्न होता है तो उससे पहले पानी बाहर आता है। उसके बाद दसहोत्रि की रचना हुई। प्रजापति ही दसहोत्रि है। जो मनुष्य तप (अथवा तेज) की शक्ति को जानकर उसका अभ्यास करता है, वह सफल होता है। तब यह जल था, तरल था। प्रजापति ने रोकर कहा, ''किस उद्देश्य से मैंने जन्म लिया, यदि मैंने इससे जन्म लिया जिसका कोई आधार नहीं है।'' जो (अश्रु) जल में गिरा उससे धरती बन गई। जो उसने ऊपर की ओर पोंछ दिए, उससे आकाश बन गया। उसके रोने (अरोदित) के कारण इन दो का नाम **'रोदसि'** है। जो मनुष्य इसे जानता है उसके घर में वे नहीं रोते। यह जन्म था इन लोकों का। जो इन लोकों के जन्म के विषय में जानता है, उसे इन लोकों में कोई कष्ट नहीं होता। उसने इस (पृथ्वी) को एक आधार के रूप में प्राप्त किया। इसे आधार रूप में प्राप्त करने के उपरांत उसने इच्छा की, ''मेरा विस्तार हो।'' उसने तप किया। वह गर्भवान हुआ। अपने उदर से उसके असुरों को उत्पन्न किया। उन्हें उसने मिट्टी के पात्र में भोजन दिया। उसने अपने उस शरीर को त्याग दिया। अंधकार हो गया। उसने इच्छा की,

"मेरा विस्तार हो।" उसने तप किया। वह गर्भवान हुआ। उसने अपने जननांग से प्राणियों (प्रजा) को उत्पन्न किया। इसलिए उनकी संख्या सबसे अधिक है, क्योंकि उसने उन्हें अपने जननांग से उत्पन्न किया। उन्हें उसने एक लकड़ी के पात्र में दूध दिया। उसने अपने उस शरीर को त्याग दिया। चांदनी हो गई। उसने इच्छा की, "मेरा विस्तार हो।" उसने तप किया। वह गर्भवान हुआ। उसने अपनी कांख से ऋतुओं को उत्पन्न किया। उन्हें उसने चांदी के पात्र में मक्खन दिया। उसने अपना वह शरीर त्याग दिया। यह दिन-रात का संधिकाल हो गया। उसने इच्छा की, "मेरा विस्तार हो।" उसने तप किया। वह गर्भवान हुआ। उसने अपने मुख से देवताओं को उत्पन्न किया। उन्हें उसने सोने के पात्र में सोम दिया। उसने अपने इस शरीर को त्याग दिया। यह दिन हो गया। ये प्रजापति की रचनाएं हैं। जो इसे जानता है, वह संतान उत्पन्न करता है। "हमें दिन (दिवा) प्राप्त हुआ है"—इस कथन से देवताओं के देवत्व की अभिव्यक्ति होती है। जो इस देवत्व को जानता है, वह देवताओं को प्राप्त करता है। यह जन्म है दिवसों और रात्रियों का। जो दिवसों और रात्रियों के जन्म को जानता है उसे दिनों और रातों में कोई कष्ट नहीं होता। मन (अथवा आत्मा, मानस) की उत्पत्ति शून्य से हुई। मन से प्रजापति की उत्पत्ति हुई। प्रजापति से संतान की उत्पत्ति हुई। जो कुछ भी विद्यमान है, उसका आधार मन है। इसी को ब्रह्मा ने **स्वोवास्य** कहा है। जो मनुष्य इसे जानता है, उसके लिए उषा अधिकाधिक चमकीली होती है; उसकी अनेक संतानें होती हैं, उसके पास अनेक मवेशी होते हैं; वह **परमेष्ठि** पर प्राप्त कर लेता है।"

(3) तैत्तिरीय ब्राह्मण, 2, 3.8.1 (म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 23 से उद्धृत अंश का अनुवाद)—"प्रजापति ने इच्छा की, 'मेरा विस्तार हो।' उसने तप किया। वह गर्भवान हुआ। वह पीत-ताम्रवर्ण का हो गया। इसलिए एक गर्भवती स्त्री पीली होने पर ताम्रवर्ण की हो जाती है। भ्रूण धारण कर वह थकित हो गया। थकित होकर वह श्याम-ताम्र वर्ण का हो गया। इसलिए, थकित मनुष्य श्याम-ताम्र वर्ण का हो जाता है। उसका श्वास प्राणवान हो गया। उस श्वास (असु) से उसने असुरों को उत्पन्न किया। इसी में असुरों का असुर स्वभाव निहित है। जो असुरों के इस असुर स्वभाव को जानता है उसे श्वास मिलता है। उसे श्वास त्यागता नहीं है। असुरों को उत्पन्न करने के पश्चात उसने स्वयं को पिता माना। उसके उपरांत उसने पिताओं (पितृ) को उत्पन्न किया। इसमें पिताओं का पितृत्व निहित है। जो इस तरह पिताओं के पितृत्व को जानता है वह स्वयं पिता समान हो जाता है; पिता उसकी आहुति का सहारा लेते हैं। पिताओं को उत्पन्न करने के पश्चात उसने मनन किया। उसके उपरांत उसने मनुष्यों को उत्पन्न किया। इसमें मनुष्यों का मनुष्यत्व निहित है। जो मनुष्यों के मनुष्यत्व को जानता है, वह बुद्धिमान हो जाता है। मन उसका त्याग नहीं करता। जब वह मनुष्यों की रचना कर रहा था, स्वर्ग में दिन प्रंकट हुआ। उसके उपरांत उसने देवताओं को बनाया। इसमें देवताओं का देवत्व निहित है। जो इस प्रकार देवताओं के देवत्व को जानता है, उसके लिए स्वर्ग में दिन प्रकट होता है। ये चार धाराएं हैं—देवता, मनुष्य, पितृ और असुर। इन सबसे जल तो वायु के समान है।"

(4) तैत्तिरीय ब्राह्मण, 3, 2.3.9 (म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 21 से उद्धृत अंश का अनुवाद)—"इस शूद्र की उत्पत्ति शून्य से हुई है।"

तैत्तिरीय अरण्यक में सृष्टि की उत्पत्ति की व्याख्या निम्नानुसार की गई है—

तैत्तिरीय अरण्यक, 1, 12.3.1 (म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 52 से उद्धृत अंश का अनुवाद)—"यह जल है, तरल (है)। अकेले प्रजापति का जन्म एक कमल पत्र से हुआ। उसके मन में यह इच्छा उठी, 'मैं इसकी रचना करूं।' इसलिए मनुष्य अपने मन में जो ध्येय बनाता है, उसकी घोषणा वह वाणी से करता है, और कर्म द्वारा उसे कार्य रूप में परिणत करता है। इसलिए यह कहा गया है, 'परमेश्वर के मन में सबसे पहले सृष्टि रचना की इच्छा उत्पन्न हुई। वही सबसे पहले मन में सृष्टि का बीज बनी। विद्वानों ने बुद्धि से हृदय में विचार किया और असत् में सत् के कारण को खोजा।' (ऋग्वेद, 10, 129.4)। इस प्रकार जो मनुष्य जानता है उसे उसकी इच्छा का पता चल जाता है। उसने तप किया। तप करने के पश्चात उसने अपने शरीर को झकझोरा। उसके मांस से अरुण, केतु और वातरसन (नामक) ऋषियों की उत्पत्ति हुई। नखों से **वैखानस** और केशों से **वालाखिल्य** का जन्म हुआ। उसके शरीर के द्रव्य से एक कछुआ बना जिसने जल में विचरण किया। उसने उससे कहा, 'तुम मेरी त्वचा, मेरे मांस से उत्पन्न हुए हो।' 'नहीं,' कछुए ने उत्तर दिया, 'मैं यहां पहले से था।' उसके 'पहले' (पूर्वम) रहे होने में मनुष्य (पुरुष) का मनुष्य निहित है। एक सहस्र सिरों, एक सहस्र आंखों, एक सहस्र चरणों वाला पुरुष बन कर वह उत्पन्न हुआ। (ऋग्वेद, 10, 90.1)। प्रजापति ने उससे कहा, 'तुम्हारा जन्म मुझसे पहले हुआ; पहले तुम इसे करो।' उसने अपनी दोनों हथेलियों में पानी लिया और इस पाठ को दोहराते हुए इसे पूर्व दिशा में रखा, 'ऐसा हो, हे सूर्य।' उससे सूर्य निकला। वह पूर्व दिशा हुई। फिर अरुण केतु ने जल को दक्षिण में रखकर कहा, 'ऐसा हो, हे अग्नि।' उसे अग्नि की उत्पत्ति हुई। यह दक्षिण दिशा हुई। फिर अरुण केतु ने जल का यह कहते हुए पश्चिम में रखा, 'ऐसा हो, हे वायु।' उसे वायु की उत्पत्ति हुई। वह पश्चिम दिशा हुई। फिर अरुण केतु ने जल को उत्तर में रखकर कहा, 'ऐसा हो, हे इंद्र।" तब इंद्र का जन्म हुआ। यह उत्तर दिशा होती है। तब अरुण केतु ने जल को मध्य में रखते हुए कहा, 'ऐसा हो, हे पूषा।' उससे पूषा का जन्म हुआ। वह यही दिशा है। अरुण केतु ने जल को ऊपर रखकर कहा, 'ऐसा हो, हे देवो।' उससे देवताओं, मनुष्यों, पितरों, गंधर्वों और अप्सराओं का जन्म हुआ। वह ऊपरी दिशा है। जो बूंदे गिर गईं, उनसे असुरों, राक्षसों और पिशाचों का जन्म हुआ। इसलिए नष्ट हो गए क्योंकि उनकी उत्पत्ति बूंदों से हुई थी। इसलिए यह कहा गया है—'जब महाजल गर्भवान हुआ, उसमें बुद्धि थी, और उससे स्वयंभू की उत्पत्ति हुई, तो उनसे इन सृष्टियों को रचा गया। इन सब की रचना जल से हुई इसलिए यह सब ब्रह्म स्वयंभू है।' यह शिथिल था, और इसलिए अस्थिर था। प्रजापति वह था। स्वयं को स्वयं से उत्पन्न कर, उसने उसमें प्रवेश किया। इसलिए यह स्तोत्र कहा गया है—'विश्व की रचना करके, विद्यमान की रचना करके, दिग-दिगंत की रचना करके, सबसे पहले उत्पन्न हुए प्रजापति आत्मसात हो गए।' "

# VI

महाभारत का इस विषय में अपना अलग ही योगदान है। इसमें मनु द्वारा सृष्टि रचना किए जाने के सिद्धांत को प्रतिपादित किया गया है।

वनपर्व में लिखा है (म्युर, खंड 1, पृष्ठ 199-201 से उद्धृत अंश का अनुवाद)—

''एक महान ऋषि थे, मनु—विवस्वत के पुत्र, वैभवशाली, प्रजापति के समान तेजस्वी। ऊर्जा, श्री और तपोबल में वह अपने पिता और पितामह दोनों से बढ़कर थे। विशाल बद्री में हाथ उठाकर, एक पैर पर खड़े होकर, उन्होंने घोर तप किया। अपना सिर झुकाकर निर्निमेष, दस हजार वर्षों तक वह यह कठोर तप करते रहे। एक बार जब उन्होंने जटा बढ़ाई, टपकते लत्तों में इस प्रकार लीन थे, तो चिरणी के तट पर एक मत्स्य उनके पास आया और बोला, 'प्रभो, मैं एक छोटा मत्स्य हूं; मैं शक्तिशाली मत्स्यों से भयभीत हूं, आप उनसे मेरी रक्षा करें। क्योंकि शक्तिशाली मछलियां अशक्त मछलियों को खा जाती हैं। अनादि काल से हमारे भरण-भोषण का यही साधन है। आशंका की इस बाढ़ से मेरी रक्षा करें, जिसमें मैं डूब रहा हूं। मैं इस कर्म का प्रतिफल दूंगा।' यह सुनकर मनु का हृदय दया से भर गया, उन्होंने मछली को अपने हाथ में लिया और उसे पानी में लाकर ज्योत्सना समान धवल पात्र में डाल दिया। इस पात्र में, बढ़िया देखभाल होने से, वह मत्स्य बड़ा हो गया; क्योंकि मनु उसे पुत्र समान मानते थे। एक लंबे समय के बाद वह मत्स्य इतना बड़ा हो गया कि वह पात्र उसके लिए छोटा पड़ गया। तब, मनु को देखकर उसने फिर कहा, 'मुझे कहीं और रखें जिससे मैं बढ़ सकूं।' तब मनु ने उसे पात्र में से निकालकर एक बड़े से ताल में डाल दिया। वहां कई वर्षों तक उसका बढ़ना जारी रहा। यद्यपि वह ताल दो योजन लंबा और एक योजन चौड़ा था, उस कमल-नयन मछली के लिए इसमें चलने-फिरने लायक जगह नहीं थी। उसने मनु से फिर कहा, 'मुझे सागर सम्राट की प्रिय रानी गंगा में ले चलें; उसमें ही मैं रहूंगी; या फिर आपको जो अच्छा लगे वही करें, क्योंकि मैं आपके ही अधीन हूं। क्योंकि आपकी कृपा से ही मैं इतना बड़ा हो गया हूं।' मनु ने उसे ले जाकर गंगा में डाल दिया। कुछ समय तक वह वहां बढ़ता रहा, तो उसने मनु से फिर कहा, 'मैं इतना विशाल हूं कि गंगा में घूम-फिर नहीं सकता; कृपा करके तुरंत मुझे सागर में डाल दें।' भारी होने पर भी, मनु उसे आसानी से ले गए, उसका स्पर्श और उसकी गंध सुखद थी। जब मनु ने उसे सागर में डाल दिया, तो उसने मनु से कहा, 'महाप्रभो, आपने हर प्रकार से मेरी रक्षा की है; अब आप मुझसे सुनें कि समय आने पर आपको क्या करना है। शीघ्र ही ये सभी चल-अचल वस्तुएं नष्ट हो जाएंगी। लोकों के शुद्धिकरण का समय अब आ पहुंचा है। इसलिए मैं आपको आपके भले की बात बता रहा हूं। इस विश्व के लिए, चल-अचल के लिए भयंकर काल आ गया है। अपने लिए

एक मजबूत नौका बनाएं, उसमें एक रस्सी लगाएं; सात ऋषियों सहित इसमें सवार हो जाएं, और ब्राह्मणों द्वारा प्राचीन काल से बताई गईं सभी बीजों को सावधानीपूर्वक इसमें जमा करें। जब नौका में सवार हो तो मेरी खोज करें। मुझे आप मेरे सींग से पहचान सकेंगे। आप ऐसा ही करें; मैं आपको प्रणाम करके विदा लेता हूं। इस विशाल जलराशि को मेरे बिना पार नहीं किया जा सकता। मेरे शब्दों पर अविश्वास न करें।' मनु ने उत्तर दिया, 'मैं वैसा ही करूंगा जैसा तुमने कहा है।' एक-दूसरे को विदा कह, वे अपनी-अपनी राह चले गए। तब मनु, कहे अनुसार, अपने साथ बीज लेकर सुंदर नौका में सवार होकर ठाठें मारते सागर में निकले, तब उन्हें उस मछली का विचार आया, और वह मत्स्य उनकी इच्छा को जान पूरी गति से वहां आ पहुंचा, और अपने सींग द्वारा पहचाना गया। जब मनु ने उस सींगदार पर्वताकार मत्स्य को देखा तो नौका की रस्सी को उसके सींग से बांध दिया। मत्स्य ने नौका को बहुत तेजी से खींचा और उसे खारे सागर के पार ले चला, जिसकी लहरें जैसे नृत्य कर रही थीं और जिसका जल गर्जन कर रहा था। तूफानों के थपेड़े खाती, नौका एक मदमस्त और चकराती स्त्री की तरह चक्कर खाती रही। न तो धरा दिखाई देती थी; जल, वायु और आकाश के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। इस भ्रमित विश्व में सात ऋषि, मनु और मछली ही दिखाई देते थे। इस तरह, कई वर्षों तक वह मत्स्य नौका को जल के ऊपर अनथक खींचता रहा; और हिमवत की सबसे ऊंची चोटी पर ले आया। तब उसने, मुस्कराते हुए, उन ऋषियों से कहा, 'नौका को अविलंब इस चोटी से बांध दो।' और उन्होंने ऐसा ही किया। और हिमवत के उस सर्वोच्च शिखर को आज भी 'नौबंधन' (नौका को बांधना) कहा जाता है। तब उस मित्रवत मत्स्य (अथवा अनिमिष देव) ने ऋषियों से कहा, 'मैं प्रजापति ब्रह्मा हूं, जिससे ऊंचा कोई नहीं है। एक मत्स्य के रूप में मैंने तुम्हें इस महा विपत्ति से बचाया है। मनु समस्त जीवों, देवों, असुरों, मनुष्यों, समस्त लोकों, और समस्त चल-अचल वस्तुओं की रचना करेंगे। मेरी कृपा और कठोर तप के बल पर उन्हें उनके सृजन हेतु पूर्ण अंतर्दृष्टि प्राप्त होगी, और वह हैरान नहीं होंगे।' यह कहकर वह मत्स्य एक क्षण में गायव हो गया। मनु ने समस्त प्राणियों के सृजन की इच्छा से, और अपने कार्य को संपन्न करने के लिए कठोर तप किया, और फिर समस्त जीवों की रचना में लग गए।''

महाभारत के आदि पर्व में सृष्टि की कुछ अलग ही कहानी बताई गई है। इसमें लिखा है (म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 122-126 से उद्धृत अंश का अनुवाद)—

''वैशम्पायन ने कहा—स्वयंभू को प्रणाम करके मैं तुम्हें देवताओं तथा अन्य प्राणियों के सृजन और विनाश का सही-सही विवरण देता हूं। छह महान ऋषि

ब्रह्मा के मानस पुत्रों के रूप में ख्यात हैं—मारीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह और कृतु। मारीचि के पुत्र कश्यप थे; और कश्यप से इन जीवों की उत्पत्ति हुई। दक्ष के तेरह पुत्रियों हुईं—अदिति, दिति, दनु, कला, दनयु, सिमुक, क्रोधा, प्रधा, विस्वा, विनता, कपिला और मुनि। कद्रु भी इनमें थी। इन कन्याओं के असंख्य वीर पुत्र और पौत्र हुए।

गौरवशाली, शांत और तपी दक्ष ऋषि की उत्पत्ति ब्रह्मा के दाहिने अंगूठे से हुई। बाएं अंगूठे से उन महान ऋषि की पत्नी की उत्पत्ति हुई, जिसने पचास पुत्रियों को जन्म दिया। इनमें से दस उसने धर्म को दे दीं, सत्ताईस इंदु (सोम) को, और दिव्य व्यवस्था के अनुसार तेईस कश्यप को दे दीं। पितामह के वंशज और प्राणियों के देव और स्वामी मनु उसके (यह स्पष्ट नहीं है कि किसके) पुत्र थे। आठ वसु उनके पुत्र थे, जिनके विषय में मैं विस्तार से बताऊंगा। ब्रह्मा के दाहिने वक्ष को विभक्त कर, गौरवशाली धर्म ने मानव रूप में जन्म लिया, और सभी लोगों को सुख दिया। उसके तीन ख्यात पुत्र थे—साम, काम और हर्ष। ये तीनों समस्त प्राणियों को आनंद देने वाले हैं और अपने बल से संसार को अवलंब देते हैं...मनु की पुत्री आरुशि उस ऋषि (भृगुपुत्र च्यवन) की पत्नी थी. ..ब्रह्मा के दो अन्य पुत्र हैं, जिनका चिह्न विश्व में शेष है। ये हैं धातृ और विधातृ, जो मनु के साथ रहे। इनकी बहन सुंदर देवी लक्ष्मी थी, जो कमलवासिनी है। उसके मानस पुत्र अश्व थे जो आकाश में विचरण करते हैं...जब भोजनाभिलाषी जीवों ने एक-दूसरे को खा लिया, तो अधर्म का जन्म हुआ जो सभी प्राणियों का विनाशक है। उसकी पत्नी निऋति थी, और इसीलिए राक्षसों को नैऋत अर्थात निऋति की संतान कहा जाता है। निऋति के तीन भयानक पुत्र हुए भय, महाभय और मृत्यु जो निरंतर दुष्कर्मों में रत रहे। पुत्र मृत्यु प्राणियों का अंत करने वाला है। उसके न तो पत्नी है और न कोई पुत्र, क्योंकि वह तो अंत करने वाला है।''

''महान ऋषियों के समान तेजस्वी दस प्रचेता पुत्र गुणी और पवित्र थे; और उनके मुखों से निकलती अग्नि पहले महिमावानों को भस्म कर चुकी थी। उनसे दक्ष प्रचेता का जन्म हुआ; और दक्ष से इन प्राणियों का जन्म हुआ। वीरिणी के साथ सहवास करके मुनि दक्ष ने अपने समान एक हजार पुत्रों को उत्पन्न किया, जो अपने धार्मिक कृत्यों के लिए प्रख्यात थे। नारद ने उन्हें मोक्ष का सिद्धांत सिखाया और सांख्य का अनुपम ज्ञान दिया। संतानोत्पत्ति की इच्छा से, प्रजापति दक्ष ने तुदपरांत पचास पुत्रियों को उत्पन्न किया। इनमें से दस कन्याएं उन्होंने धर्म को दे दीं, तेरह कश्यप को, और समय के नियंत्रण सत्ताईस कन्याएं उन्होंने इंदु (सोम) को दीं...अपनी तेरह पत्नियों में सर्वश्रेष्ठ दक्षयानी से मारीचिपुत्र कश्यप ने आदित्यों को उत्पन्न किया जिनके नेता इंद्र थे। इनके अतिरिक्त उन्होंने विवस्वत को भी उत्पन्न किया, जिसका पुत्र शक्तिशाली यम वैवस्वत

हुआ। मार्तंड (विवस्वत, सूर्य) ने बुद्धिमान और शक्तिशाली पुत्र मनु और उसके छोटे भाई, प्रसिद्ध यम को उत्पन्न किया। यह मनु धर्मालु थे, और वह एक वंश के संस्थापक हुए। इसलिए मनुष्यों का यह परिवार मनु के वंश के रूप में जाना गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय और अन्य मनुष्यों की उत्पत्ति इन्हीं मनु से हुई। उन्हीं से, हे राजा, ब्राह्मण और क्षत्रिय निकले। उनमें से मनु की संतान ब्राह्मणों ने वेदांग सहित वेद को धारण किया। मनु की संतान वेण, धृणु, नरिश्यांत, नायाग, इक्ष्वाकु, करुष, शर्याति, इला, प्रशाद्र और नामगरिष्ट थे। मनु के पचास अन्य पुत्र भी थे। किंतु जैसा कि हमने सुना है, वे सभी आपसी फूट के कारण नष्ट हो गए। बाद में, इला से पुरूरवा उत्पन्न हुए, और हमने सुना है कि इला उनकी मां भी थी और पिता भी।

## VII

रामायण में भी सृष्टि के विषय में बताया गया है। इसका एक विवरण इसके दूसरे कांड में इस प्रकार मिलता है (म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 115, से उद्धृत अंश का अनुवाद)–

"राम को रुष्ट जानकर वसिष्ठ ने उत्तर दिया, 'जाबालि भी यह जानते हैं कि इस लोक के प्राणियों का परलोक में जाना और आना होता रहता है। किंतु उन्होंने तुम्हें लौटाने की इच्छा से यह कहा था। हे भूपति, तुम मुझसे विश्व की उत्पत्ति का यह विवरण सुनो। इस संसार में बस जल ही जल था। इसके भीतर पृथ्वी का निर्माण हुआ। तब ब्रह्मा स्वयंभू अस्तित्व में आए, और उनके साथ देवता भी। फिर ब्रह्मा ने वराह का रूप धारण किया और पृथ्वी को निकाला, और अपने संत पुत्रों के साथ समूचे विश्व की रचना की। शाश्वत, नित्य और अविनाशी ब्रह्मा की उत्पत्ति आकाश से हुई। उनसे मरीचि उत्पन्न हुए, जिनके पुत्र कश्यप थे। कश्यप से विवस्वत उत्पन्न हुए; और उनसे मनु उत्पन्न हुए जो पहले जीवों के स्वामी (प्रजापति) थे। मनु के पुत्र इक्ष्वाकु थे, और उन्हीं को यह समृद्ध पृथ्वी पहले उनके पिता ने दी थी। इन इक्ष्वाकु को तुम अयोध्या का पूर्ववर्ती राजा समझो।"

इसके अतिरिक्त सृष्टि का एक और वृत्तांत मिलता है। तीसरे कांड में इस प्रकार लिखा है (म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 116 से उद्धृत अंश का अनुवाद)–

"राम के वचन सुनकर, उस पक्षी (जटायु) ने उन्हें अपने कुल के विषय में स्वयं अपने विषय में, और समस्त प्राणियों की उत्पत्ति के विषय में बताया, 'पूर्वकाल में जो-जो प्रजापति हो चुके हैं, उन सबके विषय में प्रारंभ से बताता हूं, सुनो। सर्वप्रथम कर्दम हुए, फिर विकृत, शेष, संश्रय, पराक्रमी बहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, शक्तिशाली क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, फिर विवस्वत, अरिष्टनेमि, और अंत में तेजस्वी कश्यप हुए। प्रजापति दक्ष की साठ

पुत्रियां थीं। इनमें से आठ सुंदर कन्याओं को कश्यप ने अपनी पत्नी बनाया। इनके नाम हैं अदिति, दिति, दनु, कालका, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु और अनला। तब कश्यप ने प्रसन्न होकर इन कन्याओं से कहा, 'तुम मेरे समान पुत्रों को जन्म दोगी जो तीनों लोकों के संरक्षक होंगे।' अदिति, दिति, दनु और कालका तो कश्यप की बात से सहममत हो गईं; किंतु अन्य सहमत नहीं हुईं। अदिति ने तैंतीस देवताओं को जन्म दिया–इनमें आदित्य, वसु, रुद्र और दो अश्विनी कुमार थे। कश्यप की पत्नी मनु ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति के मनुष्यों को जन्म दिया। ब्राह्मणों का जन्म मुख से, क्षत्रियों का वक्ष से, वैश्यों का जंघाओं से, और शूद्रों का जन्म पैरों से हुआ। वेद यही कहते हैं। अनला से पवित्र फल वाले समस्त वृक्ष उत्पन्न हुए।''

## VIII

पुराण इस विषय में क्या कहते हैं, इसे स्पष्ट करने के लिए मैं विष्णु पुराण का निम्नलिखित अंश उद्धृत कर रहा हूं (म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 220-221 से उद्धृत अंश का अनुवाद)–

''ऐहिक अंड से पहले दिव्य ब्रह्मा हिरण्यगर्भ का, समस्त लोकों के शाश्वत जनक का अस्तित्व था, जो ब्रह्मा का रूप और सार था, जो दिव्य विष्णु हैं, जो ऋक, यजुस, साम और अथर्ववेद के समान हैं। ब्रह्मा के दाहिने अंगूठे से प्रजापति दक्ष उत्पन्न हुए; दक्ष की पुत्री अदिति थी; अदिति से विवस्वत उत्पन्न हुए; और विवस्वत से मनु उत्पन्न हुए। मनु के पुत्रों का नाम इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, सर्याति, नारिश्यांत, प्रांशु, नमगणेदिष्ट, करुश और पृशाध्र था। पुत्र की इच्छा से मनु ने मित्र और वरुण के निमित्त यज्ञ किया। किंतु होत्रि पुरोहित की अनियमितता के कारण गलत आवाहन हो गया, जिससे इला नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। फिर मित्र और वरुण की कृपा से वह मनु के लिए सुद्युम्न नामक पुत्र बन गई। किंतु ईश्वर (महादेव) के कोप से वह दोबारा कन्या बन गई, तो वह सोम (चंद्रमा) के पुत्र बुध के आश्रम के निकट विचरण करने लगी। वह उस पर मोहित हो गया और उसके साथ संसर्ग से उसे पुरुरवा नामक पुत्र प्राप्त हुआ। उसके जन्म के पश्चात यज्ञ से, ऋक, यजुस साम और अथर्ववेद से, समस्त वस्तुओं से, मन से, शून्य से बने देवता की, याज्ञिक नर रूपी की अनंत तेज वाले ऋषियों ने पूजा की, जिनकी इच्छा थी कि सुद्युम्न फिर से पुरुष बन जाए। इस देवता की कृपा से इला फिर से सुद्युम्न बन गई।''

आगे विष्णु पुराण में मनु पुत्रों का निम्नलिखित विवरण दिया गया है–

''(1) अपने धर्मगुरु की गाय का वध करने के कारण, पृशाध्र शूद्र बन गया।
(2) करुष से महा शक्तिशाली क्षत्रिय कारुष निकले।
(3) नेदिष्ट का पुत्र नाभाग वैश्य बना।''

उपर्युक्त कथा सूर्य वंश की है। विष्णु पुराण[1] में चंद्र वंश की कथा भी है, जिसकी उत्पत्ति इसके अनुसार अत्रि से हुई थी, जैसे सूर्य वंश की उत्पत्ति मनु से हुई–

> ''अत्रि तो ब्रह्मा के पुत्र और सोम (चंद्रमा) के पिता थे, जिन्हें ब्रह्मा ने पौधों, ब्राह्मणों ने पौधों, ब्राह्मणों और नक्षत्रों का राजा नियुक्त किया था। राजसूय यज्ञ संपन्न करने के पश्चात, सोम अभिमान से उन्मत्त हो गया और देवताओं के गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा को ले गया। यद्यपि ब्रह्मा, देवों और ऋषियों ने उससे बहुत कहा, किंतु सोम ने तारा को नहीं लौटाया। सोम का पक्ष उषाण ने लिया जबकि अंगिरा से शिक्षा प्राप्त करने वाले रुद्र ने बृहस्पति की सहायता की। क्रमशः देवताओं और दैत्यों द्वारा समर्पित इन पक्षों के बीच भीषण संघर्ष हुआ, ब्रह्मा ने हस्तक्षेप करते हुए सोम को बाध्य किया कि वह बृहस्पति को उनकी पत्नी लौटा दे। किंतु इस बीच तारा गर्भवती हो गई और उसने बुध नामक पुत्र को जन्म दिया। जब उससे जोरदार आग्रह किया गया, तो उसने स्वीकार किया कि बुध का पिता सोम था। पुरुरवा[2] इसी बुध का पुत्र था जो मनु की पुत्री इला के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। पुरुरवा[3] के छह पुत्र थे जिनमें सबसे बड़ा अयुस था। अयुस के पांच पुत्र थे–नहुष, क्षत्रवृद्ध, रंभा, राजी और अनेनरू।
>
> क्षत्रवृद्ध का पुत्र शुनहोत्र था जिसके तीन पुत्र काश, लेश और गृत्समद थे। गृत्समद से शौनक उत्पन्न हुआ, जिसने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की शुरुआत की। काश के एक पुत्र काशीराज हुआ, जिसका पुत्र दीर्घतमस था, जैसे दीघतमस का पुत्र धन्वंतरि था।''

अब सृष्टि के इन सिद्धांतों की तुलना अध्याय दो में वर्णित सिद्धांतों से की जाए, तो निष्कर्ष क्या निकलता है? मेरे विचार से इस तुलना का परिणाम यह निकलता है–(1) एक का रंग और चरित्र पुरोहिती है, तो दूसरे का लौकिक; (2) एक मनु जैसे मनुष्य को सृष्टि का जनक बताता है, तो दूसरा परमात्मा ब्रह्मा अथवा प्रजापति को; (3) एक में ऐतिहासिकता है, तो दूसरे में अलौकिकता; (4) एक में बाढ़ की बात कही गई है, तो दूसरा इस विषय में मौन है; (5) एक का ध्येय चार वर्णों की व्याख्या करना है, तो दूसरे का ध्येय केवल समाज की उत्पत्ति की व्याख्या करना है।

ये अंतर अनेक हैं और बुनियादी भी। चातुर्वर्ण्य से सम्बंधित जो अंतर है वह विशेष बुनियादी दिखाई देता है। पुरोहिती विचारधारा तो इसे मानती है किंतु लौकिक सिद्धांत इसे

---

1. *म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 225-226 से उद्धृत अंश का अनुवाद*
2. *पुरुरवा और अप्सरा उर्वशी के प्रेम का वर्णन शतपथ ब्राह्मण, 11, 5.1.11 में; विष्णु पुराण 6, 6.19 में; भगवत पुराण 10, 14 में; और हरिवंश, भाग 26 में मिलता है। महाभारत खंड 75 में पुरुरवा और ब्राह्मणों के बीच संघर्ष का उल्लेख है। इस अंश को बाद में उद्धृत किया जाएगा।*
3. *विष्णु पुराण, 4, 7.1*

नहीं मानता। यह सच है कि इन दोनों सिद्धांतों को मिलाकर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है कि मनु की संतानों ने किस प्रकार चार वर्णों का रूप ले लिया। रामायण और पुराणों में यही किया गया है। किंतु यह स्पष्ट रूप में दो सिद्धांतों को एक में ढालने का ही प्रयास है। यह प्रयास जानबूझ कर और खूब सोच-समझकर किया गया है। किंतु इन दो विचारधाराओं का यह अंतर इतना बुनियादी है कि इस प्रयास के बावजूद ये दो पृथक सिद्धांत ही बने हुए हैं। हुआ बस यह है कि अब हमारे पास चातुर्वर्ण्य, पुरुष द्वारा उद्भूत अलौकिक चातुर्वर्ण्य, और मनु के पुत्रों में विकसित प्राकृतिक चातुर्वर्ण्य की एक के बजाय दो व्याख्याएं हैं। इनका परिणाम जो इतना अटपटा है तो इससे यही स्पष्ट होता है कि ये दो सिद्धांत अथवा विचारधाराएं बुनियादी तौर पर भिन्न और बेमेल हैं। यह खेद का विषय है कि ब्राह्मणी साहित्य में अभिलिखित इन दो सिद्धांतों की ओर इस विषय के विश्लेषक विद्वानों का ध्यान नहीं गया। किंतु इस तथ्य की अनदेखी नहीं की जा सकती कि इन सिद्धांतों का वजूद है, और महत्त्व भी। बुनियादी तौर पर भिन्न और बेमेल इन दो विचारधाराओं के वजूद का महत्त्व क्या है? मुझे तो ऐसा लगता है कि ये दो भिन्न आर्य प्रजातियों अथवा वंशों की विचारधाराएं हैं, जिनमें से एक का विश्वास चातुर्वर्ण्य में दूसरे का नहीं, और जो बाद में जाकर एक हो गए। यदि इस तर्क का ठोस आधार है तो ब्राह्मणी साहित्य में उजागर सिद्धांतों में निहित इस अंतर से नए सिद्धांत के पक्ष में और भी प्रमाण मिलता है।

## IX

मेरे विचार के पक्ष में तीसरा और सर्वाधिक अकाट्य प्रमाण भारतीय जन के मानवमितीय सर्वेक्षण से सामने आता है। ऐसा सर्वेक्षण सबसे पहले सर रॉबर्ट रिसले द्वारा सन् 1901 में किया गया था। उन्होंने शिरस्य सूचकांक के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि भारतवासी चार भिन्न प्रजातियों का मिश्रण थे–(1) आर्य, (2) द्रविड़, (3) मंगोल, और (4) शक। उन्होंने तो उन क्षेत्रों को भी स्पष्ट कर दिया है जहां इनका जमाव था। यह सर्वेक्षण अत्यंत सरसरी तौर पर किया गया था। डॉ. गुहा ने उनके निष्कर्षों का परीक्षण 1936 में किया। इस विषय पर उन्होंने जो रिपोर्ट दी है वह भारतीय मानव विज्ञान के क्षेत्र में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। डॉ. गुहा द्वारा तैयार किए गए नक्शे[1] से भारतीय जन के प्रजातीय गठन पर प्रकाश पड़ता है। अपने इसी मानचित्र के आधार पर डॉ. गुहा ने भारतीय जन के सिर की माप के अनुसार उनका वर्गीकरण किया है। डॉ. गुहा का यह निष्कर्ष है कि भारतीय जन दो प्रजातीय संततियों से बने हैं–लंबे सिर वाले, और छोटे सिर वाले, और लंबे सिर वाले भारत के अंदरूनी भागों में और छोटे सिर वाले बाह्यांचलों में हैं।

भारत के विभिन्न हिस्सों में मिली खोपड़ियों के साक्ष्य से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। इससे सम्बंधित साक्ष्य के विषय में डॉ. गुहा का कहना है–

1. देखिए परिशिष्ट 5

"उपर्युक्त प्रागैतिहासिक स्थलों से प्राप्त मानव अवशेषों के विवरण यद्यपि, सिंधु घाटी के अवशेषों के अपवाद को छोड़कर, अत्यधिक कम हैं, फिर भी उनसे हमें इस काल में भारत के प्रजातीय इतिहास की व्यापक रूपरेखा को समझने में मदद मिलती है। चौथी सहस्राब्दी ई.पू. के प्रारंभ से उत्तर-पश्चिम भारत एक लंबे सिर और पतली ऊंची नाक वाली प्रजाति के कब्जे में दिखाई देता है। उनके साथ-साथ हमें एक और अत्यंत मजबूत गठन वाली प्रजाति का भी अस्तित्व दिखाई देता है, और ये भी लंबे सिर वाले थे, किंतु इनकी खोपड़ी छोटी थी और ये वैसे ही लंबी मुखाकृति और पतली नाक वाले थे।

"चौड़े सिर वाले और आर्मेनॉइड किस्म की एक तीसरी प्रजाति का भी अस्तित्व था, किंतु इन अधिकांश खोपड़ियों के मिलने के स्थल हड़प्पा की आयु के अनुसार इनका प्रादुर्भाव कुछ बाद में हुआ था।"

ऐल्पाइन और भूमध्यसागरीय प्रजाति की बात करें तो हम यह कह सकते हैं कि भारतीय जन दो संततियों से हैं–(1) भूमध्यसागरीय अथवा लंबे सिर वाली प्रजाति, और (2) ऐल्पाइन अथवा छोटे सिर वाली प्रजाति।

भूमध्यसागरीय प्रजाति के विषय में कुछ तथ्यों को स्वीकार किया जाता है। यह स्वीकार किया जाता है कि यह प्रजाति आर्य भाषा बोलती थी। यह स्वीकार किया जाता है कि इसका मूल निवास यूरोप में भूमध्यसागरीय थाले के आसपास था और ये लोग वहीं से भारत में आए। इनके स्थानीयकरण से यह स्पष्ट है कि ये ऐल्पाइन प्रजाति से पहले ही भारत में आ गए थे।

ऐल्पाइन प्रजाति के विषय में ऐसे ही तथ्यों की अभी पुष्टि होनी है। पहला तथ्य ऐल्पाइन प्रजाति के मूल निवास के सम्बंध में है और दूसरा इसकी मूल भाषा के सम्बंध में। प्रो. रिप्ले के अनुसार ऐल्पाइन जन का मूल निवास एशिया में कहीं हिमालय में था। उनके तर्कों को उन्हीं के शब्दों में दिया जा सकता है। प्रो. रिप्ले का कहना है–[1]

"हमें यह कहने का क्या अधिकार है कि पूर्व से जनसंख्या का यह अतिक्रमण–यह विजय नहीं थी, हर तथ्य इसके क्रमिक शांतिपूर्ण आप्रवास होने की ओर संकेत करता है, और प्रायः यह अनधिकृत भूभाग पर बसने तक ही सीमित था–एशिया की ओर से आने वाली एक बाढ़ थी? इसके प्रमाण व्यापक रूप में उस महाद्वीप के लोगों से सम्बंधित, विशेषकर पामीर क्षेत्र के पश्चिमी हिमालयी उच्चभूमि के लोगों से सम्बंधित हमारे ज्ञान पर आधारित हैं। ठीक यहां 'दुनिया की छत' पर जहां मैक्स मुलर और प्रारंभिक भाषाविज्ञानियों ने आर्य सभ्यता का मूल निवास होना बताया है, ठीक यहां एक मानव प्रजाति रहती है जो हमारी आदर्श ऐल्पाइन अथवा सेल्टिक प्रजाति से बहुत मिलती-जुलती है। डि

1. *रेसेज़ ऑव यूरोप, पृष्ठ 473-474*

उयफाल्वी, तोपीनार, और अन्य विद्वानों ने यहां आसपास के एक विशाल भूभाग पर इसके विशिष्ट लक्षणों को देखा है। गालचा, पहाड़ी ताजिक और उनके साथी भूरी आंखों वाले, काले बालों वाले, गठे शरीर वाले हैं जिनके शिरस्थ सूचकांक अधिकतर 86 से ऊपर हैं। इस क्षेत्र से ऐसे ही शारीरिक गठन वाले लोगों की एक लंबी शृंखला अनवरत पश्चिम की ओर एशिया माइनर होती हुई यूरोप तक चली गई है। एक आदर्श ऐल्पाइन प्रजाति के कब्जे वाले पश्चिम एशिया के एक विस्तृत क्षेत्र की खोज से जिस एकमात्र प्रश्न का समाधान होता है कि इससे इस विशिष्ट प्रजाति की बंधुता को बल मिलता है। यह एशिया से सीधे आप्रवास का प्रमाण तो बिलकुल भी नहीं है, जैसा कि टापेनर ने कहा है। किंतु, इससे हम इस बात के लिए तो प्रेरित होते ही हैं कि जब हम चौड़े सिर वाली प्रजाति के मूल की खोज करते हैं जो हमें पूर्व की ओर अपनी नजर घुमानी होती है। तथ्यों से एक अस्पष्ट-सा संकेत यही मिलता है कि इनका मूल जातीय आधार इसी दिशा में कहीं है। यह पश्चिम की ओर नहीं हो सकता, क्योंकि एटलांटिक क्षेत्र में हर कहीं यह प्रजाति धीरे-धरे गायब होती जाती है। इस मामले में हम पूर्वग्रह के शिकार इसलिए भी हो जाते हैं क्योंकि ऐल्पाइन लोग एशिया महाद्वीप के अन्य लाखों लोगों से विशेषकर सिर की आकृति के मामले में, किंतु बाल, रंग और कद के मामले में भी मिलते-जुलते हैं। यह उसी प्रकार है जैसे कि हमारी भूमध्यसागरीय प्रजाति के सिरों की बढ़ती लंबाई और अतिशय ललछौंछेपन के आधार पर पहले हम इसे अफ्रीकी नीग्रो प्रजाति की जड़ें पूर्व की ओर हैं; भूमध्यसागरीय प्रजाति की जड़ें दक्षिण की ओर।''

इसकी भाषा को लेकर थोड़ा विवाद है[1] कि यूरोप में आर्य भाषा को किसने प्रचलित किया नॉर्डिक (शुद्धतम भारतीय-जर्मन) लोगों ने अथवा ऐल्पाइन लोगों ने। किंतु इस विषय में कोई विवाद नहीं है कि ऐल्पाइन प्रजाति की भाषा आर्य थी और इसलिए भाषाशास्त्रीय अर्थ में यह आर्य प्रजाति कहलाने की अधिकारी है।

## X

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऋग्वेद के समर्थन में मानवमिति और इतिहास में इस मत का ठोस आधार है कि भारत में एक नहीं दो आर्य प्रजातियां थीं। इसे देखते हुए, यह स्वीकार करना ही होगा कि पाश्चात्य सिद्धांत और ऋग्वेद के साक्ष्य में प्रत्यक्ष टकराव है। जहां पाश्चात्य सिद्धांत एक आर्य प्रजाति की बात करता है, वहीं ऋग्वेद दो आर्य प्रजातियों की बात करता है। इस तरह, पाश्चात्य सिद्धांत एक बड़े मुद्दे पर ऋग्वेद से मतभेद रखता है। ऋग्वेद क्योंकि इस विषय का सर्वोत्तम साक्ष्य है, इसलिए इससे मतभेद रखने वाले सिद्धांत को खारिज करना ही होगा। इससे बचने का कोई रास्ता नहीं है।

---

*1. मैडीसन ग्रांट, द पासिंग ऑव द ग्रेट रेस (1922), पृष्ठ 238-239*

इस बड़े मुद्दे पर इस मतभेद के फलस्वरूप आक्रमण और विजय के मुद्दे पर भी मतभेद पैदा हो जाता है। हम नहीं जानते कि दोनों में से कौन-सी आर्य प्रजाति भारत में पहले आई। किंतु यदि उनका सम्बंध ऐल्पाइन प्रजाति से था, तो इसका मूल निवास हिमालय के निकट था, और इसलिए बाहर से आक्रमण वाले सिद्धांत के लिए कोई गुंजाइश नहीं बनती। जहां तक यहां की मूल जनजातियों पर विजय का सवाल है, तो अगर इसे सच मान भी लिया जाए तब भी यह मामला इतना आसान नहीं है जितना पाश्चात्य लेखकों ने मान लिया है। यह मानते हुए कि दास और दस्यु दोनों आर्यों से भिन्न प्रजाति के थे, तो विजय के सिद्धांत में केवल आर्यों द्वारा दासों और दस्युओं के संभाव्य पराभव को ही ध्यान में नहीं रखना होगा, बल्कि आर्यों द्वारा आर्यों के पराभव को भी ध्यान में रखना होगा। इसमें यह भी स्पष्ट करना होगा कि यदि आर्यों ने दासों और दस्युओं पर विजय पाई भी थी तो दोनों में से किस आर्य प्रजाति ने उन्हें परास्त किया था।

यह स्पष्ट है कि पाश्चात्य सिद्धांत तो मात्र हड़बड़ी में निकाला गया निष्कर्ष है जो तथ्यों की अपर्याप्त जांच पर आधारित है और इसे इसलिए सही माना जाता है क्योंकि यह प्राचीन आर्यों की मानसिकता की पूर्व-निश्चित धारणाओं से मिलता-जुलता था। कथित रूप में, यह मानसिकता आर्यों में केवल इस आधार पर थी कि उनके कथित आधुनिक वंशज अर्थात भारतीय-जर्मनों में यही मानसिकता पाई जाती है। यह सिद्धांत उन कुछ चुनींदा तथ्यों पर निर्मित है जिन्हें एकमात्र तथ्य माना जाता है। यह असाधारण बात है कि ऐसे विरल और असुरक्षित आधार वाले सिद्धांत को पाश्चात्य विद्वानों ने गंभीर अध्येताओं के लिए प्रतिपादित किया और यह इतने लंबे समय तक मान्य रहा। इस अध्याय में प्रस्तुत नए तथ्यों की खोज के आलोक में यह सिद्धांत अब चल नहीं सकता और इसे रद्दी के ढेर में डाल देना चाहिए।

अध्याय : छह

# शूद्र और दास

हम यह देख चुके हैं कि पाश्चात्य सिद्धांत कितना अमान्य है। अब इस सिद्धांत का जो हिस्सा विचारणीय रह जाता है, वह यह है—शूद्र कौन हैं? मान्यवर ए.सी. दास[1] का इस विषय में यह कहना है—

> "दास और दस्यु या तो असभ्य लोग थे अथवा अवैदिक आर्य जनजातियों के सदस्य थे। उनमें से जो लोग युद्ध में बंदी बना दिए गए, उन्हें शायद गुलाम बना लिया गया और वे शूद्र (जाति) हो गए।"

एक अन्य वैदिक विद्वान और पाश्चात्य सिद्धांत के समर्थक मान्यवर काणे[2] का यह विचार है कि—

> "परवर्ती साहित्य में 'दास' शब्द का अर्थ 'सेवक अथवा गुलाम' होता है। ऋग्वेद में जिस दास जनजाति को हम आर्यों के विरुद्ध देखते हैं, उन्हें धीरे-धीरे परास्त कर दिया गया और फिर आर्यों की सेवा में लगा दिया गया। मनुस्मृति (8, 413) में कहा गया है कि परमात्मा ने शूद्र को ब्राह्मण की सेवा के लिए उत्पन्न किया। तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण और अन्य ब्राह्मण ग्रंथों से यह पता चलता है कि यहां शूद्र को वही स्थान प्राप्त था जो उसे स्मृतियों में प्राप्त है। इसलिए यह अर्थ निकालना तर्कपूर्ण होगा कि आर्यों द्वारा पराजित दास अथवा दस्यु धीरे-धीरे शूद्र बन गए थे।"

इस मत के अनुसार शूद्र और दास-दस्यु एक ही हैं और यह भी कि शूद्र लोग भारत के अनार्य मूलनिवासी थे और सभ्यता की आदिम तथा जंगली अवस्था में थे। हमें अब इन्हीं मतों की विवेचना करनी है।

पहले हम पहले मत को लेते हैं। वास्तव में यह एक मत नहीं है बल्कि दो मत हैं जिन्हें एक करके प्रस्तुत किया गया है। एक मत तो यह है कि दास और दस्यु एक ही जन हैं। दूसरा मत यह है कि वे शूद्र एक ही जन हैं।

दासों और दस्युओं के एक ही जन होने की बात इतनी विश्वसनीय नहीं है। ऋग्वेद में उनके सम्बंध में जो उल्लेख मिलते हैं वे निर्णायक नहीं हैं। कुछ स्थलों में दास में दास और दस्यु शब्दों का प्रयोग इस प्रकार किया गया है मानों दोनों में कोई अंतर था ही नहीं।

---

*1. ऋग्वैदिक कल्चर, पृष्ठ 133*　　*2. धर्म शास्त्र, 2(1), पृष्ठ 33*

शंबर, **शुष्ण**, वृत्र, और **पिप्रु** को दास भी बताया गया है और दस्यु भी। दासों और दस्युओं दोनों को इंद्र और देवों का और विशेषकर अश्विनी कुमारों का शत्रु बताया गया है। यह बताया गया है कि दासों और दस्युओं दोनों के ही नगरों को इंद्र और देवों ने ध्वस्त कर दिया था। यह भी बताया गया है कि दासों और दस्युओं दोनों की ही पराजय का एक ही परिणाम हुआ, अर्थात जल का विमोचन और प्रकाश का उदय। दभिति की मुक्ति का वर्णन करते समय इन दोनों का ही उल्लेख किया गया है। एक स्थल में कहा गया है कि उसे दासों से मुक्ति मिली थी और एक अन्य स्थल में कहा गया है कि दस्युओं ने उसे मुक्त किया था।

जहां इन उल्लेखों से यह संकेत मिलता है कि दास और दस्यु एक ही थे, वहीं अन्य उल्लेख उनके अलग-अलग होने का संकेत देते हैं। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि 54 स्थलों पर दासों का पृथक उल्लेख मिलता है और 78 स्थलों में दस्युओं का अलग उल्लेख पाया जाता है। यदि वे दो अलग-अलग जन नहीं थे तो इतने अधिक पृथक उल्लेख क्यों मिलते हैं? संभावना यही है कि वे दो अलग समुदायों की बात कर रहे हैं।

शूद्रों और दास-दस्युओं के एक ही जन होने सम्बंधी जो दूसरा मत है, उसके विषय में यह निश्चित रूप में कहा जा सकता है कि इसका कोई भी आधार नहीं है।

शूद्र और दास-दस्यु एक हैं, इस मत को स्थापित करने के लिए, 'शूद्र' शब्द को अन्य मूल से निकला बताने का प्रयास किया जाता है। यह शब्द 'शूक' (दुख) और 'द्र' (ग्रस्त) से निकला बताया जाता है, जिसका अर्थ होता है दुखग्रस्त। इस सम्बंध में वेदांत सूत्र (1, 3.34) में वर्णित जनश्रुति की कथा को आधार बनाया जाता है, जिसके विषय में कहा गया है कि वह अपने बारे में राजहंसों की तिरस्कारपूर्ण बातें सुनकर दुख से अभिभूत (ग्रस्त) हो गया था।[1] विष्णु पुराण में भी इसी व्युत्पत्ति की बात कही गई है।[2]

इन कथनों का आधार कितना ठोस है? यह कहना कि शूद्र एक व्यक्तिवाचक नाम नहीं बल्कि व्युत्पन्न यौगिक शब्द है, यह मूर्खतापूर्ण है। मिथ्या व्युत्पत्तियों का आविष्कार करने में ब्राह्मणी लेखकों का कोई जवाब नहीं है। ऐसा कोई शब्द नहीं है जिसके लिए वे कोई व्युत्पत्ति नहीं ढूंढ़ लाएंगे। ब्राह्मणी लेखकों ने 'उपनिषद' शब्द की जो अलग-अलग व्युत्पत्तियां दी हैं, उनके बारे में प्रो. मैक्स मूलर[3] ने कहा है–

> "ये व्याख्याएं इतनी विकृत प्रतीत होती हैं कि देशी विद्वानों की एकमतता को समझना कठिन है। किंतु हमें अर्धशिक्षित लोगों की इस अत्यंत सामान्य प्रवृत्ति को ध्यान में रखना होगा कि वे ऐसी किसी भी व्युत्पत्ति को चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं जिससे शब्द का सर्वाधिक प्रचलित शब्द अभिव्यक्त होता है। अरण्यकों में ऐसी व्युत्पत्तियों की भरमार है, जो संभवतः वास्तविक व्युत्पत्ति के अभिप्राय से प्रस्तुत नहीं किए गए थे, बल्कि शब्दों की कौतुकबाजी के रूप में, जिससे किसी तरह उनका अभिव्यक्त होने में मदद मिलती है।"

---

*1. काणे रचित धर्मशास्त्र, 2(1), पृष्ठ 155*　　*2. म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 97*

*3. उपनिषद्ज़, प्रस्तावना, पृष्ठ 79-81*

यह चेतावनी वेदांत सूत्र और वायु पुराण पर भी उतनी ही लागू होती है जिनमें शूद्र को एक व्युत्पन्न शब्द बनाने का प्रयास किया गया है जिससे यह संकेत निकलता है कि इस शब्द का अर्थ 'दुखग्रस्त लोग' है और इसलिए हमें इसे अनर्गल और निरर्थक मानकर खारिज कर देना चाहिए।

किंतु हमारे पास इस सिद्धांत अथवा मत के समर्थन में प्रत्यक्ष साक्ष्य है कि शूद्र एक जनजाति अथवा एक कुल का व्यक्तिवाचक नाम है और यह व्युत्पन्न शब्द नहीं है जैसा कि स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

इस मत के पक्ष में अनेक साक्ष्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं। भारत पर सिकंदर के आक्रमण के इतिहासकारों ने अनेक गणराज्यों को स्वतंत्र, स्वाधीन और स्वायत बताया है जिनसे सिकंदर का सामना हुआ था। ये निस्संदेह विभिन्न कबीलों अथवा जनजातियों से बने थे और उन जनजातियों के नाम से जाने जाते थे। इन्हीं में एक जनजाति सोदरी थी, जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण थी, और उन जनजातियों में से थी जिन्होंने सिकंदर से युद्ध किया था, हालांकि ये लोग सिकंदर से हार गए थे। लासेन ने इनकी पहचान प्राचीन शूद्रों के रूप में की है। पातंजलि ने अपने महाभाष्य (1, 2.3) में शूद्रों का उल्लेख किया है और उनकी पहचान अमीरों के साथ जोड़ी है। महाभारत के सभा पर्व के अध्याय 32 में शूद्रों के गणराज्य की बात कही गई है। विष्णु पुराण और मार्कण्डेय पुराण तथा ब्रह्म पुराण में भी शूद्रों को अन्य अनेक जनजातियों में एक पृथक जनजाति बताया गया है और उनका निवास देश के पश्चिमी भाग में विंध्य के ऊपर बताया गया है।[1]

## II

अब हम दूसरे मत पर आते हैं और उसके विभिन्न तत्त्वों का विवेचन करते हैं। इस मत में दो तत्त्व हैं। पहला है—क्या दस्यु और दास शब्दों का प्रयोग जाति के अर्थ में हुआ है और उनके अनार्य जनजाति होने का सूचक है? दूसरा यह है कि यदि हम उसे मान लें, तो क्या इसका कोई संकेत है कि वे भारत की आदिम जनजातियां थीं? यदि इन दोनों प्रश्नों का उत्तर 'हां' है, तभी दस्युओं और दासों को शूद्र बताने की संभावना बनेगी।

दस्युओं के सम्बंध में, इसका कोई साक्ष्य नहीं है कि इस शब्द का प्रयोग प्रजाति (नस्ल) के अर्थ में हुआ है और यह एक अनार्य कौम को इंगित करता है। दूसरी ओर, इस निष्कर्ष के पक्ष में सकारात्मक साक्ष्य हैं कि इसका प्रयोग उन व्यक्तियों के लिए होता था जो आर्यों के धर्म को नहीं मानते थे। इस सम्बंध में महाभारत के शांति पर्व के अध्याय 65 के पद 23 का उल्लेख किया जा सकता है। यह इस प्रकार है—

**दृश्यन्ते मानुषे, लीके सर्ववर्णेषु दस्यवः।**
**लिंगान्तरे वर्तमाना आश्रमेषुचतुष्यर्वपि।।**

जिसका अर्थ है कि समस्त वर्णों और समस्त आश्रयों में हमें दस्युओं का अस्तित्व मिलता है।

1. संदर्भ के लिए देखिए, *ट्राइब्स इन एंशिएंट इंडिया*, बी.सी. लॉ, पृष्ठ 350

यह कहना कठिन है कि दस्यु शब्द का स्रोत क्या है, अर्थात इसकी व्युत्पत्ति कहां से हुई। किंतु, एक मत[1] के अनुसार भारतीय-आर्य इस शब्द का प्रयोग भारतीय-ईरानियों के लिए अपशब्द के रूप में करते थे। इस मत में कुछ भी अस्वाभाविक अथवा आरोपित नहीं है। इतिहास गवाह है कि दोनों में टकराव हुआ था। इसलिए यह बहुत संभव है कि भारतीय-आर्यों ने अपने शत्रुओं के लिए ऐसे अपमानजनक नाम को गढ़ा होगा। यदि यह सही है तो दस्युओं को भारत का मूलनिवासी नहीं माना जा सकता।

जहां तक दासों का सम्बंध है, तो प्रश्न यह उठता है कि क्या उनके और जेंद अवेस्ता के **आज़ी दाहक** के बीच कोई सम्बंध है। आज़ी-दाहक एक यौगिक नाम है। इसमें आज़ी का अर्थ है सर्प और दाहक की व्युत्पत्ति 'दह' से हुई है जिसका अर्थ है 'डसना, नुकसान पहुंचाना'। इस प्रकार, आज़ी-दाहक का अर्थ होता है एक डसने वाला सांप। यह एक व्यक्ति का व्यक्तिवाचक नाम है जिसे भारतीय-ईरानी परंपरा में **जोहक** कहा जाता है। यश्त साहित्य में उसका उल्लेख अनेक बार आया है। कहा जाता है कि वह बाबल में रहता था जहां उसने महल बनवाया हुआ था। यह भी कहा जाता है कि उसने वहां एक बड़ी वेधशाला भी बनवाई थी। इस शक्तिशाली शैतान आज़ी-दाहक को महादैत्य **आंग्रा मैन्यू** ने उत्पन्न किया था ताकि भौतिक जगत के धर्म राज्य को नष्ट किया जा सके। यह आज़ी-दाहक भारतीय-ईरानियों के प्रसिद्ध राजा **यिमा** से लड़ने गया और उसने उसे परास्त ही नहीं किया, बल्कि लड़ाई में मार गिराया भी।

यिमा को अवेस्ता में हमेशा **क्षेता** कहा गया है, जिसका अर्थ होता है चमकने वाला अथवा राज्य करने वाला। **'क्षी'** मूल के दो अर्थ होते हैं, चमकना अथवा शासन करना। यिमा के लिए एक और उपाधि का प्रयोग सामान्य तौर पर होता है और वह है **'ह्वांश्वा'** जिसका अर्थ होता है 'अच्छे झुंड का स्वामी'। यह अवेस्ता यिमा क्षेता परवर्ती फारसी भाषा में जमशेद हो गया। परंपराओं के अनुसार **विवंघवंत** का पुत्र राजा जमशेद ईरानी इतिहास का महान नायक, एक महान फारसी सभ्यता का संस्थापक था। वह **पेशदियाध्यान** वंश का राजा था। यश्न 9 और 5 (**कोएमा याशी**) में कहा गया है कि **'विवंशस'** वह पहला व्यक्ति था जिसने इस भौतिक जगत में **हशमा (सं. सशमा)** को पीटा और यह वरदान प्राप्त किया—उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो यिमा था, चमकता हुआ और अच्छे झुंड वाला, जो जीवों में सर्वाधिक तेजस्वी था, जो मानवों के बीच एक प्रभामय सूर्य के समान था, जिसके राज्य में उसने श्रेष्ठजनों और मवेशियों (पशुओं) को अमर कर दिया, जलाशयों और वृक्षों को अजसु कर दिया। उसमें सदाबहार दिव्य तेज था। प्रसिद्ध यिमा के राज में न तो चरम ठंड थी और न चरम गरमी, न बुढ़ापा, मृत्यु थी और न ही ईर्ष्या।

क्या जेंद अवेस्ता का दाहक और ऋग्वेद के दास एक ही हैं? यदि नाम की समानता को साक्ष्य माना जाए, तो निश्चय ही ये एक ही व्यक्ति के नाम हैं। संस्कृत का दास अवेस्ता में आसानी से दाह हो सकता है क्योंकि संस्कृत में जो 'स' होता है वह अवेस्ता में 'ह' हो

---

*1. खेद है, मुझसे इसका संदर्भ खो गया है।*

जाता है। यदि यह एकमात्र साक्ष्य होता तो यह मत एक अनुमान से अधिक और कुछ नहीं होता कि ऋग्वेद का दसा और जेंदा अवेस्ता का दाहक एक ही हैं। किंतु इस सम्बंध में और भी ठोस प्रमाण हैं जिससे उनकी पहचान के विषय में कोई संदेह नहीं रह जाता है। यश्न हा 9 में (जो होर्न याशे है) आज़ी-दाहक को 'तीन मुख वाला, तीन सिर वाला और छह आंखों वाला' बताया गया है। यहां उल्लेखनीय यह है कि अवेस्ता में प्रस्तुत दाहक का यह भौतिक चित्रण ऋग्वेद (10, 99.6) में प्रस्तुत दास के वर्णन से बिलकुल मिलता-जुलता है जहां उसे भी तीन सिर और छह आंखों वाला बताया गया है।[1] यदि इस मत को मान लिया जाए कि ऋग्वेद में वर्णित दास और अवेस्ता का दाहक एक ही हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि दास भारत के मूलनिवासी (आदिवासी) नहीं थे।

## III

क्या वे असभ्य (जंगली) थे? दास और दस्यु आदिमजन नहीं थे। वे आर्यों जितने ही सभ्य थे और वास्तव में आर्यों से अधिक शक्तिशाली थे। ऋग्वेद तो यही गवाही देता है। मान्यवर आयंगर ने इसे सार-रूप में सही ढंग से प्रस्तुत किया है। वह कहते हैं कि–

> "दस्यु लोग शहरों में रहते थे (ऋग्वेद, 1, 53.8; 1, 103.3) और राज्यों के अधीन रहते थे जिनमें से अनेक के नामों का उल्लेख मिलता है। उनके पास 'संचित संपदा' थी (ऋग्वेद, 8, 40.6) जो गायों, अश्वों और रथों के रूप में थी (ऋग्वेद, 2, 15.4) जो 'सौ द्वारों वाले नगरों' में रखी होने पर भी (ऋग्वेद, 10, 99.3) इंद्र द्वारा हथिया ली गई और अपने उपासकों, आर्यों में बांट दी गई थी (ऋग्वेद, 1, 176.4)। दस्यु धनवान थे (ऋग्वेद, 1, 33.4) और उनके पास 'मैदानों और पहाड़ियों पर' संपत्ति थी (ऋग्वेद, 10, 69.6)। वे 'स्वर्ण और जवाहरात' से सुसज्जित थी (ऋग्वेद, 1, 33.8)। उनके पास अनेक महल थे (ऋग्वेद, 1, 33.13; 8, 17.14)। दस्यु दैत्य और आर्य देवता समान रूप में सोने, चांदी और लोहे के महलों में रहते थे (स.सं., 6, 23; अथर्ववेद, 5, 28.9; ऋग्वेद 2, 20.8)। इंद्र ने अपने उपासक दिवोदास को 'पत्थरों के बने हुए नगर' दस्युओं से छीनकर दिए थे, जिसका उल्लेख स्तोत्रों में बार-बार आया है (ऋग्वेद, 4, 30. 20)। अग्नि ने आर्यों की उपासना से प्रसन्न होकर दस्युओं के नगरों को जला दिया था (ऋग्वेद, 7, 5.3)। बृहस्पति ने पत्थरों से बने कारागारों को तोड़ दिया था जिनमें वे आर्यों से अपहृत पशु रखे जाते थे (ऋग्वेद, 4, 67.3)। दस्युओं के पास रथ थे और वे आर्यों की तरह उनका इस्तेमाल युद्ध में करते थे, और उनके पास आर्यों के समान शस्त्रास्त्र भी थे (ऋग्वेद, 8, 24.27; 3, 30.5; 2, 15.4)।"

यह कोरी कल्पना है कि दास-दस्यु और शूद्र एक ही लोग थे। यह एक निराधार

---

1. दास की दाहक के रूप में पहचान के लिए मैं *'महाराष्ट्र ज्ञान कोश'*, खंड 3, पृष्ठ 53 का आभारी हूं।

अनुमान है। इसे इसलिए सह लिया जाता है क्योंकि यह अनुमान लगाने वाले सम्माननीय विद्वान हैं। जहां तक साक्ष्य का सम्बंध है, तो ऐसा रत्ती भर भी साक्ष्य नहीं है जिसे इसके समर्थन में प्रस्तुत किया जा सके। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, ऋग्वेद में दास शब्द 54 बार और दस्यु शब्द 78 बार आया है। कहीं-कहीं दासों और दस्युओं का उल्लेख साथ-साथ हुआ है। शूद्र शब्द का उल्लेख केवल एक बार हुआ है और वह भी ऐसे संदर्भ में हुआ है जिसमें दासों और दस्युओं का कोई स्थान नहीं है। इन बातों के आलोक में, यह कहना कठिन है कि कोई सचेत व्यक्ति यह कैसे कह सकता है कि शूद्र और दास-दस्यु एक ही लोग हैं। यहां एक और तथ्य ध्यान देने योग्य है कि दास और दस्यु, ये दोनों ही नाम, परवर्ती वैदिक साहित्य से बिलकुल गायब हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि वैदिक आर्यों ने पूरे तौर पर हृदयंगम कर लिया था। किंतु शूद्रों के मामले में ऐसा नहीं है। प्रारंभिक वैदिक साहित्य में उनकी कोई चर्चा नहीं है। किंतु परवर्ती वैदिक साहित्य में इसकी भरमार है। इससे यह पता चलता है कि शूद्र लोग दासों और दस्युओं से भिन्न थे।

## IV

क्या शूद्र अनार्य थे? इस सम्बंध में मान्यवर काणे कहते हैं–[1]

> ''ब्राह्मण ग्रंथों के समय में और धर्मसूत्रों में भी आर्य और शूद्र के बीच एक स्पष्ट अंतर-रेखा खिंची हुई थी। तांड्य ब्राह्मण में एक झूठी लड़ाई की बात कही गई है कि शूद्र और आर्य इस प्रकार लड़ते हैं कि जीत आर्य की ही हो। आपस्तम्भ धर्मसूत्र (1, 1.3.40-41) में लिखा है कि यदि कोई ब्रह्मचारी भिक्षा में प्राप्त अपना सारा भोजन स्वयं नहीं खा सकता, तो वह इसे किसी आर्य के पास (उसके खाने के लिए) रख सकता है अथवा वह इसे किसी शूद्र को दे सकता है जो (उसके गुरु का) दास है। इसी प्रकार गौतम, 10, 69 में शूद्र के लिए 'अनार्य' शब्द का प्रयोग किया गया है।''

जहां तक शूद्र और आर्य के बीच अंतर रेखा का सवाल है, तो इस विषय का गहन विवेचन होना चाहिए।

शूद्र लोग अनार्य थे, इस तर्क की पुष्टि निम्नलिखित कथनों से होती है–

अथर्ववेद, 4, 20.4–''सहस्र आंखों वाला देवता इस बूटी को मेरे दाहिने हाथ में रखे, जिससे मैं शूद्र और आर्य, सभी को देखूं।''

काठक संहिता, 34, 5–''शूद्र और आर्य चमड़ी को लेकर झगड़ते हैं। देवता और दैत्य सूर्य को लेकर लड़े; देवों ने इस (सूर्य) को जीत लिया। (शूद्र के साथ झगड़ने के इस कृत्य से) आर्य तो आर्य वर्ण को जिताता है, स्वयं को सफल बनाता है। आर्य वेदी के अंदर रहे, शूद्र वेदी के बाहर। चमड़ी उज्ज्वल, सूर्य के रूप में होगी।''

---

*1. काणे, धर्म शास्त्र, 2(1), पृष्ठ 35*

वाजसनेयी संहिता, 23, 30-31–"जब हिरन खेत में जौ खा जाता है, तो खेत का स्वामी उस पशु के पोषण से प्रसन्न नहीं होता; जब शूद्र स्त्री किसी आर्य से प्रेम करती है, तो उसका पति उससे प्राप्त होने वाली समृद्धि की लालसा नहीं करता।"

शूद्र और आर्य को पृथक और विरोधी बताने वाले ये छंद इस सिद्धांत का आधार हैं कि शूद्र लोग अनार्य हैं। किंतु, इस तरह का निष्कर्ष निकालना जल्दबाजी होगी। इन कथनों से कोई निष्कर्ष निकालने से पहले दो बातें दिमाग में रखनी होंगी। पहले तो यह बात दिमाग में रखनी होगी कि पूर्वोक्त कथनों के अनुसार और ऋग्वेद के साक्ष्य के अनुसार, आर्यों की दो श्रेणियां हैं, वैदिक और अवैदिक। इस तथ्य को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि एक श्रेणी के आर्य के लिए दूसरी श्रेणी के आर्य के बारे में इस प्रकार बात करना बहुत आसान हो सकता है मानो वे दोनों पृथक और विरोधी हों। इस प्रकार व्याख्या करने पर, शूद्रों के आर्यों के विरुद्ध रखने वाले उपर्युक्त कथनों का यह अर्थ नहीं निकलता कि वे आर्य नहीं थे। वे एक भिन्न पंथ अथवा वर्ण के आर्य थे।

हिंदुओं के पवित्र ग्रंथों में जो निम्नलिखित कथन मिलते हैं, उनसे यह समझा जा सकता है कि ऐसा संभव है–

(1) अथर्ववेद (19, 32.8)–"हे दूर्बा, मुझे ब्राह्मण, राजन्य (अर्थात क्षत्रिय), शूद्र, आर्य, प्रियजन और देख पाने वाले प्रत्येक व्यक्ति का प्रिय बना।"

(2) अथर्ववेद (19, 62.1)–"मुझे देवताओं में प्रिय बना। मुझे राजकुमारों में प्रिय बना; मुझे प्रत्येक देखने वाले का प्रिय बना, मुझे शूद्र और आर्य का प्रिय बना।"

(3) वाजसनेयी संहिता (18, 48)–"(हे अग्नि), हमें ब्राह्मणों में, राजाओं में, वैश्यों में और शूद्रों में तेज दो; मुझे तेज पर तेज दो।"

(4) वाजसनेयी संहिता (20, 17)–"हमने गांव में, जंगल में, सभा में, अपनी इंद्रियों से, शूद्र अथवा आर्य के विरुद्ध जो भी पाप किया है, हममें से (याजक और उसकी पत्नी में से) किसी ने भी जो भी पाप (दूसरे के प्रति) अपने कर्तव्य के मामले में किया है–उस पाप के आप विनाशक हों।"

(5) वाजसनेयी संहिता (18, 48)–"जब मैं ये शुभ वचन लोगों से, ब्राह्मण और राजन्य से, शूद्र और आर्य और मेरे अपने शत्रु से कहूं, तो मैं देवताओं का और दक्षिणा देने वाले का, यहां इस लोक में, प्रिय बनूं। मेरी यह इच्छा पूरी हो। वह (मेरा शत्रु) मेरे अधीन हो।"

इन कथनों से क्या स्पष्ट होता है? पहले कथन में ब्राह्मण और आर्य में भेद किया गया है। क्या यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मण लोग अनार्य थे? दूसरे कथनों में शूद्रों के प्रेम और सद्भाव की प्रार्थना की गई है। यदि शूद्र एक आदिम आदिवासी अनार्य था, तो क्या

ऐसी प्रार्थना की हम संकल्पना भी कर सकते हैं? जिन कथनों को विश्वास का आधार माना गया है उनसे यह प्रमाणित नहीं होता कि शूद्र लोग अनार्य थे।

धर्मसूत्र शूद्र को अनार्य कहते हैं और वाजसनेयी संहिता के कथनों में शूद्र स्त्री को घृणा का पात्र बनाया गया है, तो इनका कोई अर्थ है नहीं। धर्मसूत्र के साक्ष्य को स्वीकार करने के विरोध में दो तर्क हैं। पहली बात तो यह कि धर्मसूत्र और अन्य ग्रंथ शूद्रों के शत्रुओं द्वारा लिखे गए हैं, जैसा कि हम आगे स्पष्ट करेंगे। इसलिए उनका कोई प्रामाणिक महत्त्व नहीं है। यह भी संदिग्ध है कि ऐसे शूद्र विरोधी कथन मात्र शाप-वचन हैं अथवा तत्कालीन तथ्यों की प्रस्तुति हैं। ये दूसरे ग्रंथों में दिए गए तथ्यों के विपरीत जाते दिखाई देते हैं।

धर्मसूत्रों में कहा गया है कि शूद्र को उपनयन संस्कार का और जनेऊ पहनने का अधिकार नहीं है। किंतु संस्कार गणपति में शूद्र को उपनयन के योग्य माना गया है।[1]

धर्मसूत्र कहते हैं कि शूद्र को वेद अध्ययन का अधिकार नहीं है। किंतु छांदोग्य उपनिषद (4, 1-2) में जनश्रुति की कथा वर्णित है जिसे गुरु रैक्व में वेद विद्या सिखाई थी। यह जनश्रुति एक शूद्र था। यही नहीं, **कवश ऐलुष**[2] भी शूद्र था। वह एक ऋषि था और ऋग्वेद के दसवें मंडल की कई ऋचाओं का लेखक भी था।

धर्मसूत्र कहते हैं कि शूद्र को वैदिक संस्कार और यज्ञ करने का कोई अधिकार नहीं है। किंतु पूर्व मीमांसा[3] के लेखक जैमिनी के अनुसार **बदरी** नाम के एक प्राचीन गुरु ने यह विचार सामने रखा कि शूद्र भी वैदिक यज्ञ कर सकते हैं। भारद्वाज श्रौत सूत्र (5, 28) में यह स्वीकार किया गया है कि एक अन्य चिंतन संप्रदाय है जिसके अनुसार शूद्र वैदिक यज्ञ संपन्न करने के लिए आवश्यक तीन पवित्र अग्नि जला सकता है। इसी प्रकार कात्यायन स्रौत सूत्र (1, 4.16) के टीकाकार ने भी स्वीकार किया है कि कुछ वैदिक पाठों के अनुसार शूद्र वैदिक संस्कार संपन्न करने योग्य थे।

धर्मसूत्र कहते हैं कि शूद्र को दिव्य सोम पान का अधिकार नहीं है। किंतु अश्विनी कुमारों की कथा में, इस बात के निश्चित प्रमाण हैं कि शूद्र को दिव्य सोम पीने का अधिकार था। कथा के अनुसार अश्विनी कुमारों ने एक बार सुकन्या को उस समय देख लिया जब वह अभी-अभी नहाई थी और उसके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था। सुकन्या एक युवती थी जिसका विवाह च्यवन नाम के एक ऋषि से हुआ था, जो विवाह के समय इतने वृद्ध थे कि कभी भी मर सकते थे। अश्विनी कुमार सुकन्या के सौंदर्य पर मोहित हो गए और बोले, "हम दोनों में से किसी को अपना पति स्वीकार कर लो। यह तुम्हें शोभा नहीं देता कि अपने यौवन को व्यर्थ नष्ट करो।" सुकन्या ने यह कहते हुए मना कर दिया कि "मैं अपने पति की समर्पिता हूं।" उन्होंने उससे फिर बात की, और इस बार उन्होंने उसके

*1. मैक्स मूलर द्वारा 'एंशिएंट संस्कृत लिटरेचर' (1860) में उल्लिखित, पृष्ठ 207*

*2. मैक्स मूलर द्वारा 'एंशिएंट संस्कृत लिटरेचर' (1860) में उल्लिखित, पृष्ठ 58*

*3. अध्याय 6, पद 1, सूत्र 27*

समक्ष एक प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहा, "हम दोनों जाने-माने दिव्य चिकित्सक (वैद्य) हैं। हम तुम्हारे पति को युवा और सुंदर बना देंगे। तब तुम हममें से एक को अपना पति चुन लो।" उसने अपने पति के पास जाकर उसे उनके प्रस्ताव के विषय में बताया। च्यवन ने सुकन्या से कहा, "तुम ऐसा ही करो"; और वह प्रस्ताव मान लिया गया और अश्विनी कुमारों ने च्यवन को जवान बना दिया। इसके बाद यह प्रश्न उठा कि अश्विनी कुमारों को देवताओं के पेय सोम को पीने का अधिकार था। इंद्र ने यह कहते हुए आपत्ति की कि अश्विनी कुमार शूद्र थे और इसलिए उन्हें सोमपान का अधिकार नहीं था। अश्विनी कुमारों से अक्षय यौवन प्राप्त कर चुके च्यवन ने इस विरोध को दरकिनार करते हुए इंद्र को बाध्य किया कि वे उन कुमारों को सोम दें।[1]

शूद्र लोग अनार्य हैं, इस विषय में धर्मसूत्रों के साक्ष्य को क्यों नहीं स्वीकार किया जा सका, इसका एक और कारण है। पहली बात तो यह कि यह मनु के मत के विपरीत है। शूद्र लोग आर्य थे अथवा अनार्य, इस विषय पर कोई निर्णय करते समय इन श्लोकों पर ध्यानपूर्वक विचार किया जाए–

> "यदि ब्राह्मण से शूद्रा को कन्या उत्पन्न हो और वह उत्तम स्त्री हो जाए तो वह हीन कन्या भी सातवें जन्म में ब्राह्मण जाति की हो जाती है।"
>
> जैसे शूद्र एक ब्राह्मण हो जाता है और ब्राह्मण एक शूद्र हो जाता है, वैसे ही क्षत्रिय और वैश्य से उत्पन्न शूद्र भी क्षत्रिय और वैश्य हो जाते हैं।"
>
> "ब्राह्मण से शूद्रा को उत्पन्न और शूद्र द्वारा ब्राह्मणी को उत्पन्न संतान में कौन-सी श्रेष्ठ है, इसका उत्तर यह है कि ब्राह्मण से शूद्रा को उत्पन्न संतान ही गुणी होने के कारण श्रेष्ठ है, किंतु शूद्र से ब्राह्मणी को उत्पन्न होने वाली संतान निश्चय ही नीच होती है।"[2]

मनु संहिता का श्लोक 64 गौतम धर्मसूत्र (22) में भी मिलता है। इसकी सही व्याख्या को लेकर कुछ विवाद दिखाई देता है। इसकी विभिन्न व्याख्याओं के विषय में बुहलर कहते हैं–

> "... ... ... इसका अर्थ यह होता है कि यदि ब्राह्मण और शूद्रा की कन्या और उसकी संतानें सभी ब्राह्मणों से विवाह करती हैं, तो मूल युगल की छठवीं पीढ़ी की कन्या की संतानें ब्राह्मण होंगी। जहां यह व्याख्या गौतम के समांतर अंश पर हरदत्त की टीका से मेल खाती है, वहीं ... ... ... ने इस श्लोक की भिन्न व्याख्या की है। उनके अनुसार यदि ब्राह्मण पुरुष और शूद्र स्त्री से उत्पन्न पारशव बालक किसी सच्चरित्र और गुणवती, अति श्रेष्ठ पाराशव कन्या से विवाह करता है, और यदि उनके वंशज भी यही करते हैं, तो उनकी छठवीं पीढ़ी में जन्मा बच्चा ब्राह्मण होगा। नंदन ने अपने मत के पक्ष में बौधायन, 1,

---

*1. वी. फॉसबॉल, इंडियन माइथोलॉजी, पृष्ठ 128-134*

*2. अध्याय 10, श्लोक 64-67*

16.13-14 से उद्धृत किया है (जो 'सैक्रिड बुक्स ऑव दि ईस्ट' के मेरे अनुवाद में छूट गया है)—'निषाद से निषादी को उत्पन्न होने वाली संतान पांच पीढ़ी के अंदर शूद्रत्व को समाप्त कर देती है; उस (पांचवीं पीढ़ी के वंशज) को दीक्षा दी जा सकती है; छठवीं पीढ़ी के लिए यज्ञ किया जा सकता है।' मद्रास की एक नई पांडुलिपि में बौधायन के इस अंश के पाठ की पुष्टि होती है, और इससे यह स्पष्ट होता है कि बौधायन इस पक्ष में थे कि ब्राह्मण और शूद्रा से उत्पन्न बालक को आर्यों के स्तर तक उठने दिया जाए। यह भी असंभव नहीं है कि मनु के श्लोक का भी यही अर्थ हो और इसका अनुवाद इस प्रकार दिया जाए, 'यदि ब्राह्मण और शूद्रा की संतान एक अतिश्रेष्ठ (ब्राह्मण पुरुष अथवा पाराशव कन्या) से बच्चे उत्पन्न करती है, तो नीच (जाति) सातवीं पीढ़ी में सर्वोच्च जाति में पहुंच जाती है।''

व्याख्या चाहे जो भी हो, तथ्य तो यही रहता है कि सातवीं पीढ़ी में[1] एक शूद्र कतिपय परिस्थितियों में ब्राह्मण बन सकता था। यदि शूद्र आर्य नहीं होता तो इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

शूद्र को अनार्य बताना अर्थशास्त्र के संप्रदाय द्वारा व्यक्त मत के विपरीत है। इस संप्रदाय के प्रतिनिधि के नाते इस विषय में कौटिल्य का मत अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। दासता के नियम निर्धारित करने के संदर्भ में कौटिल्य का कहना है—[2]

> ''यदि किसी ऐसे शूद्र का कोई कुटुंबी उस शूद्र को बेच दे अथवा बंधक रख दे जो जन्मजात दास नहीं है, और जो वयस्क नहीं है अपितु जन्म से आर्य है, ऐसे कुटुंबी पर 12 पण का दंड लगे।
>
> धोखे से किसी दास का पैसा ले लेने वाला अथवा उसके आर्य होने के नाते उसे मिले (आर्यभव) विशेषाधिकारों से उसे वंचित करने वाला (किसी आर्य को दास बनाने पर लगने वाले) दंड का आधा दे।
>
> वांछित बंधक राशि प्राप्त हो जाने पर दास को मुक्त नहीं करने पर वह 12 पण दंड दे; अकारण किसी दास को बंद रखने वाले को भी ऐसे ही दंडित किया जाए।
>
> स्वयं को दास के रूप में बेच देने वाले व्यक्ति की संतान आर्य हो। दास को अपने स्वामी के काम के प्रति पूर्वग्रह से मुक्त रहते हुए केवल अपनी ही कमाई पर नहीं बल्कि अपने पिता की विरासत पर भी अधिकार हो।''

यह है कौटिल्य का मत, जो शूद्र को स्पष्ट शब्दों में आर्य कहते हैं।

---

1. *प्राचीन काल में यह एक सार्वभौम नियम हो गया था कि अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए व्यक्ति को छह अनवरत पीढ़ियों तक अपने कुल की अकलंक परंपरा को दिखना होगा—देखिए डब्ल्यू.ई. हर्न, दि आर्य हाउसहोल्ड, अध्याय 8*
2. *ग्रंथ 3, अध्याय 13*

## V

अब शूद्रों को गुलाम बनाए जाने की बात पर आएं, तो यह यदि झूठ नहीं तो बकवास तो है ही। यह दो मान्यताओं पर आधारित है। पिछली यह कि ऋग्वेद में दासों को गुलाम बताया गया है। दूसरी यह कि दास और शूद्र एक ही हैं।

यह सच है कि ऋग्वेद में दास शब्द का प्रयोग गुलाम अथवा नौकर के रूप में हुआ है। किंतु इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग मात्र पांच बार हुआ है, उससे अधिक नहीं। और यदि इसका प्रयोग पांच बार से अधिक हुआ भी हो, तो क्या इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि शूद्रों को गुलाम बनाया गया था? जब तक यह सिद्ध नहीं हो जाता कि ये दोनों एक ही जन थे, जब तक इस विचार को अनर्गल ही कहा जाएगा। यह ज्ञात तथ्यों के विपरीत है।

शूद्र लोग राजाओं के राज्याभिषेक में भाग लेते थे। उत्तर वैदिक अथवा ब्राह्मण ग्रंथों के काल में, राजा का राज्याभिषेक वास्तव में प्रजा द्वारा राजा को राजत्व का प्रस्ताव होता था। इस काम को प्रजा के प्रतिनिधि संपन्न करते थे जिन्हें रत्नी कहते थे। राज्याभिषेक में इन रत्नियों उपस्थिति की अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती थी। ये इसलिए रत्नी कहलाते थे क्योंकि इनके पास राजत्व का प्रतीक रत्न होता था। रत्नी जब राजा को राजत्व का रत्न सौंप देते थे तभी राजा को उसका राजत्व प्राप्त होता था, और राजत्व प्राप्त करने के बाद राजा प्रत्येक रत्नी के घर जाकर उसे भेंट देता था। यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि उनमें से एक रत्नी अनिवार्य रूप में शूद्र होता था।[1]

नीतिमयूख के लेखक नीलकंठ ने एक परवर्ती काल के राज्याभिषेक समारोह का वर्णन किया है। उसके अनुसार, चार मुख्य मंत्री, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नए राजा का अभिषेक करते थे। फिर प्रत्येक वर्ण और उनसे भी नीची जातियों के प्रमुख जन पवित्र जल से राजा का अभिषेक करते थे। फिर द्विज राजा का जयघोष करते थे।[2]

राजा की ताजपोशी के समय ब्राह्मणों के साथ-साथ शूद्रों को भी उपस्थित रहने का निमंत्रण दिया जाता था, इसका प्रमाण पांडवों के सबसे बड़े भाई युधिष्ठिर के राजतिलक के वर्णन में मिलता है जो महाभारत में दिया गया है।[3]

शूद्र लोग प्राचीन काल की दो राजनीतिक सभाओं, जनपद और पौर के सदस्य थे और इनका सदस्य होने के नाते शूद्र को ब्राह्मण से भी विशेष सम्मान प्राप्त होता था।[4]

मनुस्मृति (6, 61) और विष्णु स्मृति (21, 64) के अनुसार भी यही स्थिति थी। अन्यथा, मनु के इस कथन का कोई अर्थ नहीं है कि ब्राह्मण को उस देश में नहीं रहना चाहिए जिसका राजा शूद्र हो। इसका तो यह अर्थ हुआ कि शूद्र राजा थे।

---

*1. इसके लिए देखिए, जायसवाल, हिंदू पॉलिटी (1943), पृष्ठ 200-201*

*2. इसके लिए देखिए, जायसवाल, हिंदू पॉलिटी (1943), पृष्ठ 223*

*3. महाभारत, सभा पर्व, अध्याय 33, पद 41-42*

*4. देखिए, जायसवाल, हिंदू पॉलिटी, पृष्ठ 248*

महाभारत के शांति पर्व में[1] युधिष्ठिर को राजनीति का पाठ पढ़ाते हुए भीष्म कहते हैं—

> "मैं तुम्हें बताता हूं कि तुम्हें किस प्रकार के मंत्रियों को नियुक्त करना चाहिए। तुम्हें वेदों के ज्ञाता, गरिमा-बोध से युक्त, स्नातक श्रेणी के, और पवित्र आचरण वाले चार ब्राह्मणों को, बलशाली और शस्त्रास्त्र प्रयोग में निपुण आठ क्षत्रियों को, इक्कीस धनी वैश्यों को, और तीन विनम्र तथा पवित्र आचरण वाले और दैनिक कर्तव्यों के प्रति समर्पित शूद्रों को, और पुराणों के ज्ञात तथा आठ गुणों से युक्त एक सूत को अपना मंत्री बनाना चाहिए।"

इससे प्रमाणित होता है कि शूद्र मंत्री थे और उनकी संख्या ब्राह्मणों के लगभग बराबर थी।[2]

शूद्र निर्धन और नीच नहीं थे। वे धनी थे। इस तथ्य की पुष्टि मैत्रायणी संहिता (5, 2.7.10) और पंचविंश ब्राह्मण (6, 1.11) से होती है।

इस प्रश्न के दो अन्य पहलू भी हैं। यदि इसे सच मान भी लिया जाए कि शूद्रों को गुलाम बनाया गया था, तो इसका महत्त्व क्या है? इसका थोड़ा-बहुत महत्त्व तब होता यदि आर्यों को गुलामी का ज्ञान नहीं होता अथवा वे आर्यों को गुलाम बनाने के लिए तैयार नहीं थे। किंतु सच तो यह है कि आर्यों को गुलामी के बारे में जानकारी थी और उन्होंने आर्यों को गुलाम बन जाने दिया। यह ऋग्वेद (7, 86.7; 8, 19.36 और 8, 56.3) से स्पष्ट है। इस स्थिति में उन्होंने विशेष तौर पर शूद्रों को ही गुलाम बनाना क्यों चाहा? इससे भी महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि उन्होंने शूद्र गुलामों के लिए अलग नियम क्यों बनाए?

संक्षेप में, पाश्चात्य सिद्धांत से हमें हमारे इन प्रश्नों के उत्तर पाने में मदद नहीं मिलती कि शूद्र कौन थे और वे चौथा वर्ण कैसे बने?

---

1. *रॉय द्वारा अनूदित अंश, खंड 2, पृष्ठ 197 का अनुवाद*
2. *भीष्म सभी वर्णों के प्रतिनिधित्व में विश्वास करते थे।*

अध्याय : सात

# शूद्र कौन थे?

शूद्र यदि एक अनार्य आदिवासी प्रजाति के नहीं थे तो फिर कौन थ? अब इस सवाल का सामना करना होगा। मैं जो सिद्धांत प्रस्तुत करना चाहता हूं उसे निम्नलिखित तीन मतों में रखा जा सकता है–

1. शूद्र लोग आर्य थे।
2. शूद्र लोग क्षत्रिय वर्ण के थे।
3. शूद्र इतने महत्त्वपूर्ण क्षत्रिय व्रर्ण के थे कि प्राचीन आर्य समुदायों के कुछ सर्वाधिक ख्यात और शक्तिशाली राजा शूद्र थे।

शूद्रों का उत्पत्ति सम्बंधी यह दावा यदि क्रांतिकारी नहीं तो चौंकाने वाला तो अवश्य ही है। यह इतना चौंकाने वाला है कि बहुत से लोग इसे मानने को तैयार ही नहीं होंगे, भले ही इसके पक्ष में पर्याप्त साक्ष्य हों। मेरा दायित्व तो साक्ष्य प्रस्तुत करना है, लोगों का काम यह तय करना है कि इसमें कितना दम है।

मेरे इस दावे, इस सिद्धांत का पहला आधार साक्ष्य महाभारत के शांति पर्व के अध्याय 60 के श्लोक 38-40 के इस अंश में मिलता है–

> ''हमने यह सुना है कि प्राचीन काल में पैजवन नाम के एक शूद्र ने (अपने यज्ञ में) दस लाख पूर्णपत्रों की दक्षिणा दी जो ऐंद्राग्नि के आदेशानुसार थी।''

इस अंश में तीन महत्त्वपूर्ण बातें कही गई हैं–(1) पैजवन एक शूद्र था, (2) इस शूद्र पैजवन ने यज्ञ किया, और (3) ब्राह्मणों ने उसके लिए यज्ञ किया और उससे दक्षिणा ली।

उपर्युक्त अंश महाभारत के मान्यवर रॉय द्वारा संपादित संस्करण से लिया गया है। सबसे पहले तो यह निश्चित करना होगा कि यह पाठ शुद्ध है अथवा इसके भिन्न पाठ भी हैं। जहां तक इस ग्रंथ की प्रामाणिकता का सवाल है, तो इस सम्बंध में मान्यवर रॉय[1] का कहना है–

> ''जहां तक मेरे संस्करण का सवाल है तो यह बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसायटी के संस्करण पर आधारित है, जो लगभग पैंतालीस वर्ष पूर्व, मेरा मानना है; एक प्रतिष्ठित अंग्रेज प्राच्यविद की सहायता बंगाल के कुछ विद्वान पंडितों की देखरेख में प्रकाशित हुआ था। भारत के सभी हिस्सों से (दक्षिण से भी) पांडुलिपियां ली गई थीं और इनका सावधानीपूर्वक मिलान किया गया था।

---

*1. सुक्थांकर मेमोरियल संस्करण, खंड 1, पृष्ठ 43-43, में उद्धृत।*

यद्यपि इसका संपादन इतना सावधानीपूर्वक हुआ है, फिर भी मैंने सोसाइटी के इस संस्करण का अंधानुकरण नहीं किया है। मैंने इसका मिलान सावधानीपूर्वक महाराजा बर्दवान के बंगाली संस्करण से किया है जिसका संपादन और भी ध्यानपूर्वक हुआ है। बर्दवान के पंडितों ने एक-एक श्लोक की शुद्धता के लिए भारत के विभिन्न हिस्सों से (दक्षिण से भी) लगभग 18 पांडुलिपियां प्राप्त कर उनका ध्यानपूर्वक मिलान किया था।''

महाभारत के समीक्षात्मक संस्करण के विद्वान संपादक प्रो. सुक्थांकर ने, महाभारत के अनेक संस्करणों की जांच करने के बाद यह निष्कर्ष दिया कि–[1]

''प्रथम संस्करण (कोलकाता–1856) लगभग एक शताब्दी बाद आज भी सर्वोत्तम संस्करण है।''

यद्यपि महाभारत के मान्यवर रॉय द्वारा संपादित संस्करण की प्रामाणिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता, फिर भी आलोचकों का यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इस पाठ के पीछे और किस पांडुलिपि का साक्ष्य है जिसके आधार पर शूद्रों की उत्पत्ति का यह नया सिद्धांत प्रस्तुत किया गया है। इस तरह की विवेचना करने के लिए दो बातों पर विचार करना आवश्यक है। एक[2] तो यह कि महाभारत की ऐसी अकेली कोई पांडुलिपि नहीं है जिसमें सभी अठारह पर्वों की पांडुलिपियों का समावेश हो। प्रत्येक पर्व को एक अलग इकाई के रूप में लिया गया है, जिसका परिणाम यह हुआ कि विभिन्न पर्वों की प्रतियों की संख्या में बहुत बड़ा अंतर है। इसलिए जब हम यह तय करने बैठते हैं कि सही पाठ कौन-सा है, तो उसके लिए आधार बनाई जाने वाली पांडुलिपियों की संख्या प्रत्येक पर्व के लिए अलग-अलग होगी ही।

दूसरी[3] यह कि इस तथ्य पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि महाभारत का पाठ दो भिन्न रूपों में चलता चला आ रहा है–एक तो उत्तरी संस्करण और एक दक्षिणी संस्करण, जो क्रमशः आर्यावर्त और दक्षिणपथ की विशेषताओं से युक्त हैं।

यह स्पष्ट है कि इन पांडुलिपियों की जांच करते समय अनेक पांडुलिपियों का मिलान करना चाहिए, और इनमें उत्तरी और दक्षिणी दोनों ही संस्करणों की पांडुलिपियों का उचित प्रतिनिधित्व होना चाहिए। इन बातों को ध्यान में रखते हुए, यहां हम हमारे लिए प्रासांगिक महाभारत के, शांति पर्व के अध्याय 60 के श्लोक 38 के मिलान[4] के परिणाम को प्रस्तुत कर रहे हैं–

---

1. *सुक्थांकर मेमोरियल संस्करण, खंड 1, पृष्ठ 131*
2. *सुक्थांकर मेमोरियल संस्करण, खंड 1, पृष्ठ 14*
3. *सुक्थांकर मेमोरियल संस्करण, खंड 1, पृष्ठ 9-42*
4. *मैं भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट का आभारी हूं कि उन्होंने मुझे उनके मिलान पत्र का प्रयोग करने की अनुमति दी। कोष्ठक में जो अक्षर अंकित हैं वे इंस्टीट्यूट द्वारा पांडुलिपि को दी गई सूचक संख्याएं हैं। 'एन' अथवा 'एस' इस बात के सूचक हैं कि पांडुलिपि उत्तर (एन) की है अथवा दक्षिण (एस) की। 'के' का अर्थ है कुंभकोणम।*

1. शूद्र : पैजवनो नाम (के)एस
2. शूद्र : पैलवनो नाम (एम/1:एम/2)एस
3. शूद्र : यैलननो नाम (एम/3:एम/4)एस
4. शूद्र : यैजननो नाम (एफ)
5. शूद्रोपि यजने नाम (एल)
6. शूद्र : पौंजलक नाम (टीसी)एस
7. शुद्धो वैभवनो नाम (जी)एन
8. पुरा वैजवनो नाम (ए, डी/2)
9. पुरा वैजननो नाम (एम)एन

यहां हमने नौ पांडुलिपियों के मिलान का परिणाम दिया है। क्या नौ पांडुलिपियां उस ग्रंथ के लिए पर्याप्त हैं जिसके अनेक अलग-अलग पाठ हैं? यह सच है कि महाभारत के विभिन्न पर्वों के समीक्षात्मक संस्करण के लिए ली गई पांडुलिपियों की संख्या नौ से ऊपर है। पूरे महाभारत में ग्रंथ के लिए पांडुलिपियों की न्यूनतम संख्या केवल दस[1] है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि नौ की संख्या अपर्याप्त है। नौ पांडुलिपियां दो भौगोलिक वर्गों में आती हैं, उत्तरी और दक्षिणी। एम/1, एम/2, एम/3, और एम/4 और टीसी का सम्बंध दक्षिणी संस्करण से है। ए, एम, जी और डी/2 का सम्बंध उत्तरी संस्करण से है। इसलिए, पांडुलिपियों का चयन विशेषज्ञों द्वारा निर्धारित दो परीक्षणों पर खरा उतरता है।

इन पाठों की जांच से यह स्पष्ट होता है कि–

1. पैजवन के वर्णन में भिन्नता है;
2. पैजवन के नाम में भिन्नता है;
3. नौ में से छह पाठों में उसे शूद्र बताया गया है। एक पाठ में उसे शुद्ध बताया गया है और दो में उसका वर्ण बताने के बजाय उसके काल का उल्लेख किया गया है। 'पुरा' शब्द का प्रयोग किया गया है।
4. जहां तक नाम का सवाल है तो नौ में से किन्हीं भी दो पांडुलिपियों में समानता नहीं है। प्रत्येक में अलग-अलग पाठ हैं।

इस परिणाम को देखते हुए, सवाल यह उठता है कि असली पाठ क्या है। पहले नाम से सम्बंधित पाठों को लें, तो यह स्पष्ट है कि यह ऐसा विषय नहीं है जिसमें अर्थ का सवाल संलिप्त है। इसमें व्याख्या बनाम पाठ-संशोधन जैसा कोई सवाल नहीं उठाया गया है और न ही किसी एक पाठ को प्राथमिकता दी गई है जिससे यह पता चले कि अन्य पाठों का उद्गम कैसे हुआ होगा। सवाल यह है कि सही नाम कौन-सा है और कौन-से पाठ लेखन करने वालों की लेखन सम्बंधी भूल हैं। इसमें कोई संदेह नहीं दिखता कि सही पाठ पैजवन है। इसकी पुष्टि दक्षिणी और उत्तरी दोनों ही संस्करणों से होती है। क्योंकि सं. 8 में अंकित वैजवनो भी पैजवनो ही है। शेष सभी उसी के पाठांतर हैं जिनका कारण लिखने वालों की

---

*1. सुक्थांकर, खंड 1, पृष्ठ 14*

अज्ञानता है जो मूल प्रति को सही-सही पढ़ नहीं पाए और उन्होंने पाठ की रचना अपने ही तरीके से की।

अब पैजवन के वर्णन की बात करें, तो यह स्वीकार करना ही होगा कि 'शूद्रः' को बदलकर 'पुरा' करना मात्र संयोग नहीं है। लगता है यह जानबूझकर किया गया है। यह साफ तौर पर कहना मुश्किल है कि यह बदलाव क्यों हुआ। दो बातें बिलकुल स्पष्ट लगती हैं। पहली तो यह कि बदलाव नितांत स्वाभाविक लगता है। दूसरी बात यह कि यह बदलाव इस निष्कर्ष के विरोध में नहीं जाता कि पैजवन एक शूद्र था। यदि यह ध्यान में रखा जाए कि श्लोक 38-40 किस संदर्भ में लिखे गए हैं, तो उपर्युक्त निष्कर्ष स्पष्ट हो जाएगा। यह संदर्भ उनसे पहले के इन श्लोकों से स्पष्ट हो जाएगा—

> "शूद्र को चाहिए कि वह अपने स्वामी को कभी न छोड़े चाहे उसका स्वामी किसी भी प्रकार की और कितनी ही घोर विपत्ति में क्यों न पड़ जाए। यदि उसका स्वामी निर्धन हो जाए, तो शूद्र नौकर को अत्यधिक उत्साह से उसका साथ देना चाहिए। शूद्र की अपनी कोई संपदा नहीं होती। उसके पास जो कुछ भी होता है वह उसके स्वामी का होता है। यज्ञ को तीन अन्य वर्णों का कर्तव्य बताया गया है। शूद्र को भी इसका आदेश दिया गया है, हे भारत! किंतु उसे स्वाहा और स्वधा अथवा अन्य किसी भी मंत्र का उच्चार करने का अधिकार नहीं है। इस कारण से, शूद्र को पाकयज्ञों में देवों की उपासना करनी चाहिए, जो गौण यज्ञ होते हैं। ऐसे यज्ञों में पूर्णपत्र दक्षिणा की व्यवस्था है।"

श्लोक 38-40 को उनसे पहले के इन श्लोकों के संदर्भ में देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह पूरा अंश शूद्र के विषय में है। पैजवन की कथा तो मात्र एक उदाहरण है। इस पृष्ठभूमि में, पैजवन से पहले 'शूद्र' शब्द को दोहराना अनावश्यक है। इससे यह बात समझ में आ जाती है कि इन दो पांडुलिपियों में पैजवन से पहले शूद्र शब्द क्यों नहीं आया है। शूद्र की जगह पुरा शब्द के प्रयोग का कारण ढूंढ़ते समय यह याद रखना चाहिए कि पैजावन की कथा अत्यंत प्राचीन काल की है। इसलिए, लिखने वाले के लिए ऐसा सोचना बिलकुल स्वाभाविक था कि इस तथ्य को स्पष्ट तौर पर लिख देना उचित रहेगा। लिखने वाले को यह ज्ञान था कि पैजवन को शूद्र बताना आवश्यक नहीं था क्योंकि संदर्भ से यह स्पष्ट था, इसलिए उसने इस पर जोर देना जरूरी नहीं समझा। दूसरी ओर, लिखने वाले को यह पता था कि पैजवन बहुत प्राचीन काल में हुआ था और संदर्भ से यह तथ्य बहुत स्पष्ट नहीं होता था, इसलिए उसने 'पुरा' शब्द जोड़ना अधिक उचित समझा क्योंकि यह आवश्यक था और 'शूद्रः' शब्द को छोड़ देना उचित समझा क्योंकि वह संदर्भ के अनुसार अनावश्यक था।

यदि इस व्याख्या का ठोस आधार है, तो हम इसे सुप्रमाणित मान सकते हैं कि महाभारत के शांति पर्व में जिस व्यक्ति का उल्लेख हुआ है वह पैजवन है और यह पैजवन एक शूद्र था।

## II

अगला विचारणीय प्रश्न पैजवन की पहचान से सम्बंधित है। कौन है यह पैजवन?

यास्क के निरुक्त में[1] इसका सूत्र दिखाई देता है। निरुक्त 2, 24 में यास्क कहता है–

"ऋषि विश्वामित्र पिजवन के पुत्र सुदास के पुरोहित थे। विश्वामित्र सबके मित्र थे। सुदास महादानी था। पैजवन तो पिजवन का पुत्र था। पिजवन अर्थात जिसकी गति ईर्ष्याजनक है अथवा जिसकी चाल का अनुकरण नहीं किया जा सकता।"

यास्क के निरुक्त से हमें दो अति महत्त्वूर्ण तथ्य मिलते हैं–(1) पैजवन का अर्थ है पिजवन का पुत्र, और (2) जो व्यक्ति पिजवन का पुत्र है वह सुदास है। यास्क की सहायता से, हम इस प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ हैं–महाभारत के शांति पर्व के उक्त अंश में जिस पैजवन का उल्लेख है वह कौन है? इसका उत्तर यही है कि पैजवन तो सुदास का ही दूसरा नाम है।

अगला सवाल यह है कि यह सुदास कौन है और हम उसके बारे में क्या जानते हैं? ब्राह्मणी साहित्य को खंगालने पर सुदास नाम के तीन व्यक्तियों का पता चलता है। एक सुदास का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। उसका पारिवारिक विवरण ऋग्वेद के निम्नलिखित स्तोत्रों में मिलता है–

(1) ऋग्वेद, 7, 18.21–"हे इंद्र! अनेक राक्षसों का नाश करने वाले पराशर और वसिष्ठ तुम्हारी कामना करके घर को गए और उन्होंने तुम्हारी स्तुति की। वे अपने पालनकर्ता की अर्थात तुम्हारी मित्रता को नहीं भूले। उनके दिन सदा शोभन होते हैं।"

(2) ऋग्वेद, 7, 18.22–"हे अग्नि! मैंने इंद्र की स्तुति करके राजा देववान के नाती और पिजवन के पुत्र सुदास से रथ पाया था। मैं होता के समानन यज्ञशाला में जाता हूं।"

(3) ऋग्वेद, 7, 18.23–"पिजवन के पुत्र राजा सुदास को श्रद्धा और दान के प्रतिरूप, सोने के अलंकारों से सुशोभित, ऊंचे-नीचे स्थान में भी सीधे चलने वाले और पृथ्वी पर स्थित चार घोड़े पुत्र के समान पालनीय वसिष्ठ को पुत्र के यश के लिए ढोते हैं।"

(4) ऋग्वेद, 7, 18.24–"जिस सुदास का यश धरती पर फैला है, जिसने दाता बनकर प्रत्येक श्रेष्ठ व्यक्ति को धन दिया है, उस सुदास की स्तुति सातों लोकों में इंद्र के समान होती है। नदियों ने युद्ध में युध्यामधि नाम के शत्रु को मार डाला था।"

(5) ऋग्वेद, 7, 18.25–"हे नेता मारुतो! पिता दिवोदास के ही समान राजा सुदास की भी सेवा करो और पिजवन के पुत्र सुदास के घर की रक्षा करो। सुदास की सेना अजर और अविनाशी हो।"

दो अन्य सुदासों का उल्लेख विष्णु पुराण में हुआ। एक सुदास का उल्लेख अध्याय

1. *लक्ष्मण सरूप, द निघंटु ऐंड निरुक्त, पृष्ठ 35-36*

चार में सगर के वंशज के रूप में हुआ है। इस सुदास का सम्बंध सगर से स्थापित करने वाली वंशावली इस प्रकार है–[1]

''कश्यप की पुत्री सुमति और राजा विदर्भ की पुत्री केशिनी, ये दो पत्नियां थीं सगर की। संतानरहित होने के कारण राजा ने ऋषि और्व की सहायता मांगी। ऋषि ने यह वरदान दिया कि एक पत्नी से एक पुत्र उत्पन्न होगा जो उसका वंशवाहक होगा, और दूसरी पत्नी से साठ हजार पुत्र होंगे; और उन्होंने चयन का विकल्प उन्हीं पर छोड़ दिया। केशिनी ने एक अकेले पुत्र की मां बनने का चयन किया; सुमति ने अनेक पुत्रों की मां बनना चाहा; और कुछ ही समय बाद ऐसा हुआ कि केशिनी ने राजकुमार असमंजस को जन्म दिया जिससे वंश आगे बढ़ा; और सुमति के साठ हजार पुत्र हुए। असमंजस का पुत्र अंशुमत हुआ।

* * *

अंशुमत का पुत्र दिलीप हुआ; उसके पुत्र भगीरथ हुए जिन्होंने गंगा को धरा पर उतारा, इसलिए उसे भगीरथी कहा जाता है। भगीरथ का पुत्र नाभाग हुआ; उसका पुत्र अंबरीश हुआ; उसका पुत्र सिंधुद्वीप हुआ; उसका पुत्र अयुतश्व हुआ; उसका पुत्र ऋतुपर्ण हुआ जो नल का मित्र था और पांसा फेंकने में अत्यंत चतुर था। ऋतुपर्ण का पुत्र सर्वकाम था; उसका पुत्र सुदास था, जिसका नाम मित्रसाह भी था।''

एक अन्य सुदास का उल्लेख अध्याय 19 में पुरु के वंशज के रूप में हुआ। इस सुदास का सम्बंध पुरु से स्थापित करने वाली वंशावली इस प्रकार है–[2]

''पुरु का पुत्र जनमेजय था; उसका पुत्र प्राचीनवत था; उसका पुत्र प्रवीर; और उसका पुत्र मनस्यु हुआ; उसका पुत्र भयद; उसका पुत्र सुधुम्न हुआ; उसका पुत्र बाहुगव; उसका पुत्र शम्यति; उसका पुत्र भाम्यति हुआ; उसका पुत्र रुद्राश्य हुआ, जिसके दस पुत्र थे–रीतेयु, कक्षेयु, स्थानदिलेयु, घृतेयु, जलेयु, स्थलेयु, धनेयु, वनेयु और व्रतेयु। रीतेयु का पुत्र रंतनार हुआ, जिसके पुत्र तंशु, अप्रतीर्थ और ध्रुव थे। अप्रतीर्थ का पुत्र कण्व था, और उसका पुत्र मेधातिथि था, जिसके वंशज काण्वायन हैं। तंशु का पुत्र अनिल था; और उसके चार पुत्र थे, जिनमें दुष्यंत बड़ा था। दुष्यंत का पुत्र राजा भरत था... ...

भरत के विभिन्न पत्नियों से नौ पुत्र थे, किंतु उन्हें उनकी मांओं ने ही मार डाला क्योंकि भरत ने यह कह दिया था कि वे देखने-भालने में उस जैसे नहीं लगते, और पत्नियों को डर लगा कि वह उन्हें छोड़ देगा। तब भरत ने मारुतो को आहुति दी, और उन्होंने उसे उतथ्य की पत्नी ममता से उत्पन्न बृहस्पति के पुत्र भारद्वाज को उसे दे दिया।

* * *

*1. विल्सन द्वारा संपादित विष्णु पुराण, पृष्ठ 377-80 से उद्धृत अंश का अनुवाद।*

*2. विल्सन द्वारा संपादित विष्णु पुराण, पृष्ठ 447-456 से उद्धृत अंश का अनुवाद।*

भरत के पुत्रों के अलाभकारक (वितथ) जन्म के कारण भारद्वाज का नाम वितथ भी पड़ा। वितथ का पुत्र भवनमन्यु हुआ; उसके अनेक पुत्र हुए, जिनमें प्रमुख थे बृहत्क्षत्र, महावीर्य, नार और गर्ग। नार का पुत्र संस्कृति हुआ; उसके पुत्र रुचिराधि और रंतिदेव हुए। गर्ग का पुत्र सिनि हुआ; और उनके वंशज गार्ग्य और सैन्य कहलाए, और जन्म से क्षत्रिय होने पर भी ब्राह्मण बने। महावीर्य का पुत्र उरुक्षय था, जिसके तीन पुत्र हुए त्राश्यरूण, पुष्करन और कपि हुए, जिनमें कपि ब्राह्मण हुआ। बृहत्क्षत्र का पुत्र सुहोत्र हुआ, जिसका पुत्र हस्तिन हुआ और उसने हस्तिनापुर नगर की स्थापना की। हस्तिन के पुत्र हुए अजमेध, द्विमेध और पुरुमेध। अजमेध का एक पुत्र कण्व हुआ, जिसका पुत्र मेधातिथि हुआ, उसका अन्य पुत्र बृहदिशु हुआ, जिसका पुत्र बृहद्वासु हुआ, उसका पुत्र बृहत्कर्मण हुआ; उसका पुत्र जयद्रथ हुआ, उसका पुत्र विश्वजीत हुआ, उसका पुत्र सेनजित हुआ, जिसके पुत्र रुचिराश्व, काश्य, द्रिधाधनुष और वसहनु हुए। रुचिराश्व का पुत्र पृथुसेन हुआ; उसका पुत्र पार हुआ; उसका पुत्र निप हुआ; उसके सौ पुत्र हुए, जिनमें से प्रमुख समर था जो काम्पिल्य का शासक हुआ। समर के तीन पुत्र पार, संपार और सदाश्व हुए। पार का पुत्र पृथु हुआ; उसका पुत्र सुकीर्ति हुआ; उसका पुत्र विभ्राम हुआ; उसका पुत्र अनुह हुआ, जिसने व्यास के पुत्र शुक की पुत्री कृत्वि से विवाह किया, और उससे ब्रह्मदत्त नामक पुत्र प्राप्त हुआ; उसका पुत्र विश्वकसेन हुआ; उसका पुत्र उदकसेन हुआ; और उसका पुत्र भल्लाट हुआ।

द्विमेध का पुत्र यविनार हुआ; उसका पुत्र धृतिमत हुआ; उसका पुत्र सत्यधृति हुआ; उसका पुत्र दृधनेमि हुआ; उसका पुत्र सुपार्श्व हुआ; उसका पुत्र सुमति हुआ; उसका पुत्र सन्नतिमत हुआ; उसका पुत्र कृत हुआ, जिसे हिरण्यनाम ने योग-दर्शन की शिक्षा दी, और उसने चौबीस संहिताओं की रचना की जो सामवेद का अध्ययन करने वाले पूर्वी ब्राह्मणों के प्रयोग के लिए थीं। कृत का पुत्र उग्रोयुध था, जिसकी शक्ति से क्षत्रियों के निप वंश का नाश हुआ; उसका पुत्र क्षेम्या हुआ; उसका पुत्र सुवीर हुआ; उसका पुत्र नृपंजय हुआ; उसका पुत्र बहुरथ हुआ। ये सभी पौरव कहलाए।

अजमेध की निलिनी नाम की एक पत्नी थी, और उससे उसका एक पुत्र नील था; उसका पुत्र शांति था; उसका पुत्र सुशांति हुआ; उसका पुत्र पुरूजानु हुआ; उसका पुत्र चक्षु हुआ; उसका पुत्र हर्याश्व हुआ, जिसके पांच पुत्र हुए मुद्गल, सृंजय, बृहादिशु, प्रवीर, और काम्पिल्य। उनके पिता ने कहा, 'ये मेरे पांच (पंच) पुत्र देशों की रक्षा करने में समर्थ (अलम) हैं'; इसलिए वे पंचाल कहलाए। मुद्गल के वंशज मौदगल्य ब्राह्मण हुए; उसके बहवाश्व नामक एक पुत्र हुआ, जिसके दो जुड़वां बच्चे हुए, एक पुत्र और एक पुत्री, जिनका नाम दिवोदास और अहल्या था।

* * *

दिवोदास का पुत्र मित्रायु हुआ; उसका पुत्र च्यवन हुआ; उसका पुत्र सुदास हुआ; उसका पुत्र सौदास हुआ, जिसे सहदेव भी कहा जाता है; उसका पुत्र सोमक हुआ; उसके एक सौ पुत्र हुए जिनमें जांतु सबसे बड़ा था, और पृशत सबसे छोटा। पृशत का पुत्र द्रुपद था; उसका पुत्र धृष्टद्युम्न हुआ; उसका पुत्र धृष्टकेतु हुआ।

अजमेध के एक अन्य पुत्र का नाम रिक्ष था; उसका पुत्र संवरण हुआ; उसका पुत्र कुरु हुआ, जिसके नाम पर कुरुक्षेत्र जिला बना; उसके पुत्र सुधनुष, परीक्षित, तथा अन्य हुए। सुधनुष का पुत्र सुहोत्र हुआ; उसका पुत्र च्यवन हुआ; उसका पुत्र कृतक हुआ; उसका पुत्र उपरिचर (वसु) हुआ, जिसके सात बच्चे हुए बृहद्रथ, प्रत्याग्र, कुशाम्ब, मावेल, मत्स्य, और अन्य। बृहद्रथ का पुत्र कुशाग्र था; उसका पुत्र ऋषभ हुआ; उसका पुत्र पुष्पवत हुआ; उसका पुत्र सत्यधृत हुआ; उसका पुत्र सुधन्वा हुआ; और उसका पुत्र जांतु हुआ। बृहद्रथ के एक और पुत्र हुआ, और जन्म के समय में इसके दो भाग थे, जिन्हें जरा नाम की महिला मित्र ने जोड़ा (संधि), जिससे उसका नाम जरासंध पड़ा; उसका पुत्र सहदेव हुआ; उसका पुत्र सोमापि हुआ; उसक पुत्र श्रुतश्रवा हुआ। ये मगध के राजा हुए।''

इन तीनों सुदासों की वंशावली यहां साथ-साथ दी जा रही है जिससे इस प्रश्न के समाधान में सुविधा हो कि ये एक ही व्यक्ति हैं अथवा तीन अलग-अलग व्यक्ति—

| **ऋग्वेद में उल्लिखित सुदास** | | | **विष्णु पुराण में उल्लिखित सुदास** | |
|---|---|---|---|---|
| **7, 18.22** | **7, 18.23** | **7, 18.25** | **सगर परिवार में** | **पुरु परिवार में** |
| देववत ↓ पिजवन ↓ सुदास | पिजवन ↓ सुदास | दिवोदास=पिजवन ↓ सुदास | ऋतुपर्ण ↓ सर्वकाम ↓ सुदास ↓ सौदास=मित्रसाह | बहकश्व ↓ दिवोदास ↓ मित्रायु ↓ च्यवन ↓ सुदास ↓ सोमक |

उपर्युक्त तालिका से दो बातें दिन के उजाले की तरह स्पष्ट हो जाती हैं। पहली बात तो यह कि विष्णु पुराण में उल्लिखित किसी भी सुदास का ऋग्वेद में उल्लिखित सुदास से कोई लेना-देना नहीं है। दूसरी बात यह स्पष्ट हो जाती है कि यदि महाभारत में उल्लिखित

पैजवन की पहचान प्राचीन काल के किसी चरित्र से की जा सकती है तो यह केवल ऋग्वेद में उल्लिखित सुदास से हो सकती है जो इसलिए पैजवन कहलाता था क्योंकि वह पिजवन का पुत्र था जो दिवोदास[1] का ही दूसरा नाम था।

मेरे लिए यह सुयोग ही है कि मेरा निष्कर्ष भी वही है जो प्रो. वेबर का है। मेरा मत महाभारत के शांति पर्व के जिस अंश पर आधारित है, उस पर टिप्पणी करते हुए प्रो. वेबर[2] कहते हैं–

> ''यहां उल्लेखनीय परंपरा यह अभिलिखित है कि पैजवन अर्थात सुदास जो अपने यज्ञों के लिए अत्यंत प्रसिद्ध था और जिसे ऋग्वेद में विश्वामित्र का संरक्षक और वसिष्ठ का शत्रु बताया गया है, वह एक शूद्र था।''

दुर्योगवश, प्रो. वेबर ने इस अंश का पूरा महत्त्व नहीं समझा। यह एक अलग मामला है। मेरा उद्देश्य तो इससे ही पूरा हो जाता है कि वह भी यही सोचते हैं कि महाभारत का पैजवन और कोई नहीं ऋग्वेद का सुदास ही था।

## III

हम सुदास अर्थात पैजवन के बारे में क्या जानते हैं?

उसके विषय में ये विवरण उपलब्ध हैं–

1. सुदास न तो दास था और न आर्य। दास और आर्य दोनों ही उसके शत्रु थे।[3] इसका मतलब यह हुआ कि वह एक वैदिक आर्य था।

2. सुदास का पिता दिवोदास था। वह संभवतः वध्रयाश्व का दत्तक पुत्र था।[4] दिवोदास एक राजा था। उसने तुर्वस और यदु[5], शम्बर[6], परव और करंज[7] और गुंगू[8] से अनेक बार युद्ध किया था। तूर्यवन और दिवोदास के बीच और उसके मित्र अयु और कुत्स के बीच युद्ध हुआ था, जिसमें जीत तूर्यवन की हुई थी।[9]

---

*1. ऋग्वेद में इस सुदास की वंशावली को लेकर कुछ कठिनाई होती है, जिसके समाधानस्वरूप देववत की पहचान दिवोदास के रूप में की गई है। यह कठिनाई मुख्य तौर पर इसलिए उत्पन्न हुई है क्योंकि छंद संख्या 22, 23 और 25 के विभिन्न पाठ उपलब्ध हैं जिसे सही ढंग से संकलित करने का कष्ट संभवतः किसी ने नहीं उठाया। चित्रव शास्त्री के (ऋग्वेद के) संस्करण में आद्योपांत पिजवन का उल्लेख है। सतवलेकर के संस्करण में आद्योपांत पैजवन है। विल्सन के संस्करण में छंद संख्या 22 और 23 में पैजवन और 25 में पिजवन है। विल्सन का संस्करण सही लगता है। क्योंकि यास्क ने भी अपने निरुक्त में पैजवन नाम होने की ओर ध्यान दिया है और उसे स्पष्ट करने का प्रयास भी किया है। यदि छंद संख्या 25 में विल्सन के पाठ को सही मान लें तो कोई कठिनाई उत्पन्न हो ही नहीं सकती। पिजवन तब दिवोदास का ही दूसरा नाम दिखाई देगा और पैजवन तब सुदास का दूसरा नाम होगा।*

*2. म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 366*

*3. ऋग्वेद, 7, 83.1*

*4. ऋग्वेद, 9, 61.2*

*5. ऋग्वेद, 6, 61.1*

*6. ऋग्वेद, 1, 130.7*

*7. ऋग्वेद, 1, 53.10*

*8. ऋग्वेद, 10, 48*

*9. ऋग्वेद, 1, 53.8; 6, 18.13*

ऐसा लगता है कि एक बार, विशेषकर तूर्यवन के युद्ध में, इंद्र उसके विरुद्ध थे। उसके पुरोहित भारद्वाज[1] थे, जिन्हें दिवोदास ने अनेक उपहार दिए थे।[2] भारद्वाज ने दिवोदास के विरुद्ध तूर्यवन से हाथ मिलाकर विश्वासघाती की भूमिका निभाई थी।[3]

सुदास की मां का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। किंतु सुदास की पत्नी का उल्लेख है। उसकी पत्नी का नाम सुदेवी[4] दिया गया है। कहते हैं कि सुदास के लिए उसकी व्यवस्था अश्विनी कुमारों ने की थी।

3. सुदास एक राजा था और उसका राज्याभिषेक ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने किया था।

ऐत्तरेय ब्राह्मण में उन राजाओं की निम्नोक्त सूची दी गई है जिनका महाभिषेक हुआ था, और उसे संपन्न करने वाले का नाम भी दिया गया है।[5]

> "इस संस्कार से मनु के पुत्र शर्याति का अभिषेक भृगु के पुत्र च्यवन ने किया। तब शर्याति ने पूरी पृथ्वी पर अपनी विजय पताका फहराई, और अश्वमेध यज्ञ किया, और देवताओं के यज्ञ में भी उपस्थित हुआ।"
>
> इस संस्कार से वाजरत्न के पुत्र सामसुषम ने सत्रजित के पुत्र शातनिक का अभिषेक किया। तब शातनिक ने पृथ्वी के छोर तक विजय प्राप्त की, और अश्वमेध यज्ञ किया।"
>
> "इस संस्कार से पार्वत और नारद ने उग्रसेन के पुत्र युधामस्रौष्टि का अभिषेक किया। तब युधामस्रौष्टि ने पृथ्वी के छोर तक विजय प्राप्त की, और अश्वमेध यज्ञ किया।"
>
> "इस संस्कार से कश्पप ने भुवन के पुत्र विश्वकर्मा का अभिषेक किया। तब विश्वकर्मा ने पृथ्वी के छोर तक विजय प्राप्त की, और अश्वमेध यज्ञ किया।"
>
> "कहते हैं कि पृथ्वी ने विश्वकर्मा के लिए यह छंद गाया—'किसी भी मनुष्य को मुझे (दान के रूप में) देने की अनुमति नहीं है।[6] हे विश्वकर्मा, तुमने मुझे दिया है, (इसलिए) मैं सागर के बीच में निमग्न हो जाऊंगी। कश्यप को व्यर्थ ही वचन दिया गया।' "
>
> "इस संस्कार से वसिष्ठ ने पिजवन के पुत्र सुदास का अभिषेक किया। तब सुदास ने पृथ्वी के छोर तक विजय प्राप्त की, और अश्वमेध यज्ञ किया।"
>
> "इस संस्कार से अंगिरा के पुत्र संवर्त ने अविक्षित के पुत्र मारुत का अभिषेक किया। तब मारुत ने पृथ्वी के छोर तक विजय प्राप्त की, और अश्वमेध यज्ञ किया।"

---

1. ऋग्वेद, 1, 116.18
2. ऋग्वेद, 6, 16.5
3. ऋग्वेद, 6, 18.13
4. ऋग्वेद, 1, 112.19
5. मार्टिन हॉग, खंड 2, पृष्ठ 523-524
6. राजा ने अपने पुरोहित को पूरी पृथ्वी भेंट देने का वचन दिया था।

इस सूची में सुदास का वसिष्ठ द्वारा उसका अभिषेक किए जाने का विशेष उल्लेख है। सुदास ऋग्वेद में वर्णित प्रसिद्ध दसराज्ञ युद्ध अथवा दस राजाओं की लड़ाई का नायक था। इस प्रसिद्ध युद्ध का उल्लेख ऋग्वेद के सातवें मंडल के विभिन्न सूक्तों में हुआ है। सूक्त 83 में कहा गया है–

4. ''हे इंद्र और वरुण! तुमने आयुधों द्वारा वश में न आने वाले भेद को मारा और राजा सुदास की रक्षा की। तुमने मेरे यजमान तृत्सुवंशीय ऋषियों की स्तुतियां सुनों और युद्ध के समय उनकी पुरोहिताई सफल हुई।''

6. ''युद्ध के समय सुदास और तृत्सु दोनों धन पाने के लिए इंद्र और वरुण को बुलाते हैं। वहां तुमने दस राजाओं द्वारा पीड़ित सुदास के साथ तृत्सुओं को भी बचाया।''

7. ''हे इंद्र और वरुण! यज्ञ नहीं करने वाले दस राजा भी मिलकर अकेले सुदास से युद्ध नहीं कर सके। हव्य धारण करने वाले नेता रूप ऋत्विजों की स्तुतियां भी सफल हुईं और उनके यज्ञों में सब देव उपस्थित हुए।''

9. हे इंद्र और वरुण! तुममें से एक संग्रामों में शत्रुओं का नाश करता है दूसरा हमेशा यज्ञकर्मों की रक्षा करता है। हे अभिलाषापूरको! हम शोभन स्तुतियों द्वारा तुम्हें बुलाते हैं। तुम हमें सुख दो।''

सूक्त 33 में कहा गया है–

2. ''वसिष्ठपुत्र वयत्सुत पाशद्युम्न का दूर से तिरस्कार करके चमस में भरे सोमरस को पीते हुए इंद्र को ले आए थे। इंद्र ने भी उसे छोड़कर सोमरस निचोड़ने वाले वसिष्ठपुत्रों को स्वीकार किया था।''

3. ''इसी प्रकार वसिष्ठपुत्रों ने सुखपूर्वक सिंधु नदी को पार किया था। इसी प्रकार इन्होंने भेद नाम के शत्रु को मारा। हे वसिष्ठपुत्रो! इसी प्रकार दाशराज्ञ युद्ध में तुम्हारे मंत्रों की शक्ति से इंदु ने सुदास राजा की रक्षा की थी।''

5. ''प्यासे और राजाओं से घिरे हुए वसिष्ठपुत्रों ने वर्षा की याचना करते हुए दाशराज्ञ युद्ध में इंद्र को सूर्य के समान ऊपर उठाया था। वसिष्ठ की स्तुतियां इंद्र ने सुनी थीं और तृत्सु राजाओं को विस्तृत राज्य दिया था।''

सूक्त 19 में कहा गया है–

3. ''हे शत्रुनाशक इंद्र! तुम अपने धर्षक वज्र द्वारा रक्षा के सभी साधनों का प्रयोग कर हव्य देने वाले सुदास को बचाओ। भूमि के कारण होने वाले युद्ध में पुरु-कुत्स के पुत्र त्रसदस्यु और पुरु की रक्षा करो।''

6. ''हे इंद्र! हव्य देने वाले यजमान सुदास के लिए तुम्हारे दिए हुए धन सनातन हुए थे। हे बहुकर्म वाले और अभिलाषापूरक इंद्र! तुम्हें लाने के लिए दो मनचाहे घोड़े मैं रथ में जोड़ता हूं, स्तुतियां तुझ बलशाली के पास जाएं।''

सूक्त 18 में कहा गया है—

5. "हे स्तुतियोग्य इंद्र! तुमने सुदास राजा के लिए परुष्णी नदी की भयानक धारा को भी उथला और सरलता से पार करने योग्य बनाया था। तुमने स्तोता के प्रति उस शाप को नष्ट किया था जो नदियों में बाढ़ लाता है और उनका प्रवाह रोकता है।"

6. "तुर्वश नाम के एक यज्ञकुशल और अग्रगामी राजा थे। जल की मछली के समान नियंत्रित रहने पर भी भृगुवंशी और युह्यवंशी योद्धाओं ने सुदास और तुर्वश को आमने-सामने कर दिया। इंद्र ने इन दोनों में से अपने मित्र सुदास का उद्धार कर दिया और तुर्वश को मार डाला।"

7. "हव्यों को पकाने वाले, भद्रमुख, तपस्या के कारण दुर्बल, हाथ में सींग लिए और सारे संसार के कल्याणकारी लोग इंद्र की स्तुति करते हैं। इंद्र सोमपान से प्रमत्त होकर आर्यों की गाएं हिंसकों से छुड़ा लाए थे। इंद्र ने गाएं प्राप्त की थीं और युद्ध में शत्रुओं को मारा था।"

8. "बुरे विचारों वाले और मंदबुद्धि शत्रुओं ने विशाल परुष्णी नदी को खोदकर उसके तट गिरा दिए थे। इंद्र की कृपा से सुदास धरती पर विस्तृत हो गए और उन्होंने चयमान के पुत्र कवि को पालतू पशु के समान मारकर धरती पर सुला दिया था।"

9. "इंद्र द्वारा किनारे ठीक करने पर परुष्णी नदी का जल उचित दिशा में बहने लगा, उसका इधर-उधर जाना रुक गया। सुदास का अश्व भी अपने मार्ग पर चला। इंद्र ने सुदास के कल्याण के लिए व्यर्थ बातें करने वाले शत्रुओं को संतानसहित वश में किया था।"

10. "जिस प्रकार बिना ग्वाले की गाएं जौ के खेत की ओर जाती हैं, उसी प्रकार पृश्नि माता द्वारा भेजे गए और परस्पर सम्मिलित मरुत पूर्व निश्चय के अनुसार अपने मित्र इंद्र की ओर गए थे। मरुतों के घोड़े भी प्रसन्न होकर इंद्र की ओर गए।"

11. "राजा सुदास ने कीर्तिलाभ करने हेतु परुष्णी नदी के दोनों तटों पर बसे इक्कीस व्यक्तियों को मार डाला। युवा अध्वर्यु जिस प्रकार यज्ञशाला में कुशों को काटता है, उसी प्रकार सुदास ने शत्रुओं को काटा। इंद्र ने सुदास की सहायता के लिए मरुतों को उत्पन्न किया है।"

12. "वज्रबाहु इंद्र ने श्रुत, कवष, वृद्ध और द्रह्यु नामक व्यक्तियों को पानी में डुबा दिया था। इस अवसर पर जिन्होंने तुम्हारी स्तुति की, उन्होंने मित्र बनकर मित्रता प्राप्त की।"

13. "इंद्र ने श्रुत आदि की समस्त दृढ़ नगरियों और सात प्रकार के रक्षा साधनों को बल द्वारा नष्ट कर दिया था और अनु के पुत्र का धन तृत्सु को दे दिया था। हे इंद्र! हम युद्ध में कठोर वचन वाले शत्रु को जीत सकें।"

14. ''गायों की अभिलाषा करने वाले अनु और द्रह्यु के छियासठ हजार छियासठ वीर सैनिक इंद्र की सेवा के इच्छुक सुदास के कारण मारे गए थे। ये सब कार्य इंद्र की वीरता के हैं।''

15. ''ये तृत्सु जन इंद्र के बुरे मित्र और ज्ञानहीन हैं। ये इंद्र के साथ युद्ध करने लगे और युद्ध छोड़ने की इच्छा से इस प्रकार भागे जैसे नीचे की ओर बहने वाला पानी दौड़ता है। सुदास के रोकने पर उन्होंने प्रयोग की सब चीजें सुदास को दे दीं।''

16. ''इंद्र ने ऐसे लोगों को मारकर धरती पर गिरा दिया था जो शक्तिशाली नायक सुदास के शत्रु थे, इंद्र को नहीं मानते थे, हव्य के पालक और उत्साही थे। इंद्र ने क्रोधियों का क्रोध समाप्त कर दिया। सुदास का शत्रु पलायन कर गया।''

17. ''इंद्र ने दरिद्र सुदास से उस समय एक काम कराया था। सिंह जैसे शत्रु को बकरे के समान सुदास से मरवाया। यूप, तुला शत्रुओं को सूई के समान सुदास से बिंधवाया। इंद्र ने सारा धन सुदास को दे दिया।''

18. ''हे इंद्र! तुम्हारे बहुत से शत्रु तुम्हारे वश में हो गए हैं। उत्साही नास्तिक को वश में करो। नास्तिक तुम्हारी स्तुति करने वालों का अहित करता है। उसके विरुद्ध शक्तिशाली वीर को भेजो और उसे अपने वज्र से मारो।''

19. ''इस युद्ध में इंद्र ने नास्तिक भेद को मारा था और यमुना ने तृत्सुओं और इंद्र को प्रसन्न किया था। अज, शिग्रु और यक्षु जनपद ने घोड़ों के सिर इंद्र को भेंट दिए थे।''

20. ''हे इंद्र! तुम्हारी नई तथा पुरानी कृपाएं और संपत्तियों का वर्णन उषा से नहीं हो सकता। तुमने मान्यमान के पुत्र देवक का वध किया और बड़े पहाड़ से शंबर को फेंक दिया।''

इस युद्ध में सुदास के विरुद्ध लड़ने वाले राजा थे[1]—

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 1. शिन्यु, | 2. तुर्वश, | 3. द्रह्यु, | 4. कवष, | 5. पुरु, |
| 6. अनु, | 7. भेद, | 8. शंबर, | 9. वैकर्ण, | 10. एक अन्य वैकर्ण, |
| 11. यदु, | 12. मत्स्य, | 13. पक्थ, | 14. भालनास, | 15. अलीन, |
| 16. विंशानिन, | 17. अज, | 18. शिव, | 19. शिग्रु, | 20. यक्षु, |
| 21. युध्यामधि, | 22. यद्व, | 23. देवकमन्यमान, | 24. चयमान कवि, | 25. सुतुक, |
| 26. उचथ, | 27. श्रुत, | 28. वृद्ध, | 29. मन्यु, और | 30. पृथु। |

स्पष्ट है कि इस युद्ध के नाम से जैसा लगता है, उससे भी कहीं बड़ा युद्ध था वह।

1. *यह सूची व चित्र शास्त्री के 'प्राचीन चरित्र कोश' पृष्ठ 624 से ली गई है। इस विषय में कोई सर्वसम्मति नहीं है कि ये सभी नाम राजाओं के ही हैं। सायणाचार्य के अनुसार 13-16 नाम पुरोहितों के हैं। 27-28 को लेकर भी संदेह की स्थिति है।*

यह भारतीय-आर्यों के इतिहास की निश्चय ही बहुत बड़ी घटना रही होगी। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि विजेता सुदास अपने समय का एक महान नायक बन गया था।[1] यह हमें नहीं पता कि इस युद्ध की असली जड़ क्या थी। इसका कुछ संकेत ऋग्वेद 7, 83.7 में मिलता है जहां सुदास के विरुद्ध लामबंद राजाओं को अधार्मिक बताया गया है जिससे ऐसा लगता है कि शायद यह एक धार्मिक युद्ध था।

4. सायणाचार्य, और परंपरा भी, यह कहती है कि ऋग्वेद के निम्नलिखित स्तोत्रों के ऋषि निम्नोक्त राजा थे–

> "वितहव्य (अथवा भारद्वाज) 10, 9; अंबरीष का पुत्र सिंधुद्वीप (अथवा त्वाष्ट्रि का पुत्र त्रिसरस) 10, 75, प्रियमेध का पुत्र सिंधुक्षित, 10, 133, पिजवन का पुत्र सुदास, 10, 134, युवनास का पुत्र मांधातृ, 10, 179, उसी नार का पुत्र शिवि, दिवोदास का पुत्र प्रतार्धन काशीराज, और रोहिताश्व का पुत्र वसुमानस, 10, 148 का ऋषि पृथि वैन्य को बताया जाता है।"

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस सूची में सुदास का नाम वैदिक मंत्रों के रचयिता के रूप में आया है।

5. सुदास ने अश्वमेध यज्ञ किया था। ऋग्वेद, 3, 53 में इसका उल्लेख है–

> "महान, इंद्रियों से परवर्ती अर्थ देखने वाले, उज्ज्वल तेज उत्पन्न करने वाले, तेजों द्वारा आकृष्ट और मनुष्यों के उपदेशक विश्वामित्र ने जलपूर्ण सरिता को रोक दिया था। जब विश्वामित्र ने सुदास का यज्ञ कराया, तब इंद्र ने कुशिकगोत्रीय ऋषियों के साथ प्रेम का आचरण किया।" (ऋग्वेद, 3, 53.9)
>
> "हे कशिकगोत्रीय पुत्रो! अश्व के पास जाओ और सावधान रहो। राजा सुदास का अश्व दिग्विजय द्वारा धन पाने के लिए छोड़ दो। राजा इंद्र ने वृत्र को पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में मारा था। राजा सुदास पृथ्वी के उत्तम भाग में यज्ञ करें।" (ऋग्वेद, 3, 53.11)

6. सुदास ब्राह्मणों को दान देने के लिए ख्यात था और ब्राह्मण उसे अतिथिग्व कहते थे। ब्राह्मणों ने सुदास के परोपकार के लिए उसकी जो प्रशंसा की है, वह ऋग्वेद में प्राप्त निम्नलिखित उल्लेखों से ज्ञात होता है–

> "हे दर्शनीय अश्विनी कुमारो! तुम जिस प्रकार दानशील सुदास के लिए रथ में धन और अन्न भर कर लाए थे, उसी प्रकार हमें आकाश से लाकर बहुतों द्वारा वांछित धन दो।" (1, 47.6)
>
> "हे वज्रधारी इंद्र! पुरुकुत्स ऋषि की सहायता के लिए उसके शत्रुओं से युद्ध करते हुए सातों नगरों को विदीर्ण किया था। उसी प्रकार तुमने सुदास राजा

---

1. *सुदास का नाम ऋग्वेद में 27 स्थलों पर आया है। इससे पता चलता है कि वैदिक लोग उसे कितना बड़ा नायक मानते होंगे।*

का पक्ष लेकर अंठो नामक असुर का धन कुश के समान छिन्न करने के पश्चात उसी हव्यदाता सुदास को दे दिया था।'' (1, 63.7)

''हे अश्विनी कुमारो! तुमने जिन उपायों द्वारा विमद ऋषि के लिए पत्नी और लाल रंग की गाएं दीं और सुदास को प्रसिद्ध धन दिया, उन्हीं उपायों सहित आओ।'' (1, 112.19)

''हे शत्रुनाशक इंद्र! तुम अपने धर्षक वज्र द्वारा रक्षा के सभी साधन प्रयोग में लाकर हव्य देने वाले सुदास को बचाओ। भूमि के कारण होने वाले युद्ध में पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु और पुरु की रक्षा करो।'' (7, 19.3)

''वर्धमान होकर वृत्र का वध करने वाले वीर इंद्र स्तोता को अपने रक्षा साधनों से सुरक्षित करते हैं। वे सुदास के लिए जनपद का निर्माण करने वाले और यजमान को धन देने वाले हैं।'' (7, 20.2)

''हे साफा वाले इंद्र! तुम्हारे सैकड़ों रक्षा साधन और हजारों कामनाएं और धन मुझ सुदास के हों। हिंसक मनुष्य के आयुध का तुम नाश करो और हमारे लिए दीप्तिशाली यश और यत्न दो।'' (7, 25.3)

''शोभन दान वाले का रथ न कोई दूर फेंक सकता है और न उसे कोई अपने स्वार्थ के लिए पकड़ सकता है। इंद्र और मरुत जिसके रक्षक हैं, वह गायों वाली गोशाला में जाएगा।'' (7, 32.10)

''हे धावापृथ्वी! शोभनहव्यदाता यजमान को देने के लिए तुम्हारे पास अधिक उत्तम धन है। तुम नष्ट होने वाला धन हमें दे दो। हे देवो! तुम कल्याण साधनों द्वारा हमारी सदा रक्षा करो।'' (7, 53.3)

''अर्यमा, मित्र और वरुण हव्यदाता यजमान को रक्षा-साधनों से युक्त और कल्याणकारी सुख देते हैं, उसी सुख के साथ हम पुत्र-पौत्रों को धारण करते हुए कोई ऐसा कर्म न करें जो तुम शीघ्रता करने वाले देवों को अप्रसन्न कर दे। . ..अर्यमा हमें द्वेष करने वाले राक्षसों से अलग रखें। हे कामपूरक मित्र और वरुण! मुझ हव्यदाता (सुदास) को तुम विस्तृत स्थान प्रदान करो।'' (7, 60.8-9)

ये पैजवन के जीवन से सम्बंधित टिप्पणियां हैं जिनका उल्लेख महाभारत के शांतिपर्व में, सर्वाधिक प्रामाणिक स्रोत ऋग्वेद से छन कर, मिलता है। ऋग्वेद से हमें यह जानकारी मिलती है कि उसका असली नाम सुदास था और वह एक क्षत्रिय था। वह क्षत्रिय से भी बढ़कर था। वह एक राजा था और शक्तिशाली राजा था। महाभारत में इसके साथ एक और नई जानकारी जुड़ जाती है कि वह शूद्र था। एक शूद्र जो आर्य था, एक शूद्र जो क्षत्रिय था और एक शूद्र जो राजा था। इससे बढ़कर और कोई विज्ञप्ति हो सकती है क्या? इससे बढ़कर क्रांतिकारी और कुछ हो सकता है क्या?

जीवन चरित सम्बंधी विवरणों की इस खोज को तीन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की चर्चा के

साथ समाप्त किया जा सकता है—क्या सुदास एक आर्य था? यदि सुदास एक आर्य है तो उसकी जनजाति क्या थी? यदि सुदास एक शूद्र है तो शूद्र का अर्थ क्या है?

हम दूसरे प्रश्न से अपनी चर्चा की शुरुआत करेंगे। इस प्रश्न के समाधान हेतु ऋग्वेद में उपलब्ध कुछ उल्लेखों से कुछ मदद लेना संभव होगा। ऋग्वेद में अनेक जनजातियों का उल्लेख है, जिनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं, त्रित्सु, भरत, तुर्वष, द्रह्यु, यदु, पुरु और अनु। किंतु ऋग्वेद में उपलब्ध उल्लेखों के अनुसार सुदास का सम्बंध केवल तीन से था—पुरु, त्रित्सु और भरत से। हमारे लिए इन्हीं तीनों तक सीमित रहकर यह पता लगाना पर्याप्त होगा कि वह इनमें से किस जनजाति का था। त्रित्सु और सुदास के सम्बंधों के विषय में ऋग्वेद के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण छंद हैं—1, 63.7; 1, 130.7; 7, 18.15; 7, 33.5; 7, 33.6, 7, 83.4, 6

स्तोत्र 1, 63.7 में दिवोदास को पुरुओं का राजा कहा गया है, और 1, 130.7 में दिवोदास को पौरव अर्थात पुरुओं का सम्बंधी कहा गया है।

ऋग्वेद 7, 18.15 और 8, 83.6 के अनुसार सुदास कोई त्रित्सु नहीं था। इसमें से पहले छंद के अनुसार सुदास ने त्रित्सु-शिविर पर धावा बोला था और त्रित्सु जन भाग गए थे, और तब सुदास ने उनकी संपदा पर कब्जा कर लिया था। दूसरे छंद के अनुसार त्रित्सु गण और सुदास ने मिलकर दस राजाओं से युद्ध किया था, किंतु उन्हें अलग-अलग दर्शाया जाता है किंतु 7, 35.5 और 7, 83.4 में सुदास की ही पहचान त्रित्सु के रूप में की गई है, और 7, 35.5 में तो सुदास सचमुच त्रित्सुओं को राजा बन जाता है।

त्रित्सु गण भरत गण के बीच और उनके तथा सुदास के बीच सम्बंधों के इस सवाल पर हमारे पास साक्ष्य के तौर पर ऋग्वेद 7, 33.6 और 5, 16.4, 6, 19 हैं। इनमें से प्रथम के अनुसार, त्रित्सु और भरत एक ही हैं। दूसरे स्तोत्र के अनुसार सुदास के पिता दिवोदास को भरतवंशी बताया गया है।

इन उल्लेखों से एक बात तो तय है कि पुरु, त्रित्सु और भरत या तो एक ही जन की विभिन्न शाखाएं थीं अथवा ये अलग-अलग जनजातियां थीं जो कालांतर में एक हो गईं। यह असंभव नहीं है। सवाल बस यह उठता है—यदि यह मान लिया जाए कि ये अलग-अलग जनजातियां थीं, तो फिर सुदास मूल रूप में इनमें से किस जनजाति का था? पुरु, त्रित्सु अथवा भरत का? पुरु और भरत जनजातियों के साथ सुदास के पिता दिवोदास के सम्बंध को ध्यान में रखें तो स्वाभाविक तौर पर यह जाना जा सकता है कि सुदास मूल रूप में या तो पुरु जनजाति का था अथवा भरत का—किस का था, यह कहना कठिन है।

वह पुरु में से था अथवा नहीं, इस बात में तो कोई संदेह नहीं है कि—यदि इस तथ्य को ध्यान में रखा जाए कि उसके पिता दिवोदास को भरत जनजाति का बताया गया है तो—सुदास का सम्बंध भरत जनजाति से था। अगला सवाल है—ये भरत कौन थे, और क्या ये वही जन थे जिनके नाम पर इस देश का नाम भरत भूमि पड़ा? यह सवाल इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अधिकांश लोगों को सही तथ्यों की जानकारी नहीं है। जब हिंदू लोग

भरत की बात करते हैं तो उनके दिमाग में दुष्यंती भरत अथव दुष्यंत और शकुंतला के वंशज भरत रहते हैं जिन्होंने महाभारत में वर्णित युद्ध लड़ा था। वे केवल किन्हीं अन्य भरत से ही अनभिज्ञ नहीं हैं किंतु वे यह भी विश्वास करते हैं कि इस देश को जो भारत भूमि नाम दिया गया वह दुष्यंती भरत के नाम पर ही दिया गया था।

भरत दो हैं जो एक-दूसरे से बिलकुल अलग हैं। एक भरत जनजाति में तो ऋग्वेद के भरत हैं जिनके पूर्वज मनु थे और जिनमें से सुदास थे। दूसरी भरत जनजाति में दुष्यंती भरत आते हैं। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि यदि इस देश का नाम भारत भूमि रखा गया है, तो यह ध्यान में रखना होगा कि यह नाम ऋग्वेद के भरत के नाम पर रखा गया है, दुष्यंती भरत के नाम पर नहीं। यह तथ्य भगवत पुराण के निम्नलिखित छंद से स्पष्ट हो जाता है–[1]

**प्रियवंदो नाम सुतो मनोः स्वायंभुवस्य ह।**
**तस्याग्नीघ्रस्ततो नाभिर्ऋषभश्च सुतस्ततः।।**
**अवतीर्णं पुत्रशतं तस्यासीद्ब्रह्मपारगम्।**
**तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः।**
**विख्यातं वर्षमेतद्यन्मानना भारतमुत्तप्रभ्।।**

*''स्वयंभू के पुत्र मनु के प्रियवंद नाम का एक पुत्र था; उसका पुत्र अग्नीध्र था; उसका पुत्र नाभी हुआ; इसके ऋषभ नाम का एक पुत्र था। उसके सौ पुत्र उत्पन हुए, वे सभी वेद ज्ञानी थे; उनमें भरत सबसे बड़ा था, नारायण-भक्त था, जिसके नाम से यह विख्यात भूमि भारत कहलाती है।''*

*इससे पता चलता है कि यह शूद्र सुदास कितने श्रेष्ठ राजवंश का था।*

अब अगली बात यह जाननी है कि सुदास क्या एक आर्य था। भरत तो निश्चय ही आर्य थे, और इसलिए सुदास एक आर्य ही रहा होगा। यदि संदर्भ ऋग्वेद 7, 18.7 का लिया जाए, तो आर्यों के साथ त्रित्सुगण का यह सम्बंध उसके आर्य मूल पर थोड़ा संदेह उत्पन्न करता है। इस छंद में कहा गया है कि इंद्र ने आर्यों की गायों को त्रित्सुओं से छुड़ाया और त्रित्सुओं को मार डाला, जिससे यह पता चलता है कि त्रित्सु लोग आर्यों के शत्रु थे। ग्रिफिथ्य इस बात से बहुत विचलित होते हैं कि त्रित्सु जन को अनार्य दिखाया जा रहा है जो इस छंद को शाब्दिक अनुवाद का परिणाम है, और इससे मुक्ति के लिए वह यह समझते हैं कि गायों का अर्थ 'कामरेड' (साथी) लगाया है।[2] यह निश्चय ही तब अनावश्यक हो जाता है जब हम यह ध्यान में रखते हैं कि ऋग्वेद में दो प्रकार के आर्यों की कथा है, वे प्रजाति के मामले में अथवा धर्म के मामले में भिन्न थे, यह कहना कठिन है। इस आलोक

---

1. *वैद्य द्वारा महाभारतच उपसंहार, पृष्ठ 200, में उद्धृत*
2. *उनके अनुसार इसका अर्थ है ''त्रित्सुजन के पास आर्य का साथी आया, लूट के माल से प्रेम और वीरों के युद्ध के कारण, उनके नेतृत्व हेतु।*

में व्याख्या की जाए तो इस छंद का बस यह अर्थ निकलता है कि जब यह छंद लिखा गया था उस समय त्रित्सु लोग धर्म से आर्य नहीं बने थे। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे प्रजाति से आर्य नहीं थे। इसलिए यह निर्विवाद तथ्य है कि सुदास को चाहे भरत माना जाए अथवा त्रित्सु, था वह एक आर्य ही।

अब हम अंतिम प्रश्न पर आते हैं, जो निश्चय ही कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। शूद्र का क्या अर्थ, क्या महत्त्व है? सुदास एक शूद्र था, इस खोज के आलोक में इस शब्द का अब बिलकुल अलग अर्थ सामने आता है। जिन प्राचीन विद्वानों के लिए यह शब्द केवल एक गुलाम और आदिवासी वर्ण का नाम था, वे इस नई खोज से अवश्य ही विस्मित होंगे जिनका उत्तर उनके विगत अनुसंधानों से संभव नहीं है। जहां तक मेरा सवाल है, तो मेरी स्थिति भी कोई बेहतर नहीं है। इसका कारण यह है कि वैदिक आर्यों के सामाजिक संगठन का अध्ययन होना अभी बाकी है। आदिम समाजों के अध्ययन से हमें यह पता नहीं कि वे समूहों के रूप में संगठित हैं और समूहों के रूप में व्यवहार करते हैं। समूह विभिन्न प्रकार के होते हैं। गोत्र होते हैं, बिरादरी होती हैं, अर्धांश होते हैं और जनजातियां (कबीले) होती हैं। कुछ मामलों में जनजाति प्राथमिक इकाई होती है, तो कभी गोत्र अथवा कभी बिरादरी प्राथमिक इकाई होती है। कभी-कभी जनजातियों का विभाजन गोत्रों में होता है। कहीं-कहीं गोत्र नहीं भी होते। वह एक अकेला गोत्रहीन कबीला होता है।

गोत्र में एक अकेले पूर्वज के वंशज होते हैं जो एक समान वंश के बोध से परस्पर बंधे रहते हैं। गोत्र अक्सर समान सामाजिक और संस्कारीय हितों के माध्यम से आपस में प्रमुख इकाइयों से जुड़ जाते हैं, जिन्हें बिरादरी कहा जाता है। एक बिरादरी के भीतर सम्बंधों का बंधन अपेक्षाकृत कमजोर हो सकता है, अर्थात इस साहचर्य में अधिक मान्य मित्रता को एक अनौपचारिक भावना से अधिक और कुछ नहीं होता। बिरादरी एक अर्धांश भी बन सकती है जिसमें प्रत्येक गोत्र दो प्रमुख इकाइयों में से एक का अंश माना जाता है। किंतु अर्धांश बिना किसी उप-विभाजन के भी हो सकते हैं, अर्थात संपूर्ण गोत्र के भीतर दो गोत्र हो सकते हैं। ये सभी संगठन, चाहे वह गोत्र हो, बिरादरी हो, अर्धांश हो अथवा कबीला या जनजाति, ये सभी बंधुता के बंधन पर आधारित होते हैं।

वैदिक आर्यों का निस्संदेह ऐसा ही किसी प्रकार का सामाजिक संगठन था। नामावली से यह स्पष्ट हो जाता है। जैसा कि प्रो. सेनर्ट कहते हैं–[1]

> "वैदिक ऋचाएं बाह्य और सामाजिक जीवन के विवरणों के मामले में अत्यंत अनिश्चित हैं। कम से कम उनसे हमें यह तो पता चलता ही है कि आर्य जनसंख्या अनेक जनजातियां अथवा लघु जनों में विभाजित थीं, और गोत्रों में उपविभाजित थीं, जो बंधुता के बंधनों से एकजुट थे, और ये परिवारों में बंटे हुए थे। ऋग्वेद की शब्दावली इस मामले में थोड़ी अनिर्णायक है, किंतु आम तथ्य

1. *कास्ट्स इन इंडिया, एमिल सेनर्ट, पृष्ठ 192*

स्पष्ट है। सजात का अर्थ अथर्ववेद में सगोत्र निकलता है। जन कुछ अधिक व्यापक अर्थ वाला शब्द हो जाता है, और यह अवेस्ता के गोत्र के समकक्ष जांतु, और जाति का स्मरण कराता है। व्रा, वृजन, व्रात, व्रत जैसे शब्द पर्यायवाची प्रतीत होते हैं, अथवा गोत्र का जनजातियों के उपविभाजन लगते हैं। आर्य जनसमुदाय इन ऋचाओं में वर्णित काल में निम्न अथवा समान समूहों और कबीलों (जनजातियों) की परंपराओं से संचालित संगठन के शासन में रहता था। नामों की विविधता से ही पता चल जाता है कि यह संगठन थोड़ा अस्थिर था।''

बहरहाल, हमारे पास ऐसी कोई जानकारी नहीं है जिसके आधार पर हम यह निर्धारित कर सकें कि इनमें से कौन गोत्र के समान है, कौन बिरादरी के समान, और कौन जनजाति के समान।[1]

ऐसी स्थिति में, यह कहना कठिन है कि शूद्र किसी गोत्र का नाम था, किसी बिरादरी का, अथवा किसी जनजाति का। किंतु, इस विषय में प्रो. वेबर के विचार जानना दिलचस्प होगा, जो उन्होंने शतपथ ब्राह्मण (1, 1.4.12) के अंश पर टिप्पणी करते हुए व्यक्त किए हैं। इन अंश में यह कहा गया है कि याजक को यज्ञ के लिए बुलाते समय विभिन्न तरीकों से सम्बोधन करना चाहिए, यदि वह ब्राह्मण है तो उससे कहना चाहिए 'आओ', यदि वह क्षत्रिय है तो उससे कहा जाता है 'शीघ्र आओ', यदि वह वैश्य है तो उससे कहा जाता है 'शीघ्र आ', और यदि वह शूद्र है तो उससे कहा जाता है 'दौड़कर इधर आ'।

प्रो. वेबर कहते हैं—[2]

> ''यह पूरा अंश ही अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि (इस जर्नल के प्रथम खंड में रॉथ के कथन के विपरीत) इससे यह पता चलता है कि शूद्रों को उस समय आर्यों के यज्ञों में प्रवेश मिलता था, और वे उनकी भाषा समझते थे, भले ही वे उसे बोलते नहीं हों। बाद वाली बात को निश्चय ही एक आवश्यक परिणाम नहीं माना जा सकता, किंतु इसकी अत्यधिक संभावना है और इसी के परिणामस्वरूप मैं उन लोगों के विचारों से सहमत हूं जो शूद्रों को एक आर्य जनजाति मानते हैं जो दूसरों से पहले भारत आ गए थे।''

उनका यह निष्कर्ष बिलकुल सटीक है कि शूद्र लोग आर्य थे। संदेह बस इतना है कि क्या शूद्र एक जनजाति थे। इसमें तो कोई संदेह है ही नहीं कि वे आर्य और क्षत्रिय थे।

---

*1. जिन्हें आर्य जनजातियां कहा जाता है वे अपने बदलते गठबंधनों के कारण बिरादरी प्रतीत होते हैं।*

*2. म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 366*

अध्याय : आठ

# वर्ण कितने : तीन या चार?

## I

भारतीय-आर्यों के समाज में प्रारंभ से ही चार वर्ण थे, इसे हर जगह और हर वर्ग के हिंदू तो क्या यूरोपीय विद्वान भी मानते हैं। यदि पिछले अध्याय में प्रस्तुत इस मत को मान लिया जाए कि शूद्र लोग क्षत्रिय थे, तो फिर यह मत भी मानना होगा कि यह सिद्धांत गलत है और एक समय था जब भारतीय-आर्यों के समाज में केवल तीन वर्ण थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। इस तरह; जहां यह मत एक समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है वहीं यह दूसरी समस्या भी खड़ी कर देता है। कोई और इस समस्या के महत्त्व को समझे या न समझे, मैं तो समझता हूं। सच में, मैं इस तथ्य से अवगत हूं कि जब तक मैं यह साबित नहीं कर पाता कि मूलतः केवल तीन ही वर्ण थे, तब तक मेरे इस मत को संदेह से परे नहीं कहा जा सकता कि शूद्र लोग क्षत्रिय थे।

जहां यह एक दुर्योग ही है कि मैं एक ऐसे मत पर पहुंचा हू जो एक समस्या के समाधान की आशा बंधाते हुए भी एक अन्य समस्या पैदा कर देता है, वहीं मैं इसे एक सुयोग भी मानता हूं कि मेरे पास ऐसे मजबूत और ठोस प्रमाण हैं जिनकी सहायता से यह दर्शाया जा सकता है कि भारतीय-आर्यों में मूलतः तीन ही वर्ण थे।

मैं जिन साक्ष्यों पर निर्भर कर रहा हूं उनमें पहला साक्ष्य तो स्वयं ऋग्वेद का ही है। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि ऋग्वेदिक काल में वर्ण-व्यवस्था थी ही नहीं। यह कथन इस विचार पर आधारित है कि पुरुष सूक्त को ऋग्वेद में बहुत बाद में जोड़ा गया है। यदि इसे मान भी लिया जाए, तो भी इस कथन को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि ऋग्वेद के समय में वर्ण-व्यवस्था नहीं थी। इस प्रकार की व्यवस्था ऋग्वेद के पाठ से बिलकुल मेल नहीं खाती। क्योंकि, पुरुष सूक्त को छोड़ दें तो ऋग्वेद में ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों का उल्लेख एक बार नहीं अनेक बार हुआ। एक अलग वर्ण के तौर पर, ब्राह्मणों का उल्लेख पंद्रह बार तो क्षत्रियों का नौ बार हुआ है। यहां महत्त्वपूर्ण यह है कि ऋग्वेद में शूद्र का उल्लेख एक अलग वर्ण के रूप में नहीं हुआ है। यदि शूद्र एक अलग वर्ण होते, तो कोई कारण ही नहीं है कि ऋग्वेद में उनका उल्लेख नहीं होता। ऋग्वेद से प्राप्त होने वाला सही निष्कर्ष यह नहीं है कि वर्ण-व्यवस्था उस समय नहीं थी, बल्कि यह है कि उस समय केवल तीन वर्ण थे और शूद्रों को चौथा और पृथक वर्ण नहीं माना जाता था।

दूसरा साक्ष्य दो ब्राह्मण ग्रंथों—शतपथ और तैत्तिरीय—का है। इन दोनों ही ग्रंथों में केवल तीन वर्णों की बात कही गई है। इनमें एक अलग वर्ण के रूप में शूद्रों की उत्पत्ति की चर्चा नहीं है।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार—[1]

> "प्रजापति ने 'भूः' (कहकर) इस पृथ्वी की रचना की। 'भुवः' (कहकर) वायु की रचना की, और 'स्वः' (कहकर) उन्होंने आकाश की रचना की। यह विश्व इन शब्दों के साथ ही बना। अग्नि इनके साथ बनी। 'भूः' कहकर प्रजापति ने ब्राह्मण को उत्पन्न किया; 'भुवः' कहकर उन्होंने क्षत्रिय को उत्पन्न किया; और 'स्वः' कहकर वैश्य को उत्पन्न किया। अग्नि इनके साथ बनी। 'भूः' कहकर प्रजापति ने स्वयं को बनाया; 'भुवः' कहकर संतान को उत्पन्न किया; 'स्वः' कहकर पशुओं को उत्पन्न किया। यह संसार प्रजापति, उसकी संतान (प्राणी), और पशुओं का है। अग्नि इनके साथ बनी।" (2, 1.4.11)

तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार—[2]

> "इस समग्र (विश्व) को ब्रह्मा ने बनाया। मनुष्य कहते हैं कि वैश्य की उत्पत्ति ऋग्वैदिक मंत्रों से हुई। उनके अनुसार यजुर्वेद वह कोख है जिससे क्षत्रिय उत्पन्न हुआ। सामवेद से ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई। यह वचन प्राचीनों ने प्राचीनों से कहा।" (3, 12.9.2)

यह है मेरा साक्ष्य। इसमें एक ऋग्वेद से है और दो कथन ब्राह्मण ग्रंथों से हैं जो प्रामाणिकता के संदर्भ में वेदों के समकक्ष ही हैं। क्योंकि दोनों ही श्रुति ग्रंथ हैं और दोनों में स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि वर्ण केवल तीन ही थे। दोनों ही ग्रंथों में इस बात पर सहमति है कि शूद्र चौथा वर्ण तो क्या एक पृथक और भिन्न वर्ण भी नहीं थे। इसलिए मेरे तर्क के पक्ष में इससे बेहतर और कोई साक्ष्य हो ही नहीं सकता कि मूलतः केवल तीन ही वर्ण थे और शूद्र दूसरे वर्ण का ही एक हिस्सा थे।

## II

यही है मेरा साक्ष्य। दूसरी ओर, ऋग्वेद के पुरुष सूक्त का साक्ष्य है जिसमें यह कहा गया है कि आदिकाल से ही तीन वर्ण थे। सवाल अब यह उठता है—इन दोनों में से सही किसे माना जाए? इस प्रश्न को हल कैसे किया जाए? मीमांसा के नियमों के अनुसार तो इसे हल किया नहीं जा सकता। यदि हम इसे इन नियमों के अनुसार हल करें तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ये दोनों ही कथन सही हैं कि (1) वर्ण चार थे (पुरुष सूक्त), और (2) वर्ण तीन थे (शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीय ब्राह्मण)। यह बड़ी अटपटी स्थिति होगी। हमें इस मसले को ऐतिहासिक आलोचना के विधानों के आलोक में हल करना होगा, जैसे

---

*1. म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 17 से उद्धृत अंश का अनुवाद।*  *2. वही*

कालक्रम और आंतरिक अलोचना आदि। मुख्य प्रश्न तो यह है कि क्या पुरुष सूक्त को ऋग्वेद में बाद में जोड़ा गया। इस प्रश्न के उत्तर के लिए सूक्त की भाषा और शेष ऋग्वेद की भाषा के अंतर को आधार बनाया गया है। सभी विद्वानों का मत तो यही है कि यह बाद की रचना है। कोलब्रुक के अनुसार–[1]

"वह उल्लेखनीय स्तोत्र (पुरुष सूक्त) ऐसी भाषा, मात्रा (छंद), और शैली में है तो उन शेष प्रार्थनाओं से अत्यंत भिन्न है जिसके साथ यह सम्बद्ध है। इसका लहजा निश्चय ही अधिक आधुनिक ह; और इसकी रचना तभी हुई होगी जब संस्कृत भाषा परिष्कृत हो चुकी होगी और इसकी लय और व्याकरण परिशुद्ध हो गई होंगी। इससे प्राप्त आंतरिक साक्ष्य से यह महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आता है कि वेदों का संकलन, प्रस्तुत रूप में, तब हुआ जब संस्कृत भाषा उग्र गंवारू और अनियमित बोली की स्थिति से आगे बढ़ चुकी थी जिसमें वेद की अधिकांश ऋचाएं और प्रार्थनाएं रची गई थीं, और परिष्कृत तथा मंजुल भाषा का रूप ले चुकी थीं, जिसमें पुराणों और काव्यों की रचना हुई है।"

प्रो. मैक्स मूलर के अनुसार–[2]

"उदाहरणार्थ, इसमें किंचित भी संदेह नहीं हो सकता कि दसवें मंडल का 90वां स्तोत्र...अपने लक्षण और भाषा दोनों ही दृष्टि से आधुनिक है। इसमें याज्ञिक अनुष्ठानों के संदर्भों की भरमार है, इसमें पारिभाषिक दार्शनिक शब्दों का प्रयोग किया गया है, इसमें वसंत, ग्रीष्म और शरद के क्रम में तीन ऋतुओं का उल्लेख है; इसमें ऋग्वेद का वह एकमात्र अंश है जिसमें चार जातियां गिनाई गई हैं। इसकी रचना आधुनिक होने के संदर्भ में इसकी भाषा का साक्ष्य भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। उदाहरणार्थ, गरमी के मौसम के लिए प्रयुक्त ग्रीष्म शब्द ऋग्वेद के अन्य किसी स्तोत्र में नहीं आता; और वसंत शब्द भी वैदिक कवियों की प्राचीनतम शब्दावली में नहीं है। यह शब्द ऋग्वेद (10, 161.4) में बस एक ही बार उस अंश में आया है जिसमें तीनों मौसमों का उल्लेख शरद, हेमंत, और वसंत के क्रम में हुआ है।"

प्रो. वेबर का कहना है–[3]

"ऋग्वेद का स्तोत्र माना जाने वाला पुरुष सूक्त उस संग्रह का एक नवीनतम अंश है, यह बात इसके कथ्य से बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि साम संहिता में इसका कोई भी मंत्र लिया नहीं गया है (मैंने 'एकेडेमिकल प्रिलेक्शंस' में जो कहा गया है उससे तुलना करें।) वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है (यद्यपि यह निश्चित नहीं है) कि नैगेय संप्रदाय ने पहले पांच मंत्रों को प्रथम अर्चिका के सातवें प्रपाठक में लिया गया है, जो इसकी विशिष्टता है।"

1. म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 13 में उद्धृत। 2. वही। 3. वही, पृष्ठ 14 से उद्धृत।

# III

यह एक तर्क है। एक और तर्क है जिससे हमें यह तय करने में मदद मिलती है कि पुरुष सूक्त की रचना पहले हुई अथवा बाद में। इसके लिए यह पता करना जरूरी हो जाता है कि वेदों की कितनी संहिताओं में पुरुष सूक्त को लिया गया है। विभिन्न वेदों और संहिताओं का परीक्षण करने पर, यह स्थिति सामने आती है–

सामवेद में पुरुष सूक्त से केवल पांच मंत्र लिए गए हैं। जहां तक शुक्ल यजुर्वेद का सवाल है, तो वाजसनेयी संहिता में इसे सम्मिलित किया गया है, किंतु इन दोनों का अंतर बहुत अधिक है। ऋग्वेद में पुरुष सूक्त के केवल 16 मंत्र हैं। किंतु वाजसनेयी संहिता के पुरुष सूक्त में 22 मंत्र हैं। कृष्ण यजुर्वेद की वर्तमान में तीन संहिताएं उपलब्ध हैं। किंतु तैत्तिरी, कठ और मैत्रायणी, इन तीन संहिताओं में से किसी में भी पुरुष सूक्त को स्थान नहीं दिया गया है। अथर्ववेद ऐसा एकमात्र वेद है जिसमें ऋग्वेद के पुरुष सूक्त को कमोबेश वैसा का वैसा ले लिया गया है।

विभिन्न वेदों में पुरुष सूक्त का पाठ एक-सा नहीं है। वाजसनेयी संहिता के चार अतिरिक्त मंत्र इस ग्रंथ की ही विशिष्टता हैं और ये मंत्र ऋग्वेद, सामवेद अथवा अथर्ववेद में सम्मिलित सूक्त में नहीं मिलते। एक और अंतर मंत्र 16 से सम्बंधित है। ऋग्वेद का 16वां मंत्र न तो अथर्ववेद में मिलता है, न सामवेद में, और न ही यजुर्वेद में। इसी प्रकार, अथर्ववेद का 16वां मंत्र न तो ऋग्वेद में मिलता है और न ही यजुर्वेद में। इन तीन वेदों में जो पंद्रह मंत्र समान हैं, उनके पाठ भी एक-से नहीं हैं। तीनों वेदों में मंत्रों का क्रम भी एक-सा नहीं है। यह निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जाता है–

| यजुर्वेद | ऋग्वेद | सामवेद | अथर्ववेद |
|---|---|---|---|
| 1 | 1 | 3 | 1 |
| 2 | 2 | 5 | 4 |
| 3 | 3 | 6 | 3 |
| 4 | 4 | 4 | 2 |
| 5 | 5 | 7 | 9 |
| 6 | 8 | * | 10 |
| 7 | 9 | * | 11 |
| 8 | 10 | * | 14 |
| 9 | 7 | * | 13 |
| 10 | 11 | * | 12 |
| 11 | 12 | * | 5 |
| 12 | 13 | * | 6 |
| 13 | 14 | * | 7 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 14 | 6 | * | 8 |
| 15 | 15 | * | 15 |
| 16+ | 16 | * | 16+ |
| 17 | * | * | * |
| 18 | * | * | * |
| 19 | * | * | * |
| 20 | * | * | * |
| 21 | * | * | * |
| 22 | * | * | * |

** का अर्थ है कि ये मंत्र नहीं मिलते।* *+ का अर्थ है कि ये एक-से नहीं हैं।*

यहां समझने की बात यह है कि यदि पुरुष सूक्त एक पुराना, परंपरागत पाठ होता, तो क्या अन्य वेद इतनी स्वतंत्रता से इसे ले सकते थे? क्या वे इसमें इस तरह का बदलाव और काट-छांट कर सकते थे?

विभिन्न वेदों के स्तोत्रों में पुरुष सूक्त के स्थान का भी अत्यधिक महत्त्व है। ऋग्वेद में यह विविध भाग में है और अथर्ववेद में यह पूरक भाग में है। यदि यह ऋग्वेद की प्राचीनतम रचना थी, तो इसे ऐसे गौण संग्रह में क्यों रखा गया? इनसे क्या संकेत मिलता है? इनसे यह संकेत मिलता है कि–

(1) यदि पुरुष सूक्त को कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, काठक और मैत्रायणी संहिताओं में सम्मिलित नहीं किया गया था, तो इसका अर्थ यह निकलता है कि पुरुष सूक्त को ऋग्वेद में इन संहिताओं के बाद जोड़ा गया था।

(2) वेदों में इसे विविध और पूरक भागों में स्थान दिए जाने से यह स्पष्ट होता है कि इसकी रचना बाद में हुई थी।

(3) विभिन्न संहिताओं के रचयिताओं ने जिस स्वतंत्रता से मंत्रों में जोड़ा-घटाया, उससे यह पता चलता है कि वे इसे प्राचीन स्तोत्र नहीं मानते थे, जिसे वे उसके मूल रूप में वैसा का वैसा प्रस्तुत करने को बाध्य होते।

इन बातों से प्रो. मैक्स मूलर और अन्य विद्वानों के इन विचारों की पुष्टि होती है कि पुरुष सूक्त को बाद में जोड़ा गया था।

## IV

पुरुष सूक्त के छंदों की शैली में जो अंतर है, वह भी अत्यधिक उल्लेखनीय है। पुरुष सूक्त पढ़ने वाला कोई भी व्यक्ति देख सकता है कि इन दो–11 और 12–मंत्रों को छोड़कर पूरा का पूरा सूत्र वर्णनात्मक शैली में है। किंतु, चार वर्णों की उत्पत्ति की व्याख्या करने वाले दो मंत्र प्रश्नोत्तर शैली में हैं। प्रश्न यह है–वर्णनात्मक शैली को भंग

करते हुए इन स्तोत्रों को प्रश्नात्मक शैली में क्यों रखा गया? इसका एक मात्र उत्तर यही है कि रचयिता एक नए विषय को एक सटीक ढंग से प्रस्तुत करना चाहता था। इसका यह अर्थ हुआ कि पुरुष सूक्त को ऋग्वेद में बाद में तो जोड़ा गया ही, ये मंत्र विशेष भी पुरुष सूक्त से बहुत बाद के हैं।

कुछ आलोचकों ने तो यहां तक कहा है कि पुरुष सूक्त और कुछ नहीं ब्राह्मणों द्वारा अपनी श्रेष्ठता जताने के लिए की गई एक जालसाज़ी है। पुरोहित अनेक प्रकार की जालसाज़ी करने के लिए ख्यात हैं। कांस्टैन्टाइन और सूडो-इज़िडोर डिक्रीटल्स के योगदान पोपतंत्र के इतिहास की सुविख्यात जालसाज़ियां हैं। भारत के ब्राह्मण इस प्रकार के प्रपंच से अछूते नहीं थे। उन्होंने विधवाओं को जलाने के समर्थन में ऋग्वेद को दिखाने के इरादे से 'अग्रे' शब्द को किस प्रकार 'अग्ने' में बदल दिया, यह बात स्वयं प्रो. मैक्स मूलर जैसे विद्वान ने कही है। यह भी सुविदित है कि ईस्ट इंडिया कंपनी के समय में किस प्रकार एक-एक वादी के मामले को पुष्ट करने के लिए एक पूरी की पूरी स्मृति ही रच डाली गई थी। इसलिए, इसमें कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है, यदि ब्राह्मणों ने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को वेदसम्मत बनाने की दृष्टि से पुरुष सूक्त को—पूरा का पूरा नहीं तो, कम से कम दो मंत्रों 11 और 12 को चौथा वर्ण बनने के बहुत बाद गढ़ दिया।

## V

पुरुष सूक्त क्या ब्राह्मण ग्रंथों से भी पहले का है? यह प्रश्न पहले प्रश्न से भिन्न और पृथक है। हो सकता है कि पुरुष सूक्त ऋग्वेद के अंतिम भाग में है। फिर भी, यदि पूरा ऋग्वेद ब्राह्मण ग्रंथों से पहले का है, तो पुरुष सूक्त फिर भी ब्राह्मण ग्रंथों से पहले का ही कहलाएगा। इसलिए, इस प्रश्न पर अलग से विचार किया जाना चाहिए।

यह प्रो. मैक्स मूलर का विचार है कि वैदिक साहित्य के विकास का क्रम वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों से होकर सूत्रों तक आता है। यदि इस मत को मान लिया जाए तो इसका यह अर्थ होगा कि पुरुष सूक्त को ब्राह्मण ग्रंथों से पहले का ही होना चाहिए। सवाल उठता है—क्या प्रो. मैक्स मूलर के मत को त्रुटिरहित माना जा सकता है? यदि इसे त्रुटिहीन माना जा सकता है, तो इस मत के दो निष्कर्ष निकलेंगे—

(1) ऋग्वेद के समय में चार वर्ण थे और शतपथ ब्राह्मण के समय में वे तीन हो गए; अथवा

(2) यह परंपरा शतपथ ब्राह्मण में पूर्णरूपेण अभिलिखित नहीं है।

स्पष्ट है कि ये दोनों ही निष्कर्ष अनर्गल हैं और इन्हें अस्वीकार कर देना चाहिए। पहला निष्कर्ष तो प्रत्यक्ष तौर पर अनर्गल है। दूसरा निष्कर्ष इसलिए अमान्य है क्योंकि ब्राह्मण ग्रंथों में वर्णों के उद्‌विकास का जो सिद्धांत मिलता है वह पुरुष सूक्त में प्रतिपादित सिद्धांत से भिन्न है और अपने आप में पूर्ण भी है। यदि मैक्स मूलर के मत को बिलकुल सही मान लें तो इस निष्कर्ष की अनर्गलता अपरिहार्य हो जाती है। इस मत

को इस अर्थ में सही नहीं माना जा सकता कि सभी संहिताओं की रचना हो जाने से पहले किसी भी ब्राह्मण की रचना नहीं हुई थी। दूसरी ओर, जैसा कि प्रो. बेलवलकर और प्रो. रानाडे ने कहा है, यह संभव है कि इनमें से अधिकांश रचनाएं मिली-जुली और एक ही काल की हैं, और इसलिए वेदों का एक भाग दूसरे भाग से पहले का हो सकता है और ब्राह्मण ग्रंथों का एक भाग वेदों के विभिन्न भागों से पहले का हो सकता है। यदि यह विचार सही है तो फिर यह मानना ही होगा कि शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीय ब्राह्मण के वे अंश ऋग्वेद के पुरुष सूक्त से पहले के हैं जिनमें यह कहा गया है कि एक समय केवल तीन ही वर्ण थे।

पुरुष सूक्त के इस परीक्षण से क्या निष्कर्ष निकलता है? इससे केवल एक ही निष्कर्ष निकलता है कि यह सूक्त ऋग्वेद में बाद में जोड़ा गया था, और इसलिए इस विषय में कोई विवाद नहीं हो सकता कि आर्यों के समाज के आदि काल से ही चार वर्ण थे।

उपर्युक्त कारणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शूद्रों की उत्पत्ति सम्बंधी मेरे सिद्धांत से ऐसी कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती जिसका उल्लेख इस अध्याय के प्रारंभ में किया गया है। यदि ऐसा लगता भी है कि इससे कोई समस्या उत्पन्न हुई है, तो यह इस मान्यता के कारण है कि पुरुष सूक्त उस बात का प्रामाणिक और सही अभिलेख है जो उसमें कही गई है। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि यह मान्यता बिलकुल निराधार है। इसलिए, मुझे इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती कि एक समय था जब आर्यों के समाज में केवल तीन ही वर्ण थे और शूद्र दूसरे अर्थात क्षत्रिय वर्ण के थे।

अध्याय : नौ

# ब्राह्मण बनाम शूद्र

इस सिद्धांत से समस्या का पूर्ण समाधान नहीं होता कि शूद्र लोग क्षत्रिय थे और यदि वे चौथे वर्ण में पहुंच गए तो इसका कारण यह था कि उन्हें उस स्थिति में धकेला गया था। इससे एक और ही समस्या खड़ी होती है। समस्या यह है कि आखिर शूद्रों को नीचे धकेला ही क्यों गया।

यह समस्या नई है। इसे पहले कभी उठाया नहीं गया। इसलिए, यह अपेक्षा भी नहीं की जा सकती कि इस विषय पर मौजूदा साहित्य में इसका समाधान मिलेगा। यह सवाल पहली बार मैंने ही उठाया है। इस प्रश्न पर क्योंकि मेरा शूद्र सम्बंधी सिद्धांत आधारित है, इसलिए इसका संतोषजनक उत्तर देने का बोझ भी मुझ पर ही होगा। मुझे विश्वास है कि मैं इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर दे सकता हूं। मेरा उत्तर यह है कि शूद्रों की गिरावट तो शूद्रों और ब्राह्मणों के बीच हिंसक टकराव के परिणामस्वरूप हुई। यह मेरे लिए सुयोग का विषय है कि इसका प्रचुर साक्ष्य उपलब्ध है।

## I

शूद्र राजा सुदास और ब्राह्मण ऋषि वसिष्ठ के बीच हिंसक टकराव के प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध हैं। किंतु, इस टकराव से सम्बंधित तथ्य अत्यंत भ्रामक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। आगे मैंने उन्हें एक स्पष्ट और व्यवस्थित ढंग में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

यह टकराव अथवा संघर्ष किस प्रकार का था, इसे समझने के लिए पहले वसिष्ठ और विश्वामित्र के सम्बंधों को समझना होगा।

वसिष्ठ और विश्वामित्र शत्रु थे और कट्टर शत्रु थे। ऐसा कोई भी प्रसंग नहीं होता था जिसमें उनमें से कोई एक पक्ष हो और दूसरा उसका विरोधी न हो। उनकी शत्रुता के साक्ष्य के तौर पर, मैं कुछ प्रसंगों का उल्लेख करूंगा। एक प्रसंग सत्यव्रत अथवा त्रिशंकु का है। हरिवंश में[1] यह कथा इस प्रकार वर्णित है–

> "इस बीच वसिष्ठ, राजा (सत्यव्रत के पिता) के साथ अपने गुरु-शिष्य सम्बंध के नाते अयोध्या नगरी, देश, और राज-महल का शासन चलाते रहे। किंतु, सत्यव्रत मूर्खता के कारण अथवा नियति के चलते वसिष्ठ से निरंतर चिढ़ता था, क्योंकि उन्होंने (उचित कारण से ही) उसके पिता द्वारा उसे राजसत्ता

*1. म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 337-378 में उद्धृत।*

से बाहर रखने पर हस्तक्षेप नहीं किया था। 'विवाह संस्कार के नियम तभी बाध्यकारी होते हैं जब सातवां फेरा पूरा हो जाता है,' सत्यव्रत का कहना था, 'और जब मैंने कन्या का अपहरण किया तब यह पूरा नहीं करते।' इसीलिए सत्यव्रत के मन में वसिष्ठ के प्रति रोष था, जबकि वसिष्ठ ने मर्यादा के अनुसार ही किया था। सत्यव्रत अपने पिता द्वारा मौन धारण कराए जाने के औचित्य को भी नहीं समझता था...जब उस (राजा) ने इस कठोर व्रत का समर्थन किया तो उसका मानना था कि उसने अपने परिवार की परंपरा का ही पालन किया है। किंतु, जैसा कहा जा चुका है, मुनि वसिष्ठ ने उसके पिता को ऐसा करने से नहीं रोका, किंतु उसे राजा बनाने का संकल्प कर लिया। जब शक्तिशाली राजकुमार ने बारह वर्ष का प्रायश्चित पूरा कर लिया, तब खाने के लिए मांस न होने की स्थिति में उसने वसिष्ठ की दुधारू गाय को देखा जो सारे मनोवांछित पदार्थ देती थी, और क्रोध, उन्माद तथा अशक्तता के वशीभूत होकर भूख की पीड़ा में उसने उस गाय का वध कर दिया...उसने उसका मांस स्वयं तो खाया ही विश्वामित्र के पुत्र को भी खिलाया। जब वसिष्ठ ने यह सुना तो उन्हें उस पर बहुत क्रोध आया, और उन्होंने उसे त्रिशंकु नाम दे दिया क्योंकि उसने तीन पाप किए थे। घर लौटने पर विश्वामित्र अपनी पत्नी को मिली सहायता से प्रसन्न[1] हुए, और उन्होंने त्रिशंकु से वरदान मांगने को कहा। त्रिशंकु ने सशरीर स्वर्ग जाने का वरदान मांगा। बारह वर्षों से सूखे का अंत हो चुका था, और मुनि (विश्वामित्र) ने त्रिशंकु को उसके पिता के राज्य का शासक बना दिया और उसके निमित्त यज्ञ किया। तब प्रतापी कौशिक ने देवताओं और वसिष्ठ के विरोध के बावजूद राजा को सशरीर स्वर्ग पहुंचा दिया।''

एक और प्रसंग त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चंद्र का है जिसमें ये दोनों एक-दूसरे के विरोधी दिखाई देते हैं। यह कथा विष्णु पुराण और मार्कण्डेय पुराण में वर्णित है। यह कथा इस प्रकार है—[2]

---

1. *हरिवंश के अनुसार—''इस दुष्कर्म के फलस्वरूप इंद्र ने बारह वर्षों तक वर्षा नहीं की। उस समय विश्वामित्र अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़कर सागर तट पर तपस्या के लिए गए हुए थे। अभावों से त्रस्त उनकी पत्नी अपने दूसरे पुत्र को एक सौ गायों के बदले बेचने जा रही थी जिससे वह अन्य का भरण-पोषण कर सके; किंतु सत्यव्रत ने उसे इस स्थिति से उबार लिया और उसके पुत्र को छुड़ा लिया। सत्यव्रज ने उन्हें जंगली पशुओं का मांस उपलब्ध करवाकर उनका पोषण किया और स्वयं बारह वर्ष तक मौन धारण कर प्रायश्चित किया।''*
*हरिवंश में अन्यत्र यह लिखा है कि त्रिशंकु ने एक नागरिक की युवा पत्नी का अपहरण कर लिया था और इस अपराध के लिए उसके पिता ने उसे घर से निकाल दिया था। वसिष्ठ ने उसके निष्कासन को रोने के लिए हस्तक्षेप नहीं किया। इस ग्रंथ में इसी का उल्लेख है।*
2. *म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 379-387*

''एक बार शिकार करते समय राजा ने स्त्रियों का विलाप सुना जो ऋषि विश्वामित्र के अभूतपूर्व कठोर तप के कारण था। निर्बलों की रक्षा करने के क्षत्रिय धर्म का पालन करने के उद्देश्य से और गणेश देवता की प्रेरणा से, हरिश्चंद्र ने ललकारा, 'यह कौन पापी है जो अपने वस्त्रांचल में अग्नि बांध रहा है, जबकि मैं उसका स्वामी शक्ति और तेज से संपन्न यहां उपस्थित हूं? आज वह उन बाणों से बिंधा चिर-निद्रा में निमग्न हो जाएगा जो मेरे धनुष से निकलकर आकाश की सभी दिशाओं को दीप्त करते हैं।' यह सुनकर विश्वामित्र भड़क उठे। उनके क्रोध से उनकी (तप) विद्या वहीं नष्ट हो गई, और हरिश्चंद्र ने पीपल के पत्ते के समान कांपते हुए कहा कि वह तो बस राज-धर्म निभा रहे थे जिसके अंतर्गत प्रतिष्ठित ब्राह्मणों को तथा अन्य निर्धनों को दान देना, निर्बलों की रक्षा करना, और शत्रुओं से युद्ध करना आता था। तब विश्वामित्र ने राजा से दक्षिणा की मांग की। राजा ने कहा कि ऋषि जो मांगना चाहें मांग लें—सोना, उसका पुत्र, पत्नी, शरीर, जीवन, राज्य, सौभाग्य, कुछ भी। ऋषि ने सबसे पहले राजसूय यज्ञ का दान मांगा। राजा ने उसका वचन दे दिया और ऋषि से और कुछ भी मांगने को कहा। ऋषि ने पूरी धरती का साम्राज्य मांगा जिसमें स्वयं हरिश्चंद्र, उसकी पत्नी, उसके पुत्र, और सदा साथ रहने वाले सद्‌गुण को छोड़ राजा को सभी कुछ देना था। हरिश्चंद्र इसके लिए सहर्ष तैयार हो गया। तब विश्वामित्र ने उससे सभी आभूषण उतारकर वृक्षों की छाल पहन अपनी पत्नी शैव्या और पुत्र के साथ राज्य छोड़कर चले जाने को कहा। जब वह जाने लगा तो विश्वामित्र ने उसे रोककर उससे यज्ञ की दक्षिणा मांगी जो उसने अभी तक नहीं दी थी। राजा ने कहा कि अब तो उसके पास उसकी पत्नी, पुत्र और स्वयं का शरीर ही बचा है। विश्वामित्र ने फिर भी उससे दक्षिणा की मांग की और कहा कि ब्राह्मणों को वचनानुसार दक्षिणा न देने से उसका सर्वनाश हो जाएगा। इस शाप से भयभीत राजकुमार ने एक महीने में दक्षिणा देने की बात कही और अपनी प्रजा को विलाप करता छोड़ अपनी पत्नी के साथ चल पड़ा जो इस थकान की अभ्यस्त नहीं थी। जब वह राज्य न छोड़ने की अनुनय-विनय करने वालों की बात सुनने के लिए ठहर गया तो विश्वामित्र वहां आ गए और इस विलंब तथा राजा की अनिच्छा को देखकर वह रानी को अपने डंडे से मारने लगे और राजा उसे घसीट कर ले चला। तब हरिश्चंद्र अपनी पत्नी और अपने छोटे-से पुत्र को लेकर बनारस चल दिया कि शिव की इस दिव्य नगरी में ऐसा कुछ नहीं होगा। किंतु यहां उसे विश्वामित्र ने मोहलत की अवधि पूरी न होते हुए भी हरिश्चंद्र से अपनी दक्षिणा की मांग कर डाली। शैव्या ने सिसकते हुए कहा कि वह (हरिश्चंद्र) उसे (शैव्या को) बेच दे। यह प्रस्ताव सुनकर हरिश्चंद्र अचेत हो जाता है, फिर होश में अपने पर विलाप करता है, और फिर से अचेत हो जाता

है। उसे इस हालत में देख रही उसकी पत्नी शैव्या भी अचेत हो जाती है। जब वे इस प्रकार अचेत होते हैं तो उनका भूखा-प्यासा पुत्र आर्तनाद करता है, 'पिता, मुझे रोटी दो; मां, मां, मुझे भोजन दो; भूख मुझे सता रही है और मेरी जीभ सूख रही है।' उसी क्षण विश्वामित्र लौट आए और हरिश्चंद्र पर पानी छिड़क कर उसे होश में लाए, और फिर से दक्षिणा की मांग करने लगे। राजा फिर अचेत हो गया और उन्होंने उसे फिर सचेत कर दिया। ऋषि ने उसे धमकी दी कि यदि उसने सूर्यास्त तक दक्षिणा नहीं दी तो वह उसे शाप दे देंगे। उसकी पत्नी उस पर दबाव डालती है तो वह उसे बेचने को तैयार हो गया। किंतु उसने यह भी कहा कि वह जो कर रहा है वह कोई अमानवीय अभागा भी नहीं करेगा। तब उसने शहर में जाकर अपनी पत्नी को एक दासी के रूप में बेचने के लिए प्रस्तुत कर दिया। एक धनी वृद्ध ब्राह्मण ने उसे घर के काम के लिए खरीद लिया। अपनी मां को घसीट कर ले जाते देख उसका पुत्र उसके पीछे भागा। उसकी आंखें आंसुओं से भीग रही थीं। और वह 'मा-मां' चिल्लता जा रहा था। जब वह समीप आया तो खरीदार ब्राह्मण ने उसे लात मारी; किंतु वह अपनी मां को ले जाने नहीं दे रहा था, और लगातार 'मां-मां' चिल्ला रहा था। तब रानी ने उस ब्राह्मण से कहा, 'स्वामी, दया करके इस बच्चे को भी खरीद लें, क्योंकि उसके बिना मैं आपके किसी काम नहीं आ पाऊंगी। मेरे अभागेपन को देख मुझ पर दया करें और मुझे मेरे बेटे से उसी प्रकार मिला दें जैसे बछड़े के साथ गाय।' ब्राह्मण इस पर सहमत हो गया—'ये पैसे लो और बालक मुझे दे दो।' जब ब्राह्मण दोनों को लेकर ओझल हो गया तो विश्वामित्र फिर प्रकट हो गए और उन्होंने अपनी मांग फिर रख दी। और जब दुखी हरिश्चंद्र ने उन्हें वह छोटी-सी राशि देनी चाही जो उसने अपनी पत्नी और पुत्र को बेचकर प्राप्त की थी, तो उन्होंने क्रोध में कहा, 'नीच क्षत्रिय, यदि तू सोचता है कि यह दक्षिणा मेरी योग्यता के अनुरूप है, तो तुझे शीघ्र ही मेरे तप और मेरे ज्ञान की शक्ति को देखेगा।' हरिश्चंद्र ने उन्हें अतिरिक्त दान का वचन दिया और विश्वामित्र ने उसे इसके लिए दिन की शेष अवधि का समय दिया। जब आतंकित और दुखी हरिश्चंद्र ने स्वयं को बेचने के लिए प्रस्तुत किया कि उस ऋषि की क्रूरतापूर्ण मांग को पूरा करके, तो धर्म एक चांडाल का वेश धारण कर उसे मुंहमांगे दाम पर खरीदने को तैयार हो गया। हरिश्चंद्र ने यह कहते हुए मना कर दिया कि ऐसी नीच दासता से तो वह ऋषि शाप में भस्म हो जाना पसंद करेगा। किंतु विश्वामित्र फिर वहां आ गए और उससे पूछने लगे कि उसने चांडाल की इतनी बड़ी राशि क्यों ठुकरा दी। जब हरिश्चंद्र ने अपने सूर्यवंशी होने की बात कही तो विश्वामित्र ने उसे धमकी दी कि यदि उसने इस तरीके से अपना दायित्व पूरा नहीं किया तो वह उसे शाप दे देंगे। हरिश्चंद्र ने उनसे याचना की कि वह उन्हें

एक चांडाल की गुलामी करने को बाध्य न करें और वह अपना शेष ऋण उतारने के लिए विश्वामित्र का दास बनने को तैयार है। इस पर विश्वामित्र ने कहा, 'यदि तू मेरा दास है, तो फिर मैं तुझे इस चांडाल को **एक हजार लाख** मुद्रा में बेचता हूं।' चांडाल ने प्रसन्न होकर भुगतान कर दिया और हैरान-दुखी हरिश्चंद्र को बांधकर पीटता हुआ अपने निवास की ओर लेकर चल दिया। चांडाल ने हरिश्चंद्र को एक श्मशान में कफन चुराने के लिए भेज दिया और कहा कि उसे इसका 2/6 अंश मिलेगा; 3/6 उसके स्वामी को, और 1/6 राजा को दिया जाएगा। हरिश्चंद्र ने इस भयावह स्थान और इस नीच व्यवसाय में अत्यधिक दुखी अवस्था में बारह महीने काटे, जो उसके लिए एक सौ वर्षों के समान थे। फिर वह सो गया और उसने अपने विगत जीवन के सपने देखे। जब वह जागा, तो उसकी पत्नी उनके पुत्र को अंतिम संस्कार के लिए वहां लेकर आई, जिसे सांप ने डस लिया था। विपदाओं ने उनकी शक्ल-सूरत इतनी बदलकर रख दी थी कि पहले तो पति-पत्नी दोनों ही एक-दूसरे को नहीं पहचान पाए। किंतु, हरिश्चंद्र ने उसके विलाप-स्वर से शीघ्र ही पहचान लिया कि वह उसकी पत्नी है, और वह अचेत हो गया; रानी ने अपने पति को पहचाना तो वह भी मूर्छित हो गई। होश में आने पर दोनों ही विलाप करने लगे। पिता अपने पुत्र के निधन पर विलाप कर रहा था, तो पत्नी राजा की दारुण स्थिति पर। फिर वह उसके आलिंगन में, उसके गले लगकर उससे पूछने लगी, 'यह सच है या सपना।' वह बेहद हैरान थी। फिर वह बोली कि 'यदि यह सच है तो फिर धर्म उनके लिए व्यर्थ है जो धर्म का पालन करते हैं।' अपने स्वामी की अनुमति लिए बिना अपने पुत्र का अंतिम संस्कार करने से हरिश्चंद्र ने पहले तो संकोच किया, किंतु फिर हर परिणाम को भुगतने के लिए तैयार हो गया और उसने स्वयं को दिलासा दी। वह बोला, 'यदि मैंने दान दिया है, यज्ञ किए हैं और अपने धर्म गुरुओं को प्रसन्न किया है, तो फिर मैं और तुम (मेरी पत्नी) अपने पुत्र के साथ परलोक में जा मिलें।' रानी ने भी इसी तरीके से मरने का संकल्प कर लिया। जब हरिश्चंद्र अपने पुत्र के पार्थिव शरीर को चिता पर रखकर परमात्मा भगवान हरि नारायण कृष्ण का ध्यान कर रहा था तभी धर्म के नेतृत्व और विश्वामित्र के सान्निध्य में सभी देवता वहां आ गए। धर्म ने राजा से आग्रह किया कि वह अपने कठोर इरादे को त्याग दे; और इंद्र ने कहा कि उसने, उसकी पत्नी ने, और उनके पुत्र ने अपने सद्कर्मों से स्वर्ग को जीत लिया है। देवताओं ने आकाश से अमृत और पुष्पों की वर्षा की; और राजा का पुत्र जीवित हो उठा और उसकी तरुणाई लौट आई। दिव्य वस्त्रों और मालाओं से सुशोभित राजा, और रानी ने अपने पुत्र को सीने से लगा लिया। किंतु, हरिश्चंचद्र ने कहा कि वह तब तक स्वर्ग नहीं जा सकता जब तक अपने स्वामी चांडाल की अनुमति नहीं ले लेता और उसे पर्याप्त

धन नहीं दे देता। तब धर्म ने उसे बताया कि उन्होंने स्वयं चांडाल का वेष धारण किया था। फिर राजा ने यह आपत्ति व्यक्त की कि वह तभी जा सकता है जब उसकी पुण्य की भागीदार उसकी स्वामीभक्त प्रजा को भी स्वर्ग जाने की अनुमति हो, चाहे वह एक ही दिन के लिए हो। इंद्र ने इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया। और जब विश्वामित्र ने राजा हरिश्चंद्र के पुत्र रोहिताश्व का अभिषेक उसके उत्तराधिकारी के रूप में कर दिया, तो हरिश्चंद्र, उसके मित्र और अनुयायी, सभी साथ-साथ स्वर्ग को चले गए। जब गंगा जल में बारह वर्ष तक तपस्या करने के पश्चात हरिश्चंद्र के कुल पुरोहित वसिष्ठ को इस सबका पता चला तो वह इस श्रेष्ठ राजा पर हुए इस अत्याचार पर अत्यंत क्रोधित हुए और बोले कि उनका रोष तब भी इतना नहीं भड़का था जब उनके अपने सौ पुत्र विश्वामित्र के हाथों मारे गए थे। और उन्होंने उसे बक होने का अभिशाप दिया, 'वह दुष्ट मनुष्य, ब्राह्मणों का शत्रु, मेरे शाप से बुद्धिमानों के समाज से बहिष्कृत हो जाएगा और अपनी प्रज्ञा को खोकर बक बन जाएगा।' विश्वामित्र ने शाप का बदला शाप से दिया और वसिष्ठ को अरि नाम की चिड़िया बना दिया। अपने नए रूपों में दोनों में भीषण लड़ाई हुई। अरि दो हजार योजन अर्थात 18000 मील की ऊंचाई छू सकता था और बक 3090 योजन की। पहले उन्होंने अपने डैनों से एक-दूसरे पर वार किया। गिरते पहाड़ों, उनके डैनों की फड़फड़ाहट से जो आंधी उठी उसने पहाड़ों को गिरा दिया और इससे पूरी धरती कांप गई, सागर का पानी उमड़ पड़ा, पृथ्वी पाताल की ओर झुक गई। इनसे अनेक प्राणी नष्ट हो गए। इस घोर अवस्था को देख ब्रह्मा समस्त देवताओं सहित वहां पहुंच गए और उन्होंने उन दोनों से बाज आने को कहा। वे इतने क्रोध में थे कि उन्होंने ब्रह्मा की बात भी नहीं मानी। तब ब्रह्मा ने उन्हें फिर से मनुष्य बना दिया और उनसे समझौता कर लेने को कहा। इस प्रकार इस टकराव का अंत हुआ।''

उनके एक-दूसरे के विरोध में खड़े होने का एक और प्रसंग अयोध्या के राजा अंबरीष से जुड़ा है—

''कथा इस प्रकार है[1] कि जब अंबरीष एक यज्ञ में व्यस्त था तो इंद्र शिकार (बलि) का अपहरण कर ले गए। पुरोहित ने कहा कि यह अशुभ घटना राजा के कुशासन के कारण हुई है और इसके शमन के लिए नर बलि का प्रबंध करना होगा। बहुत खोजने के बाद राजर्षि अंबरीष की भेंट ब्राह्मण ऋषि ऋचिक से हुई जो भृगु के वंशज थे। उन्होंने ऋचिक से कहा कि वह एक लाख गायों के बदले अपने एक पुत्र को नर-बलि के लिए बेच दें। ऋचिक ने कहा कि वह अपने सबसे बड़े पुत्र को नहीं बेचेंगे और उनकी पत्नी ने कहा कि वह सबसे छोटे को नहीं बेचेंगे, क्योंकि उनके अनुसार सबसे छोटा बेटा मां का दुलारा होता है। इस

1. म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 405-407

पर दूसरे पुत्र शुनःशेप ने कहा कि तब तो उसे ही बेच देना चाहिए और उसने राजा से कहा कि उसे ही ले चलें। एक लाख गाएं, एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएं और ढेरों जवाहरात देखकर शुनःशेप को ले जाया गया। जब वे पुष्कर से होकर जा रहे थे तो शुनःशेप ने अपने मामा विश्वामित्र को देखा जो अन्य ऋषियों के साथ वहां तप कर रहे थे। वह उनकी भुजाओं में जा गिरा और अपनी अनाथ, मित्रहीन तथा असहाय अवस्था का वास्ता देकर उनसे सहायता की याचना करने लगा। विश्वामित्र ने उसे सांत्वना दी और अपने पुत्रों से कहा कि वे स्वयं को शुनःशेप के कक्ष में बलि के रूप में प्रस्तुत करें। मधुसयंद और राजर्षि के अन्य पुत्रों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया और कहा, 'तुम अपने पुत्रों की बलि देकर दूसरों के पुत्रों को क्यों बचा रहे हो? हमें तो यह बात गलत, और अपना मांस स्वयं खाने जैसी लगती है।' ऋषि अपने आदेश की अवहेलना होने पर अपने पुत्र से अत्यंत कुपित हुए और उन्हें शाप दिया कि वे वसिष्ठ के पुत्रों के समान अत्यधिक नीच वर्णों में पैदा हों और एक हजार वर्षों तक कुत्ते का मांस खाएं। फिर उन्होंने शुनःशेप से कहा, 'जब तुम्हें पवित्र रज्जुओं से बांधा जाए, लाल माला पहनाई जाए, और लेप करके विष्णु के यूप से बांध दिया जाए तब तुम अंबरीष के यज्ञ में अग्नि की स्तुति में ये दो गाथाएं कहना; और तब तुम्हारी मनोकामना पूरी हो जाएगी।' जब शुनःशेप को दो गाथाएं मिल गईं तो उसने तुरंत राजा अंबरीष से कहा कि उन्हें अपने गंतव्य को चलना चाहिए। जब उसे लाल वस्त्र पहना कर यूप से बांध दिया गया, तो उसने उन उत्कृष्ट गाथाओं से दोनों देवताओं—इंद्र और उनके छोटे भाई (विष्णु)—की स्तुति की। सहस्र आंखों वाले इंद्र इस स्तोत्र से प्रसन्न हुए और उन्होंने शुनःशेप को दीर्घायु होने का वरदान दिया।''

एक-दूसरे के विरोध में आने का उनका अंतिम प्रसंग राजा कल्माषपाद से सम्बंधित है। यह प्रसंग महाभारत के आदि पर्व में मिलता है—[1]

''कल्माषपाद इक्ष्वाकु वंश का राजा था। विश्वामित्र चाहते थे कि वह उसे राजपुरोहित नियुक्त कर लें; किंतु राजा यह पद वसिष्ठ को देना चाहता था। हुआ यह कि एक बार राजा शिकार पर गया, और ढेर सारा शिकार करने के बाद वह थक कर चूर हो गया और उसे भूख-प्यास भी सताने लगी। उसे वसिष्ठ के एक सौ पुत्रों में सबसे बड़ा शक्ति मार्ग में मिला, और उसने उससे अपने रास्ते से हट जाने को कहा। पुरोहित ने विनम्रता से उत्तर दिया, 'यह पथ मेरा है, हे राजा; यह नियम अनादि काल से चला आ रहा है; हर स्थिति में, राजा को ब्राह्मण के लिए मार्ग छोड़ देना चाहिए।' दोनों में से कोई भी झुकने को तैयार नहीं हुआ, और विवाद इतना बढ़ गया कि राजा ने मुनि को कोड़े से मार दिया। मुनि ने

1. म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 415-417

कुपित साधुओं के समान व्यवहार करते हुए राजा को नरभक्षी हो जाने का शाप दे दिया। यह वह समय था जब कल्माषपाद का पुरोहित होने को लेकर विश्वामित्र और वसिष्ठ के बीच शत्रुता चल रही थी। विश्वामित्र राजा का पीछा करते-करते वहां आ पहुंचे जहां उनका शक्ति के साथ विवाद चल रहा था। जब विश्वामित्र ने अपने शत्रु वसिष्ठ के पुत्र को वहां देखा तो वह (विश्वामित्र) अदृश्य हो गए। राजा जब शक्ति से दया की याचना करने लगे तो विश्वामित्र ने इस समझौते को रोकना चाहा, और उन्होंने एक नरभक्षी राक्षस को राजा के शरीर में प्रविष्ट करा दिया। ब्राह्मण ऋषि के शाप और विश्वामित्र के आदेश के चलते उस राक्षस ने ऐसा ही किया। विश्वामित्र ने जब यह देखा कि उनका उद्देश्य पूरा हो गया है, तो वह वहां से खिसक लिए और देश छोड़कर चले गए। तभी राजा को एक भूखा ब्राह्मण मिला और उन्होंने अपने रसोइए के हाथों उसे मानव मांस भिजवा दिया। क्यों कि कुछ उपलब्ध नहीं था। इस ब्राह्मण ने भी राजा को शक्ति के समान शाप दे दिया। शाप ने अब दोगुना हो जाने के कारण असर दिखाया, और शक्ति ही राजा का पहला शिकार हो गया। राजा ने शक्ति को खा लिया। विश्वामित्र के उकसाने पर राजा ने वसिष्ठ के अन्य पुत्रों को भी खा लिया। जब विश्वामित्र ने देखा कि शक्ति मर गया है, जो उन्होंने राक्षस को बार-बार वसिष्ठ के पुत्रों के विरुद्ध भड़काया और उस भयंकर राक्षस ने वसिष्ठ के उन पुत्रों को खा लिया जो शक्ति से छोटे थे, जैसे शेर जंगल के छोटे जानवरों को खा जाता है। विश्वामित्र के हाथों अपने पुत्रों के विनाश के बारे में सुनकर वसिष्ठ ने अपने दुख को सहन कर लिया। उन्होंने स्वयं को नष्ट कर देने के विषय में विचार किया किंतु विश्वामित्र के विनाश के बारे में कभी भी नहीं सोचा। उन्होंने मेरू पर्वत की चोटी से छलांग लगा दी किंतु चट्टानों पर ऐसे गिरे जैसे रूई के ढेर पर गिरे हों। जब गिरने से वह जीवित बच गए तो उन्होंने जंगल में एक धधकती आग में प्रवेश किया; किंतु वह धधकती आग भी उन्हें जला नहीं पाई, बल्कि बिलकुल ठंडी लगी। फिर वह अपने गले में एक भारी पत्थर बांधकर समुद्र में कूद गए; किंतु लहरों ने उन्हें सूखी भूमि पर फेंक दिया। तब वे अपने आश्रम चले गए; किंतु इसे खाली और निर्जन देखकर फिर से दुख में डूब गए और बाहर निकल गए; और जब उन्होंने हाल की वर्षा से उफनती विपाशा नदी को देख और तट से उखाड़कर अनेक वृक्षों को अपने साथ बहाकर ले जाते देखा तो उन्होंने उसमें डूब जाने का विचार किया। उन्होंने अपने आपको रस्सियों से कसकर बांधा और नदी में कूद पड़े; किंतु नदी ने उनके बंधन काट दिए और उन्हें मुक्त करके सूखी भूमि पर पहुंचा दिया; इसी से इस नदी का नाम विपाशा (विपाश=बंधनामुक्त) पड़ा। बाद में उन्होंने भयावह शतद्रु (सतलज) नदी को देखा जो मगरमच्छों आदि से भरी पड़ी थी, और उसमें कूद गए, और

जब मगरमच्छों ने अग्नि-से तेज वाले ब्राह्मण को देखा तो वह सौ दिशाओं में दौड़ पड़े, जिससे उसका यह नाम पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि एक बार फिर वह बचे रह गए; और जब उन्होंने देखा कि वह अपना अंत नहीं कर पा रहे तो वह वापस अपने आश्रम चले आए।''

ऐसे विशेष उदाहरण मिलते हैं। जिनमें वसिष्ट और विश्वामित्र का टकराव हुआ था। किंतु कभी-कभार की ऐसी घटनाओं के अतिरिक्त उनमें आम शत्रुआ भी थी। यह शत्रुता इतनी घातक थी कि विश्वामित्र तो वसिष्ठ का वध भी कर देना चाहते थे, जैसा कि महाभारत के शल्य पर्व से स्पष्ट होता है। महाभारत के रचयिता के अनुसार–[1]

''विश्वामित्र और ब्राह्मण ऋषि वसिष्ठ के बीच उनकी तपस्या को लेकर घोर शत्रुता थी। वसिष्ठ का आश्रम स्थाणुतीर्थ में था, और उसके पूर्व में विश्वामित्र का आश्रम था। ये दो महान संन्यासी अपनी-अपनी तपस्या में नई-नई तरकीबें सामने लाते थे। किंतु चिढ़े हुए थे। वह गहन सोच में पड़ गए। इस ऋषि का विचार यह था, 'यह सरस्वती नदी अपनी धारा के साथ मेरे पास उस तपस्वी वसिष्ठ को तीव्रता से ले आएगी जो प्रार्थनाओं में सबसे आगे है। जब वह अति श्रेष्ठ ब्राह्मण यहां आ जाएगा, तो मैं उसे अवश्य ही मार डालूंगा।' यह संकल्प करने के पश्चात, ऋषि विश्वामित्र ने क्रोध से लाल आंखें लिए नदियों की साम्राज्ञी को स्मरण किया। वह चिंता में पड़ गई, क्योंकि वह जानती थी कि वह अत्यंत शक्तिशाली, और क्रोधी स्वभाव के हैं। तब सरस्वती (नदियों की साम्राज्ञी) कांपती हुई हाथ जोड़कर मुनिवर के आगे उस स्त्री के समान आ खड़ी हुई जिसके पति का वध हो गया हो। वह अत्यंत परेशान होकर बोली, 'मैं क्या करूं?' क्रोधित मुनि ने उत्तर दिया, 'वसिष्ठ को शीघ्रता से यहां लाओ जिससे मैं उसका वध कर सकूं।' वह कमलाक्ष देवी हाथ जोड़ अत्यंत भय से ऐसे कांपने लगी जैसे हवा में लता कांपती है। किंतु विश्वामित्र ने उसकी हालत देखते हुए भी अपनी आज्ञा दोहरा दी। सरस्वती जानती थी कि ऋषि का कृत्य पापपूर्ण है, और वह यह भी जानती थी कि वसिष्ठ की शक्ति अनुपम है। वह अत्यंत भयभीत हुई कि दोनों ही ऋषि उसे शाप दे सकते हैं, और वह कांपती हुई वसिष्ठ के पास जा पहुंची और उनसे बता दिया कि उनके शत्रु ने क्या कहा है। वसिष्ठ ने उसे दीन और चिंतित अवस्था में देख उससे कहा, 'हे नदी साम्राज्ञी, मुझे निस्संकोच विश्वामित्र के पास ले चलो, कहीं वह तुम्हें शाप न दे दे।' दयालु ऋषि के ये वचन सुनकर सरस्वती सोचने लगी कि उसे क्या करना चाहिए जो बुद्धिमतापूर्ण हो। उसने सोचा, 'वसिष्ठ ने मुझ पर सदा दया की है, मुझे उनका कल्याण करना चाहिए।' तब कौशिक ऋषि को अपने तट पर प्रार्थना करते और आहुति देते देख, उसने इसे सुअवसर माना और तट को अपनी धारा में बहा ले

1. म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 420-422

गई। इस प्रकार मित्र और वरुण के पुत्र (वसिष्ठ) को सरस्वती बहा ले चली, और जब वह वसिष्ठ को बहाए ले जा रही थी तो उन्होंने इस प्रकार उसकी स्तुति की, 'हे सरस्वती, तुम ब्रह्मा के कमंडल से निकलती हो और अपनी श्रेष्ठ धाराओं सहित पूरे संसार में व्याप्त हो। आकाश में रहकर तुम मेघों में जल छोड़ती हो। अकेली तुम ही समस्त जल हो। तुमसे ही अध्ययन करते। तुम ही पोषण, दीप्ति, यश, पूर्णता, बुद्धि और प्रकाश हो। तुम ही वाणी, तुम ही स्वाहा हो; यह संसार तुम ही से है। तुम ही चार रूपों में समस्त प्राणियों में वास करती हो।' जब विश्वामित्र ने देखा कि सरस्वती वसिष्ठ को निकट ला रही है तो वह हथियार तलाशने लगे, जिससे उनका अंत कर दें। उनके क्रोध को देखकर, और इस भय से कि कहीं ब्राह्म-हत्या न हो जाए, सरस्वती तेजी से वसिष्ठ को पूर्व दिशा में बहा ले चली, और इस प्रकार उसने दोनों ही ऋषियों के आदेश का पालन कर दिया। जब विश्वामित्र ने देखा कि सरस्वती वसिष्ठ को बहाकर दूर लिए जा रही है, तो उन्होंने उससे कहा, 'हे नदियों की साम्राज्ञी, क्योंकि तुमने मेरे साथ छल किया है और अपनी दिशा बदल दी है, इसलिए तुम्हारी लहरों में खून बहेगा। इस शाप के अनुसार सरस्वती में एक वर्ष तक रक्त बहता रहा। राक्षस गण उस स्थान में तीर्थ के लिए आए जहां सरस्वती वसिष्ठ को बहा ले गई थी और उन्होंने छक कर वह रक्त-मिश्रित जल पिया, और इस तरह नाचते और रंगरेलियां मनाते रहे मानो उन्होंने स्वर्ग को जीत लिया हो। जब उस स्थान पर कुछ देर बाद कुछ ऋषि आए तो वह रक्तरंजित जल को देखकर और राक्षसों को वहां अतिपान करता देखकर वे स्तब्ध रह गए और उन्होंने सरस्वती को मुक्त करने का प्रबल प्रयास किया।''

वसिष्ठ और विश्वामित्र की शत्रुता मात्र दो पुरोहितों की शत्रुता नहीं थी। यह एक ब्राह्मण पुरोहित और एक क्षत्रिय पुरोहित की शत्रुता थी। वसिष्ठ एक ब्राह्मण थे। विश्वामित्र एक क्षत्रिय थे। वह राजवंशी क्षत्रिय थे। ऋग्वेद (3, 33.11) में विश्वामित्र को कुशिक का पुत्र बताया गया है। विष्णु पुराण में[1] विश्वामित्र के बारे में और भी विवरण दिया गया है। इसमें कहा गया है कि वह (विश्वामित्र) राजा पुरुरवा के वंशज गाधि के पुत्र थे। इसकी पुष्टि हरिवंश[2] से होती है। ऋग्वेद (3, 1.21) से पता चलता है कि विश्वामित्र का परिवार प्रत्येक पीढ़ी में 'अग्नि' को प्रज्वलित रखता रहा है।[3] ऋग्वेद से हमें यह भी पता चलता है कि विश्वामित्र ने इस वेद के अनेक मंत्र लिखे थे और उन्हें राजर्षि माना जाता था। उन्होंने वेदों के सबसे पवित्र मंत्र अर्थात गायत्री मंत्र की रचना की थी जो ऋग्वेद (3, 62.10) में संकलित है। उनके बारे में एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि वह एक क्षत्रिय थे और उनका परिवार भरतवंशी था।[4]

---

*1. म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 349* *2. वही, पृष्ठ 353*

*3. वही, पृष्ठ 316* *4. वही, पृष्ठ 354*

ऐसा प्रतीत होता है कि इसी समय ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच इन बातों को लेकर विवाद चल रहा था–

(1) **दान लेने का अधिकार**। दान का अर्थ होता है बिना काम कराए भुगतान करना। ब्राह्मणों की आपत्ति यह थी कि दान लेने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को है, और अन्य कोई भी दान नहीं ले सकता।[1]

(2) **वेद पढ़ाने का अधिकार**। ब्राह्मणों का कहना था कि क्षत्रिय को केवल वेद पढ़ने का अधिकार है। उसे वेदों की शिक्षा देने का कोई अधिकार नहीं है। यह तो केवल ब्राह्मणों का ही विशेषाधिकार है।

(3) **यज्ञ संपन्न करवाने का अधिकार**। इस विषय में ब्राह्मणों का कहना था कि क्षत्रिय को यज्ञ करने का अधिकार तो है किंतु उन्हें पुरोहित की हैसियत से यज्ञ संपन्न करवाने का अधिकार नहीं है। यह ब्राह्मणों का ही विशेषाधिकार है।

यहां उल्लेखनीय बात यह है कि इन मुद्दों पर विवाद में और विशेषकर तीसरे मुद्दे पर विवाद में भी एक-दूसरे के विरोधी की भूमिका निभाने से नहीं चूके। रामायण में[2] वर्णित त्रिशंकु की कथा से इसकी पुष्टि हो जाती है, जो इस प्रकार है–

''इक्ष्वाकु के एक वंशज राजा त्रिशंकु ने एक यज्ञ करने की युक्ति सोची थीं जिसके बल पर वह सशरीर स्वर्ग जा सकता था। जब उसके बुलाने पर वसिष्ठ ने यह कह दिया कि यह असंभव है, तो त्रिशंकु दक्षिण की ओर चला गया जहां ऋषि (वसिष्ठ) के एक सौ पुत्र तप कर रहे थे। राजा ने उनसे आग्रह किया कि जिसके लिए उनके पिता ने मना कर दिया था उसे वे करें। यद्यपि उसने उन्हें अत्यंत आदर और विनम्रता के साथ सम्बोधित किया और यह भी कहा कि इक्ष्वाकुवंशी अपने कुल पुरोहितों को विपत्ति में सबसे बड़ा सहायक मानते हैं, और अपने पिता के पश्चात वह उन्हें अपने संरक्षक देव मानता है, फिर भी उन धृष्ट पुरोहितों ने उसे फटकार दिया, ''मूर्ख, तुम्हें सत्यवादी गुरु ने मनाकर दिया है। तुमने उनके अधिकार की उपेक्षा करते हुए किसी और शाखा का सहारा लेने के विषय में कैसे सोच लिया? कुल-पुरोहित समस्त इक्ष्वाकुवंशियों का सर्वोच्च देवता होता है; और उसके आदेश का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। देवर्षि वसिष्ठ ने कह दिया है कि यह नहीं हो सकता, तो फिर हम कैसे यज्ञ कर सकते हैं? तुम मूर्ख हो, राजन; अपनी राजधानी लौट जाओ। देवर्षि (वसिष्ठ) में तीन लोकों का पुरोहित बनने की योग्यता है; हम उनका अनादर कैसे कर सकते हैं?''

त्रिशंकु ने तब यह समझाया कि जब उसके गुरु और उनके पुत्रों ने उनका अनुरोध ठुकरा दिया है तो उसे कोई और उपाय सोचना होगा। इससे क्रोधित

1. *इसीलिए मनु ने कहा है कि ''यदि राजा किसी शूद्र को दान देना चाहता है तो उसे उस शूद्र से काम करवाना चाहिए।''*

2. *म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 401-404*

होकर वसिष्ठ-पुत्रों ने उसे शाप दे दिया कि वह चांडाल हो जाए। शाप ने शीघ्र ही असर दिखाया और दुखी राजा का रूप एक पतित चांडाल का हो गया। तब राजा विश्वामित्र के पास जा पहुंचा (जो उस समय दक्षिण में ही रह रहे थे) और अपने सद्गुणों और पवित्रता की दुहाई देते हुए अपने भाग्य पर विलाप करने लगा। विश्वामित्र ने उसकी हालत पर तरस खाया और उसे वचन दिया कि वह उसके निमित्त यज्ञ करेंगे और उसे इसी चांडाल रूप में स्वर्ग पहुंचाएंगे जिस रूप में वह उसके गुरु के शाप के कारण आ गया था। विश्वामित्र ने राजा से कहा कि स्वर्ग बस अब उसके (राजा के) अधिकार में ही है, क्योंकि उसने कुशिक के पुत्रों से सहायता मांगी है। फिर ऋषि ने कहा कि यज्ञ की तैयारियां की जाएं और वसिष्ठ के परिवार समेत सभी ऋषियों को उसमें आमंत्रित किया जाए।

विश्वामित्र का संदेश पहुंचाने वाले उनके शिष्यों ने लौटकर यह समाचार दिया, ''आपका संदेश सुनकर सभी देशों के सभी ब्राह्मण एकत्र हो रहे हैं, और महोदय (वसिष्ठ) को छोड़ सभी पहुंच चुके हैं। यह सुनिए कि उन सौ वसिष्ठ पुत्रों ने क्रोध से कांपते स्वर में क्या कहा, 'देवता और ऋषिगण उस मनुष्य के नैवेद्य को कैसे ग्रहण कर सकते हैं जिसके निमित्त एक क्षत्रिय यज्ञ संपन्न कर रहा है, और विशेषकर तब तो और भी नहीं जब वह मनुष्य एक चांडाल हो। कोई ब्राह्मण एक चांडाल का भोजन ग्रहण करने और विश्वामित्र के सान्निध्य के पश्चात स्वर्ग कैसे जा सकता है?'' ये शब्द समस्त वसिष्ठ-पुत्रों और महोदय ने कहे थे और उनकी आंखें क्रोध से जल रही थीं। विश्वामित्र यह सुनकर अत्यधिक क्रोधित हुए, और उन्होंने शाप दिया कि वसिष्ठ-पुत्र भस्म हो जाएं और पतित सात सौ जन्मों तक पतित अछूत बनकर पैदा हों, और महोदय को शाप दिया कि वह निषाद बन जाएं।

यह जानकर कि उनके शाप का असर हो गया है, विश्वामित्र ने त्रिशंकु की प्रशंसा करने के बाद वहां उपस्थित ऋषियों से कहा कि अब यज्ञ संपन्न कराया जाए, और ऋषि के कोप से भयभीत उन ऋषियों ने सहमति दे दी। विश्वामित्र ने स्वयं याजक की हैसियत से यज्ञ कराया, और अन्य ऋषियों ने ऋत्विजों की भूमिका में अन्य सभी अनुष्ठान किए।''

वसिष्ठ और विश्वामित्र के इस झगड़े में सुदास की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। वसिष्ठ तो सुदास के कुल पुरोहित थे। वसिष्ठ ने ही सुदास का राज्याभिषेक किया था। वसिष्ठ ने ही सुदास को दस राजाओं के विरुद्ध युद्ध जीतने में मदद की थी। इतना सब होने पर भी, सुदास ने वसिष्ठ को हटाकर उनके स्थान पर विश्वामित्र को अपना पुरोहित बना लिया[1]

1. *इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। परंपरा इसे सही मानती है, जो ऋग्वेद, 3, 53.9 पर आधारित प्रतीत होता है। यास ने अपने निरुक्त (2, 24) में इसकी पुष्टि की है।*

और उन्हीं ने सुदास के निमित्त यज्ञ किया। सुदास का यह पहला कृत्य था जिससे वसिष्ठ के साथ उसकी शत्रुता हुई। सुदास ने एक और ऐसा काम किया जिससे यह शत्रुता और गहरी हो गई। उसने वसिष्ठ के पुत्र शक्ति को आग में फेंककर उसे जिंदा जला दिया। यह कथा शाट्यायन ब्राह्मण में[1] वर्णित है। शाट्यायन ब्राह्मण में इस अत्याचार का कारण नहीं बताया गया है। सद्गुरुशिष्य ने[2] कात्यायन द्वारा प्रस्तुत ऋग्वेद की अनुक्रमणिका में इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला है। सद्गुरुशिष्य के अनुसार, सुदास ने एक यज्ञ किया जिसमें विश्वामित्र और वसिष्ठपुत्र शक्ति के बीच एक तरह का शास्त्रार्थ हुआ था, और इसमें, सद्गुरुशिष्य के अनुसार–

> ''विश्वामित्र की शक्ति और वाणी को वसिष्ठपुत्र शक्ति ने बिलकुल पराजित कर दिया; और इस तरह पराजित होने पर गाधिपुत्र (विश्वामित्र) निराश हो गए।''

यही कारण था कि सुदास ने शक्ति को आग में फेंक दिया था। स्पष्ट है कि सुदास ने विश्वामित्र के अपमान का बदला लेने के लिए ऐसा किया था। सुदास और वसिष्ठ के बीच बढ़ रही शत्रुता को कोई नहीं टाल पाया।

यह शत्रुता सुदास और वसिष्ठ के साथ ही समाप्त नहीं हो गई। यह उनके पुत्रों तक फैलती दिखाई देती है। इसकी पुष्टि तैत्तिरीय संहिता में होती है–[3]

> ''जब वसिष्ठ के पुत्र का वध हो गया, तो उन्होंने संतान प्राप्ति की और सुदासवंशियों को पराजित करने की कामना की। उन्होंने यज्ञ किया और इसके पश्चात उन्हें संतान प्राप्त हुई और उन्होंने सुदासवंशियों को पराजित किया।''

इसकी पुष्टि कौषीतकि ब्राह्मण में[4] होती है–

> ''जब वसिष्ठ के पुत्र का वध हो गया, तो उन्होंने संतान और पशु प्राप्ति की और सुदासों को हराने की कामना की। उन्होंने यज्ञ किया और इसके पश्चात उन्होने सुदासों को पराजित किया।''[5]

---

1. *सायण ने अनुक्रमणिका पर ऋग्वेद (7, 32) की प्रस्तावना में इसका उल्लेख किया है, जिसे म्यूर (खंड 1, पृ. 328) ने उद्धृत किया है।*
2. *इसका उल्लेख सायण ने ऋग्वेद (3, 53.15-16) की प्रस्तावना में किया है, जिसे म्यूर (खंड 1, पृष्ठ 343) ने उद्धृत किया है।*
3. *म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 328*
4. *वही, पृष्ठ 328*
5. *इस विषय में थोड़ा संदेह दिखता है कि वसिष्ठ की यह शत्रुता सुदास से थी अथवा उसके पुत्रों से। यह संदेह इसलिए उत्पन्न हुआ क्योंकि शाट्यायन और कौषीतकि ब्राह्मणों में सौदास की बात कही गई है जिससे यह संकेत मिलता है कि वसिष्ठ का झगड़ा सुदास से नहीं उसके पुत्रों से था। दूसरी ओर, मनु का विश्वास है कि शत्रु सुदास ही था। सद्गुरुशिष्य ने सौदास नहीं सुदास का उल्लेख किया है, जबकि बृहद्देवता ऐसे ही एक अंश में सुदास की बात करते हैं। इस समस्या का समाधान यही है कि सौदास को सुदास का परिवार मान लें, जिसमें सुदास और उसके पुत्र दोनों आ जाते हैं।*

## II

सुदास और वसिष्ठ का यह टकराव राजाओं और ब्राह्मणों के बीच होने वाला एक मात्र टकराव नहीं है। पुराणों में राजाओं और ब्राह्मणों के टकराव के अन्य उदाहरण भी मिलते हैं। यहां उन्हें प्रस्तुत करना वांछनीय होगा। पहला प्रसंग राजा वेण का है। ब्राह्मणों के साथ वेण के टकराव की कथा अनेक ग्रंथों में वर्णित है। यहां हम हरिवंश में वर्णित विवरण[1] को उद्धृत कर रहे हैं–

> ''पहले एक प्रजापति, एक धर्मरक्षक हुए हैं। अत्रि के इस वंशज का नाम अंग था और वह अपने पूर्वज के समान ही शक्तिशाली थे। उनका पुत्र प्रजापति वेण था जो अलग ढंग से कर्तव्य में कुशल था, और वह मृत्यु की पुत्री सुनीता की कोख से उत्पन्न हुआ था। काल (मृत्यु) की पुत्री के इस पुत्र ने अपने नाना से प्राप्त दुष्टता के कारण अपने कर्तव्यों की उपेक्षा कर दी और कामी हो गया। इस राजा ने अधर्म का राज स्थापित कर दिया। वेद की आज्ञाओं का उल्लंघन करके वह उच्छृंखल हो गया। उसके राज में लोग पवित्र ग्रंथों का अध्ययन नहीं करते थे, होम नहीं करते थे, और यज्ञों के समय देवताओं को पीने के लिए सोम भी नहीं मिलता था। उस प्रजापति का यही संकल्प था क्योंकि उसके विनाश का समय निकट था। उसका कहना था कि यज्ञ का विषय, याजक, और यज्ञ भी 'मैं ही हूं'। कर्तव्य का उल्लंघन करने वाले इस राजा से समस्त ऋषियों ने मारीचि के नेतृत्व में यह कहा, 'हम स्वयं को एक संस्कार के लिए शुद्ध करने जा रहे हैं जो अनेक वर्षों तक चलेगा। हे वेण, अधर्म मत करो; कर्तव्य का यह सनातन नियम नहीं है। तुम सचमुच एक अत्रिवंशी प्रजापति हो, और तुम्हारा काम तुम्हारी प्रजा की रक्षा करना है। अविवेकशील और मूर्ख वेण ने उन महर्षियों से कहा, ''मेरे सिवाय और कौन कर्तव्य का आदेश देने वाला है? मैं किसी की आज्ञा क्यों मानूं? धरती पर कौन पवित्र ज्ञान, शक्ति, तप-तेन, सत्य में मेरी बराबरी कर सकता है? तुम सब भ्रमित और मूर्ख हो, तुम्हें ज्ञात नहीं कि मैं ही समस्त प्राणियों और कर्तव्यों का स्रोत हूं। यह मानने में संकोच मत करो कि यदि मैं चाहूं तो पृथ्वी को जला सकता हूं, अथवा इसे जलमग्न कर सकता हूं, अथवा स्वर्ग और धरती को बंद कर सकता हूं।' जब वेण की भ्रांति और उसके दर्प के कारण उसे समझाया नहीं जा सका तो ऋषिगण क्रोधित हो गए, और उन्होंने उस दमदार, जूझते राजा को पकड़ लिया और उसकी वाम जंघा को रगड़ दिया। उसकी इस जंघा से एक नाटा, काला आदमी पैदा हो गया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसे उत्तेजित देख अत्रि ने उससे कहा, 'बैठ जाओ' (निषिद्), और इस प्रकार वह निषाद वंश का संस्थापक हुआ, और धीवरों (मछुआरों) का भी पूर्वज हुआ।''

1. म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 302

ब्राह्मणों से टकराने वाला अगला राजा पुरुरवा था। यह पुरुरवा तो इला का पुत्र और मनु वैवस्वत का पौत्र है। ब्राह्मणों के साथ उसके टकराव का विवरण महाभारत के आदि पर्व में मिलता है–[1]

> ''बाद में, बुद्धिमान पुरुरवा की उत्पत्ति इला से हुई, जो हमारे सुने अनुसार, उसकी माता भी थी और उसका पिता भी। सागर के तेरह द्वीपों पर शासन करते हुए, और समस्त अतिमानवों से घिरे होकर, इस अति प्रसिद्ध पुरुष पुरुरवा ने अपनी शक्ति के मद में ब्राह्मणों से टकराव ले लिया, और उनके प्रतिरोध करने पर भी उनके रत्न लूट लिए। सनतकुमार ने स्वर्ग से आकर उसे समझाया किंतु वह नहीं माना। कुपित ऋषियों ने उसे सीधे शाप दे दिया और तब यह शक्ति के मद में मतिभ्रमित हुआ लोभी सम्राट नष्ट हो गया।''

इस क्रम में तीसरा नाम नहुष का आता है। यह नहुष उस पुरुरवा का पौत्र था जिसकी ब्राह्मण शत्रुता का विवरण हम ऊपर दे चुके हैं। नहुष, और ब्राह्मणों के साथ उसके टकराव की कथा महाभारत में दो स्थलों पर मिलती है। एक तो वनपर्व में और दूसरी उद्योगपर्व में। यहां हम जो विवरण दे रहे हैं वह उद्योगपर्व से है–[2]

> वृत्र राक्षस का वध करने के बाद इंद्र इस विचार से भयभीत हो गए कि उन्होंने एक ब्राह्मण की हत्या की है (क्योंकि वृत्र को ब्राह्मण माना जाता था), और वह जल में छुप गए। देवताओं के राजा के इस प्रकार गायब हो जाने के कारण संसार के सारे काम-काम ठप हो गए। तब ऋषियों और देवताओं ने नहुष से निवेदन किया कि वह उनका राजा बन जाए। पहले तो नहुष ने शक्तिहीनता का बहाना बनाकर असमर्थता व्यक्त कर दी, किंतु बहुत अनुनय-विनय किए जाने पर उसने यह उच्च पद स्वीकार कर लिया। इस पद पर आने तक नहुष एक सदाचारी जीवन जी रहा था, किंतु अब वह राग-रंग और भोग-विलास का आदी हो गया; और यहां तक कि उसने इंद्र की पत्नी इंद्राणी को देखकर उसे अपना बनाना चाहा। इंद्राणी ने देवगुरु आंगिरस बृहस्पति का आश्रय लिया और वह उसकी रक्षा में तत्पर हो गए। इस व्यवधान से नहुष अत्यंत कुपित हो गया; किंतु देवताओं ने उसे शांत करने का प्रयास किया और उसे समझाया कि किसी और की पत्नी पर अधिकार जताना नैतिकता के विरुद्ध है। किंतु, नहुष की समझ में कोई बात नहीं आई और वह इसी बात पर अड़ा रहा कि व्यभिचार में वह इंद्र से कम नहीं है। 'एक ऋषि-पत्नी अहिल्या को उसके पति के जीवित रहते इंद्र ने भ्रष्ट किया था। उसे तुमने क्यों नहीं रोका? और इंद्र ने पहले अनेक असभ्य और धर्म विरुद्ध कृत्य किए और छल किया, तब तुमने उसे क्यों नहीं रोका?' इस प्रकार, नहुष के आग्रह करने पर देवगण इंद्राणी को लाने चले गए;

---

*1. म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 307*  *2. वही, पृष्ठ 310-313*

किंतु बृहस्पति ने उसे नहीं जाने दिया। किंतु, उनकी संस्तुति पर इंद्राणी ने नहुष से कुछ समय मांगा ताकि वह यह पता लगा सके कि उसके पति का क्या हुआ। उसका यह अनुरोध स्वीकार कर लिया गया। अब इंद्राणी अपने पति को खोजने निकल पड़ी; और उपश्रुति (रहस्योद्घाटन करने वाली और रात्रि की देवी) की सहायता से उन्हें अत्यंत सूक्ष्म रूप में पाया। इंद्र हिमालय के उत्तर में स्थित एक सागर में एक महाद्वीप में स्थित एक झील में पुष्पित एक कमलनाल में थे। इंद्राणी ने इंद्र को नहुष की बुरी नीयत के बारे में बताया, और अनुरोध किया कि वह अपनी शक्ति का प्रयोग करके उसे खतरे से बचाएं और अपना राज्य फिर से प्राप्त करें। इंद्र ने नहुष की महाशक्ति का हवाल देकर तुरंत हस्तक्षेप करने से मना कर दिया; किंतु उन्होंने अपनी पत्नी को एक युक्ति बताई जिससे राज्य हड़पने वाले नहुष को उसके पद से हटाया जा सकता था। इंद्र ने इंद्राणी से कहा कि वह नहुष से यह कहे कि यदि वह ऋषियों से जुते दिव्य वाहन पर सवार होकर उसके पास आएगा तो वह सहर्ष उसके समक्ष समर्पित हो जाएगी।

देवताओं की रानी ने इसी प्रकार नहुष को अपना प्रस्ताव भेज दिया कि, 'हे देवराज, मैं तुम्हारे लिए एक ऐसे वाहन की कामना करती हूं जो अभी तक अज्ञात है, जिस पर विष्णु, रुद्र, असुरगण अथवा राक्षसगण, कोई भी सवारी नहीं करता है। हे स्वामी, समस्त श्रेष्ठ ऋषि संयुक्त रूप में आपको एक वाहन में बैठाकर लाएं, मुझे यह विचार प्रसन्न करता है।' नहुष को यह प्रस्ताव अच्छा लगा और उसने उत्तर में कहा, 'कोई असाधारण शक्ति वाला ही मुनियों पर सवारी कर सकता है। मैं महाशक्तिशाली, भूत, भविष्य और वर्तमान का स्वामी हूं। यदि मैं क्रोधित हो जाऊं तो संसार टिका नहीं रह पाएग; सभी कुछ मुझ पर निर्भर है। इसलिए, हे देवी, मैं निस्संदेह वही करूंगा जो तुमने कहा है। सातों ऋषि और समस्त ब्रह्मर्षि मुझे उठाकर ले जाएंगे। मेरा ऐश्वर्य, मेरा प्रताप देखना, सुंदर देवी।'

आगे का विवरण इस प्रकार है—

इस प्रकार, इस दुष्ट, अधर्मी, हिंसक, अहंकार के मद में चूर, और मनमाना व्यवहार करने वाले इस जीव ने अपने वाहन में ऋषियों को जोत दिया और उन्हें विवश कर दिया कि उसे खींचे। ऋषियों ने उसके आदेश का पालन किया। इंद्राणी ने तब तक एक बार फिर बृहस्पति की सहायता मांगी और उन्होंने उसे आश्वासन दिया कि नहुष से शीघ्र ही प्रतिशोध लिया जाएगा। बृहस्पति ने यह वचन भी दिया कि वह स्वयं आततायी के विनाश हेतु और इंद्र की खोज हेतु एक यज्ञ करेंगे। तब वह अग्नि को इंद्र की खोजकर उनके पास लाने के लिए भेजते हैं। जब इंद्र आते हैं तो बृहस्पति

उन्हें बताते हैं कि उनकी अनुपस्थिति में क्या-क्या हुआ है। इंद्र जब कुबर, यम, सोम और वरुण के साथ मिलकर नहुष के विनाश की युक्ति पर विचार कर रहे थे, तो अगस्त्य मुनि वहां आ पहुंचे और उन्होंने इंद्र को उनके शत्रु के पतन के लिए बधाई दी, और बताया कि यह सब कैसे हुआ।

पापी नहुष को ढोते-ढोते थक चुके श्रेष्ठ देवर्षियों और निष्कलंक ब्रह्मर्षियों ने नहुष से एक कठिन प्रश्न किया कि वह राजा के निमित्त बलि के समय उच्चरित होने वाले मंत्रों को अधिकृत मानते हैं। अज्ञान के अंधकार में आवृत राजा ने उत्तर दिया कि वह नहीं मानता। ऋषियों ने कहा कि वह अधर्मी है इसलिए धर्म की बात नहीं करता। उन्होंने कहा महर्षियों द्वारा उच्चारित इन मंत्रों को वे अधिकृत मानते हैं। तब (अगस्त्य ने आगे बताया कि) मुनियों से इस प्रकार विवाद करते हुए नहुष ने अधर्म से प्रेरित हो नहुष ने मेरे सिर पर अपना पैर स्पर्श करा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि राजा का गौरव नष्ट हो गया और उसकी समृद्धि समाप्त हो गई। जब वह भय से त्रस्त और उत्तेजित हो गया तो मैंने उससे कहा, 'हे मूर्ख, क्योंकि तूने सदा आदृत उस पवित्र मंत्र की निंदा की है जिसकी रचना पूर्व ऋषियों ने की है और जिसका प्रयोग ब्रह्मर्षियों ने किया, और क्योंकि तूने मेरे सिर को अपने पैर से स्पर्श किया है, और ब्रह्म-समान ऋषियों का इस्तेमाल तुझे ढोने वाले कहारों के रूप में किया है, इसलिए हे पापी तू स्वर्ग से पृथ्वी पर उतर आ। दस हजार वर्षों तक तू एक विशाल सर्प के रूप में रेंगेगा। दस हजार वर्ष पूरे हो जाने पर तू फिर स्वर्ग जा सकेगा।' इस प्रकार वह दुष्ट देवों की प्रभुता से वंचित कर दिया गया। इसलिए, हे इंद्र, अब हम समृद्धि प्राप्त करेंगे क्योंकि ब्राह्मणों का शत्रु दंडित हो चुका है। तीनों लोकों का आधिपत्य ग्रहण करो और उनके वासियों की रक्षा करो। हे शचि (इंद्राणी) के पति, जिसकी स्तुति महर्षि करते हैं, अपने शत्रुओं को पराजित कर (तीनों लोकों पर राज करो)।''

ब्राह्मणों से टकराने वाला चौथा राजा निमि था। उसकी कथा विष्णु पुराण में[1] वर्णित है, वे इस प्रकार हैं—

''निमि ने ब्रह्मर्षि वसिष्ठ से अनुरोध किया था कि वह एक यज्ञ को संपन्न करवाएं जो एक हजार वर्ष तक चलना था। वसिष्ठ ने कहा कि वह पांच सौ वर्षों तक इंद्र के साथ व्यस्त हैं, किंतु उसके बाद अवश्य लौट आएंगे। राजा ने कुछ नहीं कहा, और वसिष्ठ यह मानते हुए वहां से चले गए कि राजा इस व्यवस्था से सहमत हैं। जब वसिष्ठ लौटे तो उन्हें पता चला कि राजा ने गौतम (वसिष्ठ के समान ब्रह्मर्षि) और अन्य ऋषियों को यज्ञ संपन्न करवाने पर लगा लिया है।

---

*1. म्यूर, खंड 1, पृष्ठ 316*

वह अत्यंत क्रोधित हुए और उन्होंने सोते हुए राजा को शाप दे दिया कि वह अपना मानव शरीर त्याग देगा। जब निमि सोकर उठा और उसे पता चला कि उसे बिना किसी पूर्व चेतावनी के शाप दे दिया गया है तो उसने भी वसिष्ठ को सही शाप दे दिया और फिर मर गया। निमि के शरीर पर लेप किया गया। उसके द्वारा शुरू किए गए यज्ञ की समाप्ति पर, पुरोहितों के हस्तक्षेप से देवतागण उसे पुनर्जीवित करने को सहमत हो गए; किंतु उसने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया और देवताओं ने उसे उसकी इच्छानुसार समस्त प्राणियों की आंखों में स्थापित कर दिया। इसी के फलस्वरूप आंखें हमेशा झपकती रहती हैं (निमिष का अर्थ होता है 'आंखों का झपकना')।''

इन उदाहरणों का उल्लेख मनु ने अपनी स्मृति में किया है–[1]

''विनम्रता के अभाव में अनेक राजा अपने साज-सामान सहित नष्ट हो गए हैं; विनम्रता के माध्यम से वनवासी साधुओं ने भी राज्य प्राप्त कर लिए हैं।

विनीत न होने के कारण वेण नष्ट हो गया, और उसी के समान राजा नहुष, सुदास (पिजवन का पुत्र), सुमुख और निमि भी।''

दुर्योगवश, शूद्रों की स्थिति पर इन उदाहरणों के प्रभाव को जितना समझा जाना चाहिए था उतना समझा नहीं गया है। इसका कारण यह है कि किसी ने भी यह नहीं समझा है कि यह टकराव ब्राह्मणों और शूद्रों के बीच था। सुदास निश्चय ही एक शूद्र था। दूसरे राजाओं को यद्यपि शूद्र नहीं बताया गया है, फिर भी उन्हें इक्ष्वाकु का वंशज बताया गया है। यह कहना गलत नहीं होगा कि वे सभी शूद्र थे। यहां तक कि मनु को भी इसका कोई आभास नहीं था। उसने इन्हें ब्राह्मणों और क्षत्रियों का संघर्ष बताकर प्रस्तुत किया है। डॉ. म्यूर भी यह नहीं समझ पाए हैं कि सुदास एक शूद्र था, और उन्होंने भी इन कथाओं का वर्णन करते हुए इन्हें ब्राह्मणों और क्षत्रियों का संघर्ष बताया है। एक मायने में यह सच है कि यह संघर्ष ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच ही था क्योंकि शूद्र भी तो क्षत्रियों की ही एक शाखा ही थे। किंतु यदि इन्हें सटीक रूप में ब्राह्मणों और शूद्रों का टकराव ही बताया जाता तो यह कहीं अधिक प्रबोधक होता। गलतफहमी जो पैदा कर दी गई थी वह आज तक बनी हुई है और इसने भारतीय-आर्यों के समाज के एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंश को अब तक छुपाए रखा है। इसी गलतफहमी को दूर करने के उद्देश्य से इस अध्याय का शीर्षक 'ब्राह्मण बनाम क्षत्रिय' नहीं बल्कि ब्राह्मण बनाम शूद्र रखा गया है। ब्राह्मणों और शूद्रों के बीच टकराव के इतिहास के रूप में समझे जाने पर, इससे यह समझने में मदद मिलती है कि शूद्र दूसरे वर्ण से चौथे वर्ण में कैसे पहुंच गए।

---

*1. मैक्स मूलर, सैक्रेड् बुक्स ऑव दि ईस्ट, खंड 25, पृष्ठ 222*

अध्याय : दस

# शूद्रों की अवनति

शूद्रों को दूसरे से चौथे वर्ण पर ला पटकने के लिए ब्राह्मणों ने कौन-कौन-सी युक्तियां अपनाईं?

अभी तक यह चर्चा दो प्रश्नों पर केंद्रित रही है कि शूद्र मूल रूप में दूसरे अर्थात क्षत्रिय वर्ण का हिस्सा थे अथवा नहीं, और दूसरा यह कि क्या ब्राह्मणों को शूद्रों की अवनति के लिए उकसाया गया था अथवा नहीं। अब आवश्यक हो जाता है कि हम उस प्रश्न का उत्तर तलाशने का प्रयास करें जो तार्किक दृष्टि से इन प्रश्नों के क्रम में अगला है। ब्राह्मणों ने अवनति की कौन-सी युक्ति अपनाई?

मेरा उत्तर यह है कि ब्राह्मणों ने इसके लिए जो युक्ति अपनाई वह यह थी कि उन्होंने शूद्रों का उपनयन करने से मना कर दिया। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि ब्राह्मणों ने अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए यही युक्ति अपनाई और इसी के द्वारा उन्होंने शूद्रों से अपना प्रतिशोध लिया।

यह समझाना शायद आवश्यक होगा कि उपनयन का अर्थ क्या है और भारतीय-आर्यों के समाज में इसका क्या महत्त्व था। इसे समझाने का सबसे अच्छा तरीका तो यही होगा कि इस संस्कार का वर्णन किया जाए।

अनुष्ठान के रूप में उपनयन मूल रूप में एक अत्यंत साधारण-सा संस्कार होता था। बालक अपने हाथ में एक समिध लेकर आता था और गुरु से कहता था कि वह एक ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) बनना चाहता है, और गुरु से याचना करता था कि वह उसे अध्ययन के लिए अपने पास रहने दें। कालांतर में यह एक विस्तृत संस्कार हो गया। यह कितना अधिक विस्तृत हो गया, इस बात का अंदाजा आश्वलायन गृह्य सूत्र[1] में दिए उपनयन के इस वर्णन से लगाया जा सकता है—

> "वह उस बालक का संस्कार करे जिसका सिर मुंडा हो, जो नवीन वस्त्र पहने हो अथवा ब्राह्मण होने की स्थिति में मृग चर्म, क्षत्रिय होने पर रूरु चर्म, और वैश्य हो तो अज चर्म पहने हो, यदि वह वस्त्र पहने तो (ब्राह्मण होने पर) लाल-पीले, (क्षत्रिय होने पर) लाल, और (वैश्य होने पर) पीले रंग का वस्त्र धारण करें; वह मेखला और दंड धारण करे। बालक अपने गुरु का हाथ पकड़े, तो गुरु (उपर्युक्तानुसार) अग्नि में घी की आहुति दे, और अग्नि के उत्तर में पूर्व की ओर मुख करके बैठे। तब गुरु अपने और बालक के हाथों में जल भरे और सावित्री

1. *काणे, हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, खंड 2 (i), पृष्ठ 281-283 से उद्धृत*

के मंत्र (ऋग्वेद, 5, 82.1) का जाप करते हुए गुरु अपने हाथों से बालक के हाथों में जल डाले; तदुपरांत, वह अपने हाथ से बालक का हाथ और अंगूठा पकड़े, और यह सूत्र कहे, 'देवी सावित्री की आज्ञा से, दोनों अश्विनी कुमारों की बांहों से, पुषान के हाथों से, मैं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूं, हे अमुक', फिर दोबारा कहे, 'सावित्री ने तुम्हारा हाथ पकड़ लिया है, हे अमुक', और तीसरी बार कहे, 'अग्नि तुम्हारा गुरु है', हे अमुक'। तब गुरु बालक से सूर्य की ओर देखने को कहे और कहे, 'देवी सावित्री, यह तुम्हारा ब्रह्मचारी है, इसकी रक्षा करो, उसे मृत्यु से बचाओ' और गुरु तब यह कहे, 'तुम किसके ब्रह्मचारी हो? तुम प्राण के ब्रह्मचारी हो। तुम्हें उपनीत कौन करता है और वह किसको उपनीत करता है? मैं तुम्हें प्रजापति को देता हूं।' और आधा मंत्र (ऋग्वेद, 3, 8.4) कहे, 'सुवस्त्रावृत बालक, यहां आओ,' और बालक को दाहिने ओर घूमने को कहे और अपने दोनों हाथ बालक के कंधों पर रखकर बालक के हृदयस्थल को स्पर्श करे और शेष आधा मंत्र (ऋग्वेद, 3, 8.4) दोहराए। अग्नि के चारों ओर की भूमि को पोंछने के उपरांत, बालक अग्नि में चुपचाप एक लकड़ी रखे, क्योंकि श्रुति के अनुसार 'जो कुछ प्रजापति का है उसे चुपचाप किया जाए,' और ब्रह्मचारी प्रजापति का होता है। कुछ इस काम (लकड़ी अर्पित करने) को अग्नि के प्रति मंत्र पढ़ते हुए करते हैं, 'मैं यह लकड़ी लाया हूं; इस लकड़ी से आपकी वृद्धि हो, हे अग्नि, और हमारी वृद्धि हो ब्रह्म के द्वारा, स्वाहा।' लकड़ी को आग में रखकर और अग्नि को स्पर्श कर, ब्रह्मचारी तीन बार अपना मुख पोंछते हुए ये वचन कहता है, 'मैं तुम्हारे तेज से स्वयं को अभिषिक्त करता हूं,' यह श्रुति से विदित है क्योंकि वह स्वयं को अभिषिक्त करता ही है। 'अग्नि मुझे अंतर्दृष्टि, संतान और तेज दे। इंद्र मुझे अंतर्दृष्टि, संतान और इंद्रिय दें। सूर्य मुझे अंतर्दृष्टि, संतान और चमक दें। तुम्हारे तेज से मैं तेजस्वी हो जाऊं, हे अग्नि। तुम्हारी शक्ति से, हे अग्नि, मैं शक्तिशाली हो जाऊं। तुम्हारे बल से मैं बलशाली बनूं, हे अग्नि।' इन सूत्रों से अग्नि की पूजा करने के उपरांत, ब्रह्मचारी अपने घुटने मोड़े और गुरु के चरणों को पकड़ कर उनसे कहे, 'सावित्री का पाठ करें, गुरुवर!' अपने हाथों और बालक के उत्तरीय से उसके हाथ पकड़ कर, गुरु पहले एक-एक पद करके, और फिर पूरा सावित्री मंत्र पढ़ता है। गुरु अपनी सामर्थ्य के अनुसार बालक से सावित्री का पाठ करवाए। बालक के हृदय स्थल पर हाथ रखकर गुरु यह सूत्र कहता है, 'मैं तुम्हारे हृदय को अपने कर्तव्य में लगाता हूं, तुम्हारा मन मेरे मन का अनुसरण करे; तुम मेरे वचनों पर एकाग्रचित्त होकर ध्यान दो; बृहस्पति तुम्हें मेरे अधीन करें।' बालक के मेखला बांधकर और उसे दंड (छड़ी) देकर, गुरु उसे ब्रह्मचारी के कर्म बताए, 'तुम ब्रह्मचारी हो, जल पियो, सेवा करो, दिन में श्यान मत करो, पूर्ण रूप में गुरु पर आश्रित होकर वेद-अध्ययन करो।' ब्रह्मचारी सुबह-शाम (भोजन के लिए) भिक्खाटन करे; वह सुबह-शाम आग में लकड़ी

रखे। उसे भिक्खा में जो कुछ मिले वह गुरु को बताए। दिन की शेष अवधि में वह बैठे नहीं (अपितु खड़ा रहे)।''

उपनयन संस्कार के समापन पर आचार्य उस बालक को वैदिक गायत्री मंत्र सिखाता है। यह कहना कठिन है कि गायत्री मंत्र को इतना महत्त्वपूर्ण क्यों समझा जाता है कि उसे सिखाने से पहले उपनयन संस्कार आवश्यक हो जाता है।

उपनयन संस्कार के इस वर्णन से दो बातें तो सपष्ट हो जाती हैं। पहली यह कि उपनयन का उद्देश्य व्यक्ति को वेदाध्ययन में दीक्षित करना होता था जिसका प्रारंभ आचार्य द्वारा ब्रह्मचारी को गायत्री मंत्र सिखाने से होता था। दूसरी बात यह स्पष्ट होती है कि उपनयन संस्कार के लिए कुछ वस्तुओं को अत्यावश्यक माना जाता था–(1) दो वस्त्र, जिनमें से एक अधोवस्त्र होता था, और यह वास कहलाता था, और दूसरा शरीर के ऊपरी भाग के लिए, जिसे उत्तरीय कहते थे, (2) दंड अथवा लकड़ी की छड़ी, (और) कमर पर बांधी जाने वाली घास की मेखला।

उपनयन के इस वर्णन की तुलना बाद के समय में होने वाले इसी संस्कार से करने वाले व्यक्ति को यह देखकर आश्चर्य होगा कि इसमें उपनयन संस्कार के हिस्से के रूप में यज्ञोपवीत नाम के धागे का उल्लेख नहीं है जिसे ब्रह्मचारी को पहनना होता था। आज जो उपनयन संस्कार होता है उसके केंद्र में इस धागे का पहनना ही है और आजकल उपनयन का मूल उद्देश्य ही इस यज्ञोपवीत[1] को धारण करना हो गया है। इस यज्ञोपवीत की भूमिका इतनी महत्त्वपूर्ण हो गई है कि इसके निर्माण और प्रयोग के अत्यंत विस्तृत और जटिल नियम बन गए हैं।

यज्ञोपवीत में तीन सूत्र होने चाहिएं और प्रत्येक सूत्र में अच्छी तरह से बटे गए नौ धागे होने चाहिए। प्रत्येक तंतु (धागा) एक देवता के लिए होता है।

यज्ञोपवीत को नाभि तक पहुंचना चाहिए[2], नाभि से नीचे नहीं जाना चाहिए, और न ही इसे सीने से ऊंचा होना चाहिए।

---

1. *याज्ञवल्क्य (1, 16 और 133) में इसे ब्रह्म सूत्र कहा गया है।*
2. *काणे, धर्मशास्त्र, खंड 2(i), पृष्ठ 292*
   *देवल स्मृति के अनुसार, नौ तंतुओं के नौ देवता ओंकार, अग्नि, नाग, सोम, पितृ, प्रजापति, वायु, सूर्य, विश्वेदेव हैं। इस मत में अब कुछ बदलाव दिखाई देता है। क्योंकि मेधातिथि का कहना है कि इष्टियों, पशु बलि और सोम यागों में यज्ञोपवीत में तीन तंतुओं का केवल एक सूत्र होता था। किंतु अहीन, एकाह और सत्र यज्ञों में यह तीन गुना होता था क्योंकि तीन अग्नियों की आवश्यकता होती थी, और सात सोम संस्थाओं में सात की, और तीन सावनों और दो संध्याओं के संदर्भ में देखने पर यह पांच होता था।*
   *ब्रह्मचारी को केवल एक यज्ञोपवीत धारण करना होता था, और संन्यासी यदि यज्ञोपवीत पहनते थे तो उन्हें भी केवल एक यज्ञोपवीत धारण करना होता था। स्नातक (अर्थात आचार्य के घर से ब्रह्मचर्य पूर्ण करके लौटे व्यक्ति) और गृहस्थ को दो यज्ञोपवीत पहनने होते थे, जबकि दीर्घायु का काम करने वाला दो से अधिक यज्ञोपवीत धारण कर सकता था। स्नातक को सदा दो यज्ञोपवीत धारण करने चाहिए। गृहस्थ एक से दस तक जितने चाहे यज्ञोपवीत पहन सकता है।*

कोई व्यक्ति एक से अधिक यज्ञोपवीत धारण कर सकता है।

उसे हमेशा यज्ञोपवीत पहनना चाहिए। यदि वह खाते समय यज्ञोपवीत धारण नहीं करता अथवा शौचादि के समय उसे दाहिने कान पर नहीं रखता, तो उसे स्नान, प्रार्थना और उपवास करके इसका प्रायश्चित करना होता था।

अन्य कई वस्तुओं (जैसे जूते, आभूषण, माला और कमंडल) के साथ किसी अन्य व्यक्ति का यज्ञोपवीत धारण करना वर्जित है।[1]

यज्ञोपवीत धारण करने के तीन तरीके मान्य हैं–(1) निवीत, (2) प्राचीनावीत, और (3) उपवीत। जब धागा गले, दोनों कंधों और सीने के ऊपर से धारण किया जाता है और हृदय स्थल से नीचे तथा नाभि से ऊपर (दोनों हाथों के) दोनों अंगूठों से पकड़ा जाता है, तो यह निवीत कहा जाता है। यदि धागे को बाएं कंधे पर इस प्रकार लटकाया जाए कि यह व्यक्ति के दाहिने पार्श्व तक नीचे आ जाए, तो यह उपवीत हो जाता है। इसे दाहिने कंधे पर डालने से यह बाएं पार्श्व तक लटके, तो यह प्राचीनावीत हो जाता है।

यह यज्ञोपवीत कहां से आया? इसका उत्तर मान्यवर तिलक ने दिया है[2], जो उद्धृत करने योग्य हे। वह कहते हैं–

> ''ओरियन अर्थात मृगशीर्ष को वैदिक रचनाओं में प्रजापति कहा गया है, जो अन्यथा यज्ञ कहा गया है। इसलिए ओरियन अथवा यज्ञ की कटि पर बांधी गई पेटी अथवा मेखला स्वभावतः उसी के नाम पर यज्ञोपवीत, उपवीत अथवा यज्ञ का वस्त्र ही कहलाएगी।
>
> किंतु अब इस शब्द का अर्थ ब्राह्मणों का पवित्र धागा हो गया है, और यह प्रश्न स्वाभाविक रूप में उठ सकता है कि क्या, इसके मूल नहीं तो, इसकी प्रकृति का श्रेय ओरियन की पेटी को जाता है। मैं सोचता हूं कि निम्नलिखित आधार पर यह सही है–
>
> सभी स्वदेशी विद्वानों ने यज्ञोपवीत शब्द को यज्ञ+उपवीत से निकला माना है। किंतु, इस विषय में मतभेद है कि इस संयुक्त शब्द का अर्थ हमें 'यज्ञ के उद्देश्य के लिए' समझना चाहिए, अथवा यह 'यज्ञों को उपवीत' है। पहला अर्थ गलत नहीं है, किंतु विद्वान लोग दूसरे अर्थ के पक्ष में हैं। इस प्रकार के रचनाकार स्मृति से उद्धृत करते हैं कि 'परमात्मा को होत्रियों ने यज्ञ कहा है, यह उसका उपवीत है; इसलिए यह यज्ञ-उपवीत है।' पवित्र धागे को धारण करते समय एक मंत्र का उच्चारण किया जाता है, जिसका अर्थ है, 'मैं तुम्हें यज्ञ के उपवीत से बांधता हूं'; जबकि इसे धारण करते समय एक ब्राह्मण सदा ही जिस मान्य सूत्र का उच्चार करता है, उसका पूर्वाध इस प्रकार है–
>
> **यज्ञोपवीतं परमंपवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्**

---

*1. काणे, धर्मशास्त्र, खंड 2(i), पृष्ठ 293*     *2. ओरियन, पृष्ठ 144-146*

यह मंत्र किसी भी विद्यमान संहिता में नहीं मिलता, अपितु बौधायन द्वारा ब्रह्मोपनिषद में दिया गया है। यह मंत्र हाओमा येष्ट से उपर्युल्लिखित मंत्र से अत्यधिक मिलता-जुलता है। इसमें कहा गया है, 'यज्ञोपवीत परम और पवित्र है; यह पुरातन काल में ब्रह्मा के साथ उत्पन्न हुआ है।' इस मंत्र में आया 'पुरस्तात्' शब्द अवेस्ता मंत्र में आए 'पौर्वनिम' शब्द के समान है और इस प्रकार इससे डॉ. हौगं द्वारा उठाए गए प्रश्न का उत्तर मिल जाता है, जबकि प्रजापति के अंगों के साथ उत्पन्न 'सहज' का अर्थ वही है जो 'मैन्युतस्तेम' का है। इन मंत्रों के बीच यह समानता मात्र संयोग नहीं हो सकता है, और मुझे लगता है कि पवित्र धागा (यज्ञोपवीत) ओरियन की पेटी से ही निकला होगा। 'वे' अर्थात बुनना से निकले उपवीत का शाब्दिक अर्थ वस्त्र होता है, धागा नहीं। इसलिए, यह लगता है कि कमर पर बांधा जाने वाला कपड़ा ही यज्ञोपवीत का आदिम रूप था, और इसमें पवित्रता का भाव इस सिद्धांत से आया कि यह प्रजापति के कटिवस्त्र अथवा पेटी का प्रतीक माना गया था।''

मान्यवर तिलक की यह व्याख्या निस्संदेह अत्यधिक रोचक है। किंतु इससे कुछ जटिलताएं स्पष्ट नहीं होतीं। इससे उन दो वस्त्रों उत्तरीय और वास के साथ यज्ञोपवीत का सम्बंध स्पष्ट नहीं होता, जिन्हें उपनयन के समय व्यक्ति को पहनना होता है। क्या यज्ञोपवीत इन वस्त्रों के अतिरिक्त होता था? यदि ऐसा ही है, तो फिर इसका उल्लेख उपनयन संस्कार के पूर्ववर्ती वर्णन में क्यों नहीं है? इससे एक और जटिलता का समाधान नहीं होता। यदि यह धागा वस्त्र का विकल्प है, तो फिर वस्त्र धारण करने को उपनयन में क्यों बनाए रखा गया?

## II

इसका एक और स्पष्टीकरण दिखाई देता है। इसे मैं यहां प्रस्तुत करता हूं। इसके अनुसार, धागा पहनने का सम्बंध गोत्र अपनाने से है। इसका उद्देश्य गोत्र विशेष से स्वयं को सम्बद्ध करना था। उपनयन से इसका कुछ लेना-देना नहीं था। उपनयन का उद्देश्य तो व्यक्ति को वेद-अध्ययन में दीक्षित करना था। इसे सही ढंग से नहीं समझा जाता है कि आर्यों के प्राचीन विधान के अनुसार पुत्र को अपने पिता का गोत्र स्वाभाविक उत्तराधिकार में नहीं मिलता था। पिता को अपने पुत्र को अपना गोत्र देने के लिए एक विशेष संस्कार करना होता था। इस संस्कार के संपन्न होने पर ही पुत्र को अपने पिता का गोत्र मिलता था। इस सम्बंध में, भारतीय-आर्यों के समाज में लागू दो नियमों का हवाला दिया जा सकता है। एक है अशुचिता का नियम। दूसरा है गोद लेने का नियम। जहां तक मृत्यु से सम्बंधित अशुचिता का सवाल है, तो अशुचिता की अवधि मृतक के साथ व्यक्ति की नातेदारी पर निर्भर करती है। नातेदारी यदि अत्यधिक निकट की होती है तो अशुचिता की अवधि अपेक्षाकृत अधिक होती है। जिस बालक का उपनयन संस्कार नहीं हुआ है, उसकी मृत्यु

पर अशुचिता की अवधि अत्यंत अल्प[1] होती है, जो कुछेक दिन की ही होती है। जहां तक गोद लेने के नियम[2] का सवाल है, तो यज्ञोपवीत धारण कर चुके बालक को गोद नहीं लिया जा सकता था। इसके पीछे क्या भाव है? भाव बिलकुल स्पष्ट है कि यज्ञोपवीत न होने के कारण, और अपने पिता के गोत्र को औपचारिक रूप में ग्रहण नहीं करने के कारण बालक से जुड़ी अशुचिता नाम मात्र की होती है। गोद लिए जाने का अर्थ होता है अपने गोद लेने वाले पिता के गोत्र में प्रवेश करना। यज्ञोपवीत संस्कार हो जाने के बाद बालक दूसरे गोत्र में चला जाता है, और फिर उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता।

गोद लेने की कोई गुंजाइश नहीं बचती। इन दोनों ही नियमों से यह स्पष्ट होता है कि धागे का संस्कार गोत्र से जुड़ा था, उपनयन से नहीं।

सूत्र अथवा धागे का सम्बंध गोत्र से होने की पुष्टि जैन साहित्य से होती है। आचार्य रविशेन कृत पद्मपुराण के चौथे पर्व के 87वें श्लोक में लिखा है–[3]

> ''भगवान! आपने हमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति बता दी है। मैं उन लोगों की उत्पत्ति जानना चाहता हूं जो यज्ञोपवीत धारण करते हैं।''

यहां 'जो यज्ञोपवीत धारण करते हैं' शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। निस्संदेह यह वर्णन ब्राह्मणों का है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एक समय था जब केवल ब्राह्मण यज्ञोपवीत धारण करते थे, अन्य कोई वर्ण नहीं। इसे यदि इस तथ्य के साथ रखकर देखा जाए कि गोत्रीयता का सम्बंध केवल ब्राह्मणों से था, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञोपवीत संस्कार का सम्बंध बालक को उसके पिता के गोत्र में लाने–वस्तुतः उस गोत्र में बांधने–से था, और इसका उपनयन से कोई लेना-देना नहीं था, जो वेदाध्ययन में दीक्षित करने से सम्बंधित था।

यदि यह सच है, तो यज्ञोपवीत संस्कार और उपनयन संस्कार के उद्देश्य अलग-अलग थे। कालांतर में जाकर दोनों एक हो गए। इस विलय का कारण अत्यंत स्वाभाविक दिखाई देता है। यज्ञोपवीत संस्कार के बिना उपनयन होने से यह खतरा रहता था कि कहीं आचार्य उस बालक को अपने गोत्र में न ले लें। इसी खतरे से बचने के लिए बालक का पिता उसे आचार्य को सौंपने से पहले उसका यज्ञोपवीत संस्कार कर देता था। संभवतः इसी कारण से दोनों संस्कार साथ-साथ संपन्न होने लगे।

इस प्रकार, उपनयन का अर्थ होता है वैदिक ब्राह्मण द्वारा वेद का शिक्षण।

## III

जहां मैं अपने सिद्धांत के ठोस होने के बारे में आश्वस्त हूं, वहीं यही सोचना भी अतिशय विश्वास का सूचक होगा कि ऐसे व्यक्ति नहीं मिलेंगे जो इस पर आपत्ति नहीं करेंगे। मुझे निम्नलिखित आपत्तियां उठने की अपेक्षा है–

---

1. *देखिए मनुस्मृति, अध्याय 5, श्लोक 66-70*
2. *व्यवहार मयूख द्वारा उद्धृत, काणे द्वारा सम्पादित, कालिकापुराण, पृष्ठ 114. यह दलील अदालतों में अनेक मामलों में दी जा चुकी है।*
3. *नाथूराम प्रेमी द्वारा 'जैन साहित्य और इतिहास' (हिंदी) में उद्धृत, पृष्ठ 55*

1. क्या उपनयन का न होना शूद्रता का प्रमाण है?
2. क्या शूद्रों को कभी उपनयन का अधिकार रहा है?
3. उपनयन का अधिकार छिन जाने से शूद्रों की सामान्य अवनति कैसे संभव है?
4. शूद्रों को उपनयन से वंचित करने का ब्राह्मणों को क्या अधिकार था?

अपने सिद्धांत के विरुद्ध उठने वाली आपत्तियों का उल्लेख कर देने के बाद, मैं उनका उत्तर देना चाहूंगा।

## IV

शुरुआत पहली आपत्ति से करते हैं। इस आपत्ति का जवाब देने का सबसे अच्छा तरीका यह होगा कि न्यायिक फैसलों के माध्यम से यह पता किया जाए कि भारत की अदालतों में शूद्र की पहचान का सबसे प्रामाणिक मानदंड किसे माना है।

पहला मामला हम 7, एम.आई.ए. 18 से लेते हैं।[1] इसका फैसला प्रिवी कौंसिल द्वारा 1837 में किया गया था। इसमें मुद्दा यह था कि सम्बंधित काल में क्या भारत में क्षत्रिय थे। एक पक्ष का कहना था कि थे। दूसरे पक्ष का कहना था कि नहीं थे। और, इस दूसरे पक्ष का आधार ब्राह्मणों द्वारा प्रचारित यह सिद्धांत था कि ब्राह्मण परशुराम ने सभी क्षत्रियों को मार डाला था और यदि कोई क्षत्रिय बचे भी थे तो उन सभी को शूद्र राजा महापद्म नंद ने खत्म कर दिया था, और इस तरह उसके बाद एक भी क्षत्रिय नहीं बचा था और बस ब्राह्मण तथा शूद्र ही थे। प्रिवी कौंसिल ने इस सिद्धांत को गलत और ब्राह्मणों द्वारा गढ़ा गया मानते हुए इसे अस्वीकार कर दिया था और यह माना था कि भारत में आज भी क्षत्रिय हैं। किंतु प्रिवी कौंसिल ने ऐसा कोई मानदंड निर्धारित नहीं किया था जिसके द्वारा क्षत्रिय और शूद्र में भेद किया जा सके। कौंसिल का मत था कि प्रत्येक मामले में इस सवाल को इसके सम्बंधित तथ्यों के आधार पर तय किया जाना चाहिए।

इस मुद्दे पर दूसरा मामला आई.एल.आर. 10 कल. 688 में मिलता है।[2] इस मामले में उठाया गया मुद्दा यह था कि बिहार के कायस्थ लोग क्षत्रिय थे अथवा शूद्र। उच्च न्यायालय ने यह फैसला दिया कि वे शूद्र थे। कायस्थों के हिमायतियों का पक्ष यह था कि बिहार के कायस्थ बंगाल, यू.पी. और बनारस के कायस्थों से भिन्न थे, और जहां यू.पी. और बनारस के कायस्थ शूद्र थे, वहीं बिहार के कायस्थ लोग क्षत्रिय थे। अदालत ने इस भेद को अस्वीकार करते हुए यही माना कि बिहार के कायस्थ भी शूद्र थे।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इस फैसले को वैध नहीं माना। आई.एल.आर. 12 इला. 328 के पृष्ठ 334 में जस्टिस महमूद ने टिप्पणी दी–[3]

"मुझे दोनों निचली अदालतों की इस राय के सही होने में काफी संदेह है

---

*1. चौधरी रण मर्दन सिंह बनाम साहब प्रह्लाद सिंह*

*2. राजकुमार लाल बनाम बिसेसुर दयाल*

*3. तुलसी राम बनाम बिहारी लाल*

कि देश के इस भाग में, जिससे ये पक्ष संबद्ध हैं, कायस्थों की जाति शूद्रों की श्रेणी में आती है, जैसा कि मनु संहिता अथवा हिंदू विधान के अन्य प्रामाणिक ग्रंथों में समझा गया है। जहां तक जनसंख्या के इस महत्त्वपूर्ण अंश पर हिंदू विधान लागू करने का सम्बंध है, तो यह प्रश्न न केवल मानवजाति विज्ञान की बल्कि कानूनी दृष्टि से भी काफी जटिल है। मैं प्रिवी कौंसिल के लॉर्ड्स के किसी फैसले से इस प्रश्न का समाधान नहीं देखता, चाहे वह श्री नारायण मित्र बनाम श्रीमती किशन सुंदरी दासी का[1] मामला हो अथवा महाशिव शशिनाथ घोष बनाम श्रीमती कृष्ण सुंदरी दासी का[2], जो दोनों ही मामले लोअर बंगाल के कायस्थों द्वारा गोद लेने के थे, जो अपर इंडिया बंगाल के कायस्थों द्वारा गोद लेने के थे, जो अपर इंडिया, जैसे उत्तर-पश्चिमी प्रांत और अवध के कायस्थों की बारह जातियों से भिन्न हैं। मैं यह भी नहीं सोचता कि चौधरी हजारी लाल बनाम विष्णु दयाल (पहली अपील सं. 113, 1886, निर्णीत 15 जून 1887) के गोद लेने सम्बंधी मामले में ही विद्वान चीफ जस्टिस और मेरे भाई टाइरल के असूचित निर्णय से इस प्रश्न का समाधान हो जाता है। किंतु मुझे इस विषय में आगे विचार करने की आवश्यकता नहीं है...''

तीसरा मामला (1916) 20 कल. डब्ल्यू.एन. 901 में[3] सूचित है। इसमें यह सवाल उठाया गया था कि बंगाल के कायस्थ लोग क्षत्रिय थे अथवा शूद्र। कलकत्ता उच्च न्यायालय का मानना था कि वे शूद्र थे। यह मामला कलकत्ता उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील के तौर पर प्रिवी कौंसिल में पहुंचा था। प्रिवी कौंसिल का फैसला (1926) 47 आई.ए. 140 में सूचित है। बंगाली कायस्थ जन शूद्र हैं अथवा क्षत्रिय, इस प्रिवी कौंसिल ने फैसला नहीं दिया था बल्कि इसे खुला छोड़ दिया गया था। 1916 और 1926 के बीच; कलकत्ता उच्च न्यायालय ने दो फैसले दिए जिनमें यह माना गया कि दो नीची जातियों तांती[4] तथा डोम[5] और बंगाल के कायस्थों के बीच होने वाले अंतरविवाह इस आधार पर जायज थे क्योंकि ये दोनों ही शूद्रों की उपजातियां थीं।

कायस्थों को और भी दुर्गति की ओर ले जाने वाले इन फैसलों के बाद एक और फैसला आया जो आई.एल.आर 6 पटना 506 में[6] सूचित है। सैंतालीस पृष्ठों के अत्यंत विस्तृत निर्णय में, जस्टिस ज्वाला प्रसाद ने प्रत्येक पुराण और प्रत्येक स्मृति को लिया जिसमें कायस्थों का उल्लेख था। कलकत्ता उच्च न्यायालय से अलग मत रखते हुए उन्होंने यह व्यवस्था दी कि बिहार के कायस्थ जन क्षत्रिय थे।

---

*1. एल.आर.आई.ए. सप्ली., खंड 149*

*2. एल.आर. 7, आई.ए., 250*

*3. असित मोहन घोष बनाम नीरद मोहन घोष मलिक*

*4. (1921) 48 कल. 626, विश्वनाथ घोष बनाम श्रीमती बलाई देसाई*

*5. (1924) 51 कल. 788, भोलानाथ मित्र बनाम किंग एम्परर*

*6. (1926) ईश्वरी प्रसाद बनाम राय हरिप्रसाद लाल*

इसके बाद वे मामले आते हैं जिसमें विचारणीय मुद्दा यह था कि मराठा लोग क्षत्रिय हैं अथवा शूद्र। जिस पहले मामले में इस मुद्दे को उठाया गया वह 47 मद्रास 1 में[1] सूचित है। यह एक अंतर्वादीय मुकदमा था जो राजा तंजौर की रियासत के रिसीवर द्वारा दायर दिया गया था, जिसमें राजा के सभी वंशजों और दूर के पितृ सम्बंधियों तथा मातृ सम्बंधियों को प्रतिवादी बनाया गया था। तंजौर राज्य की स्थापना वेनकोजी ने की थी जिन्हें इकोजी भी कहा जाता था। वह एक मराठा थे और मराठा साम्राज्य के संस्थापक शिवाजी के भाई थे। इस मुकदमे का फैसला 229 पृष्ठों में आया और इसमें इस मुद्दे पर विस्तार से विचार किया गया कि क्या मराठा लोग क्षत्रिय थे। मद्रास उच्च न्यायालय का फैसला था कि मराठा लोग शूद्र थे, और वे क्षत्रिय नहीं थे जैसा कि प्रतिवादियों का पक्ष था।

मराठों से ही सम्बंधित एक और मामला आई.एल.आर. (1928) 52 बम्बई, 497 में[2] सूचित है। यहां अदालत का फैसला यह था कि–

> ''बम्बई प्रेसीडेंसी में मराठों के तीन वर्ग हैं–(1) पांच परिवार, (2) छियानवे परिवार; और (3) शेष। इनमें से पहले दो वर्ग कानूनी तौर पर क्षत्रिय हैं।''

अंतिम उल्लेखनीय मामला आई.एल.आर. (1927) 52, मद्रास, 1 में सूचित[3] है। इसमें विचारित मुद्दा यह था कि मदुरै के यादव क्या क्षत्रिय थे। यादव अपने क्षत्रिय होने का दावा करते थे। किंतु मद्रास उच्च न्यायालय ने उनके इस दावे को झुठलाते हुए उन्हें शूद्र माना।

कौन क्षत्रिय है और कौन शूद्र, इसे तय कैसे किया जाए, इस मुद्दे पर न्यायिक फैसले इस प्रकार के रहे। इनमें राय का घालमेल है जिसमें समाधान तो नाम मात्र का हुआ है और भ्रम की स्थिति अधिक बनी है। बिहार, यू.पी. और बनारस के कायस्थ तो क्षत्रिय हैं जबकि बंगाल के कायस्थ लोग शूद्र हैं!! मद्रास उच्च न्यायालय के अनुसार सभी मराठा लोग शूद्र हैं किंतु बम्बई उच्च न्यायालय के अनुसार, पांच परिवारों और छियानबे परिवारों के मराठा तो क्षत्रिय हैं और शेष शूद्र हैं!! कृष्ण जिस यादव समुदाय में से थे उन्हें लोग क्षत्रिय मानते हैं। किंतु मद्रास उच्च न्यायालय के अनुसार यादव लोग शूद्र हैं!!

हमारे उद्देश्य की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण वे मानदंड हैं जो यहां उल्लिखित मामलों के विशेष फैसलों की अपेक्षा अदालतों ने अपने फैसलों में अपनाए हैं। अदालतों के मानदंडों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं–

1. आई.एल.आर. 10 कल. 688 में ये मानदंड अपनाए गए–(i) कुलनाम के रूप में 'दास' का प्रयोग, (ii) जनेऊ धारण करना, (iii) होम करने की योग्यता, (iv) अशुचिता की अवधि, और (v) अवैध पुत्रों की उत्तराधिकार सम्बंधी योग्यता।
2. आई.एल.आर. 6 पटना 606 में सामान्य प्रतिष्ठा ही मानदंड प्रतीत होता है। यदि

---

*1. (1924) महाराजा कोल्हापुर बनाम सुंदरम अय्यर*

*2. सुब्बाराव हम्बीराव पाटिल बनाम राधा हम्बीराव पाटिल*

*3. मोक्का कोणे बनाम अम्माकुट्टी*

किसी समुदाय की सामान्य प्रतिष्ठा क्षत्रिय के रूप में है तो उसे क्षत्रिय समुदाय ही माना जाए।

3. सं. 48 मद्रास 1 में, विविध मानदंडों को अपनाया गया। एक मानदंड था समुदाय की चेतना। दूसरा था यज्ञोपवीत धारण करने से अलग उपनयन संस्कार का होना। तीसरा मानदंड यह था कि जब तक वे यह सिद्ध नहीं कर देते कि वे क्षत्रिय अथवा वैश्य हैं, तब तक गैर-ब्राह्मण सभी लोग शूद्र ही माने जाएंगे।
4. आई.एल.आर. बम्बई 497 में अपनाए गए मानदंड थे—(i) जाति-चेतना, (ii) उसकी प्रथाएं, और (iii) अन्य जातियों द्वारा उस चेतना को स्वीकार करना।

इस विषय की थोड़ी-सी भी जानकारी रखने वाला कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि विभिन्न अदालतों द्वारा अपनाए गए मानदंड सही हैं। अशुचिता की अवधि जैसा मानदंड इस प्रश्न के समाधान की दृष्टि से अप्रासंगिक और महत्त्वहीन है। होम करने की योग्यता जैसा मानदंड प्रासंगिक तो है किंतु वैध नहीं। इसमें गलती से प्रभाव को ही कारण समझ लिया गया है। चेतना का मानदंड उचित मानदंड नहीं है। हो सकता है कि आवश्यक धार्मिक संस्कारों को लंबे समय तक प्रयोग में नहीं रहने से कोई समुदाय अपनी चेतना से रहित हो जाए, और यह उन कारणों से ही जिन पर उसका कोई नियंत्रण नहीं है। उपनयन के मानदंड का आधार ही अलग है। अदालतों ने इसे सही ढंग से नहीं रखा है। किंतु इसमें संदेह नहीं कि यदि उपनयन के मानदंड को सही ढंग से समझा और उचित ढंग से रखा जाए तो यह मानदंड सही है। अदालतों ने समुदाय की वास्तविक स्थिति और उपनयन के संदर्भ में इसकी विधितः स्थिति के बीच कोई भेद नहीं किया है, और वे यह मानकर चली हैं कि जो वस्तुतः सही है वह विधितः भी सही ही होगा, इसी के परिणामस्वरूप विषमताएं और अनर्गलताएं पैदा हुई हैं, जैसे एक समुदाय की हैसियत एक इलाके में कुछ है तो दूसरे इलाके में कुछ और। इसी तरह, कोई ढोंगी समुदाय यज्ञोपवीत धारण करता है और निहित अधिकार प्राप्त करने के लिए कुछ समय तक इसे जारी रखता है, या इसके विपरीत किसी समुदाय के दंडस्वरूप यह कह दिया जाता है कि उसे यज्ञोपवीत धारण करने का कोई विधितः अधिकार इसलिए नहीं है क्योंकि वह इसे वस्तुतः धारण नहीं करता रहा है। असली मानदंड यज्ञोपवीत धारण करना नहीं है बल्कि यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार है। इसे सही अर्थ में समझा जाए, तो यह बिना संकोच कहा जा सकता है कि उपनयन का अधिकार किसी व्यक्ति की हैसियत को परखने का असली और एकमात्र तरीका है कि वह व्यक्ति शूद्र है अथवा क्षत्रिय।

## V

दूसरी आपत्ति नितांत अमान्य है। इस आपत्ति के अनुसार यदि यह मान लिया जाए कि आर्यों के समाज में आदि काल से ही विभिन्न वर्गों के साथ उपनयन के मामले में अलग-अलग व्यवहार किया जाता था, तो मेरे विचार में ऐसा सोचना अत्यधिक अस्वाभाविक

होगा। आदिम समाज की शुरुआत विभेद से नहीं होती। इसकी शुरुआत एकरूपता से होती है और इसका अंत विविधता में होता है। स्वाभाविक सोच तो यही होगी कि उपनयन के मामले में आर्यों का प्राचीन समाज अपने सभी वर्गों से एक ही स्तर पर व्यवहार करता था। किंतु दूसरी ओर यह तर्क दिया जा सकता है कि एकरूपता के पक्ष में ऐसी मौलिक प्रवृत्ति को सार्वभौमिक मानना आवश्यक नहीं है। यह भी हो सकता है कि आर्यों के प्राचीन समाज में शूद्रों और स्त्रियों को उपनयन से बाहर रखा जाता था। मेरे लिए यह गौरव की बात है कि मेरे लिए अकेले तर्क पर भरोसा करना आवश्यक नहीं है, हालांकि मैं दावा करता हूं कि तर्क मेरे पक्ष में है। क्योंकि इस बात के परिस्थितिजन्य और प्रत्यक्ष, दोनों प्रकार के, प्रमाण उपलब्ध हैं कि एक समय शूद्रों और स्त्रियों दोनों को ही पवित्र सूत्र धारण करने का अधिकार था।

यदि निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि आर्यों के प्राचीन समाज में उपनयन को सभी के लिए आवश्यक माना जाता था।

बहरों, गूंगों, मंदबुद्धि व्यक्तियों और यहां तक कि नपुंसक लोगों को भी उपनयन की इजाजत थी। गूंगों, बहरों और मंदबुद्धि व्यक्तियों के उपनयन के लिए एक विशेष प्रक्रिया निर्धारित थी। अन्य व्यक्तियों के उपनयन से उनका उपनयन जिन बिंदुओं पर भिन्न है, वे हैं—समिध अर्पित करना, पत्थर पर चलना, वस्त्र पहनना, मेखला बांधना, मृग चर्म और छड़ी प्रदान करना जैसी क्रियाएं चुपचाप होती हैं; बालक अपने नाम का उल्लेख नहीं करता; आचार्य स्वयं पके भोजन अथवा घी की आहुति देता है; आचार्य स्वयं मंद स्वर में समस्त मंत्रों का उच्चारण करता है। यही प्रक्रिया नपुंसकों, दृष्टिहीनों, पागलों और कोढ़ियों, अथवा मिर्गी के रोगियों के लिए भी अपनाई जाती थी।

छह अनुलोम जातियों को भी उपनयन का अधिकार प्राप्त था; यह क्षत्रिय, वैश्य और रथकार तथा अंबष्ट जैसी संकर जातियों के उपनयन के लिए निर्धारित नियमों से[1] स्पष्ट हो जाता है।

उपनयन की इजाजत 'पतितसावित्रीकों' को भी थी। उपनयन की सही आयु ब्राह्मण बालक के लिए जन्म का आठवां वर्ष, क्षत्रिय बालक के लिए 11वां वर्ष और वैश्य बालक के लिए 12वां वर्ष थी। किंतु इसमें कुछ छूट भी थी, जिससे ब्राह्मणों, क्षत्रियों, और वैश्यों के लिए उपनयन का समय क्रमशः 16वें, 22वें और 24वें वर्ष के नहीं निकलने तक मान्य होता था। इस आयु के निकल जाने तक भी अगर किसी का उपनयन नहीं होता था तो उसके बाद उस व्यक्ति को सावित्री (पवित्र गायत्री मंत्र) सीखने के अयोग्य मान लिया जाता था। ऐसे व्यक्तियों को पतितसावित्रीक अथवा सावित्रीपतित कहा जाता था। नियमों की कठोर व्याख्या के अनुसार, उसके पश्चात उनके लिए कोई उपनयन संस्कार नहीं किया जा सकता, उन्हें वेद-शिक्षा नहीं दी जा सकती, और उनके यज्ञों में कोई पुरोहिती नहीं कर सकता और उनके साथ कोई सामाजिक सम्बंध नहीं रखा जा सकता (अर्थात उनके साथ

*1. बौधायन गृह्य सूत्र (2, 8), काणे, हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, 2(1) पृष्ठ 299*

विवाह का सम्बंध स्थापित नहीं किया जा सकता)। किंतु उनके लिए भी, कुछ प्रायश्चित के साथ, नियमों में ढील की[1] गुंजाइश बनाकर रखी गई थी।

ब्रह्मणों को भी उपनयन की इजाजत थी। ब्रह्मण वह व्यक्ति होता था जिसके पिता अथवा दादा का उपनयन नहीं हुआ है। मूल नियम[2] यह था कि यदि किसी व्यक्ति के पिता और दादा का भी उपनयन संस्कार नहीं हुआ है, तो उन (तीन पीढ़ियों) को ब्रह्म (पवित्र प्रार्थना अथवा नियम) के हत्यारे कहा जाता है; लोग उनके साथ कोई सम्बंध न रखें, उनका भोजन ग्रहण न करें, न उनसे विवाह के सम्बंध स्थापित करें। किंतु उनके लिए भी नियम में ढील थी और वे चाहें तो उनका उपनयन भी हो सकता था किंतु इसके लिए उन्हें निर्धारित प्रायश्चित करना अनिवार्य था।

उस व्यक्ति के लिए भी ढील थी जिसके परदादा से लेकर आगे की पीढ़ी तक में किसी का उपनयन नहीं हुआ।[3] यदि वे चाहें तो उन्हें भी उपनयन की इजाजत होती थी, बशर्ते कि वह प्रायश्चित करें, जिसमें बारह वर्षों का ब्रह्मचर्य और पवमान तथा अन्य मंत्रों के साथ स्नान सम्मिलित था। उपनयन के समय उसे गृहस्थ के कर्तव्यों की शिक्षा दी जाती थी, और हालांकि उसे स्वयं वेद पढ़ने का अधिकार नहीं होता था, फिर भी उसका पुत्र संस्कार का अधिकारी होता था, जैसे कि उस व्यक्ति के साथ होता था जो स्वयं पतितसावित्रीक होता था, और इस प्रकार उसका पुत्र 'अन्य आर्यों जैसा' होता था।

व्रात्यों को भी उपनयन की इजाजत थी। यह तो ठीक-ठीक कहना कठिन है कि व्रात्य कौन थे। क्या वे आर्य थे जिनकी तीन से अधिक पीढ़ियों में उपनयन नहीं हुआ था? अथवा वे अनार्य थे जो कभी आर्यों में सम्मिलित ही नहीं रहे, और जिन्हें ब्राह्मण लोग आर्य बनाना

---

1. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1, 1.1.128-31, में यह प्रावधान है कि 16वें अथवा 24वें वर्ष के उपरांत व्यक्ति को दो महीनों तक ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करना चाहिए, उसके बाद उसका उपनयन होना चाहिए। फिर उसके बाद उस व्यक्ति को प्रतिदिन (यदि हो सके तो तीन बार) स्नान करना चाहिए, और तब उसे वेद पढ़ना चाहिए। यह थोड़ा आसान प्रायश्चित है। कितने दूसरे स्रोत और भी कठोर दंड का प्रवधान करते हैं। वसिष्ठ धर्मसूत्र, 76-79 और बैंक. स्म. 11.3 में यह प्रावधान है कि पतितसावित्रीक को या तो उद्दलक व्रत करना चाहिए, या फिर अश्वमेध यज्ञ करने वाले के साथ स्नान करना चाहिए, अथवा व्रत्यष्टोम यज्ञ करना चहिए। देखिए, काणे, हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, 2 (1), पृष्ठ 377*
2. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1, 1.1.32-2.4 में यह प्रायश्चित निर्धारित है कि जिसमें उपनयन नहीं हुआ है ऐसी प्रत्येक पीढ़ी में एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन हो, उसके उपरांत उपनयन हो, और फिर वे एक वर्ष तक प्रतिदिन (तीन या एक बार) कुछ मंत्र पढ़ते हुए स्नान करें, जैसे 'यद अंति सच्च दुरके' से प्रारंभ होने वाले सात पवमान मंत्र, और उसके साथ यजुस पवित्र (तैत्तिरीय संहिता, 1, 2.1=ऋग्वेद 10, 17.10), और समपवित्र, और अंगिरा मंत्रों (ऋग्वेद, 4, 40.5) के साथ; अथवा वे केवल व्याहृति मंत्र के साथ जल डालें। यह सब करने के बाद, उन्हें वेद पढ़ाया जाए। दखिए, काणे, हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, 2(1), पृष्ठ 378*
3. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1, 1.1.2.5-10.*

चाहते थे? संभव है कि इसमें दोनों ही बातें शामिल थीं। जो भी हो, व्रात्यों को उस सूरत में उपनयन की इजाजत थी कि वे व्रात्यस्तोम करें। व्रात्य वे थे जो व्रात्य जीवन जीते थे, निम्न थे, और इसलिए और भी निम्न स्थिति में पहुंच गए थे क्योंकि वे ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते थे, भूमि नहीं जोतते थे, और न ही व्यापार करते थे। व्रात्यस्तोम चार थे। पहला सभी व्रात्यों के लिए है। दूसरा उन लोगों के लिए है जो अभिशप्त हैं, जो दुष्ट हैं अथवा गंभीर पापों के दोषी हैं, और तिरस्कृत हैं और व्रात्य जीवन व्यतीत करते हैं। तीसरा उनके लिए है जो सबसे अल्पायु हैं और अत्यंत वृद्ध होकर भी व्रात्यजीवन व्यतीत करते हैं। इन चारों ही व्रात्यस्तोमों में षोडशस्तोम[1] हमेशा ही किया जाता है। षोडशस्तोम से वे ऊंची प्रस्थिति (हैसियत) को प्राप्त कर सकते हैं। ऐसा माना जाता था कि इस स्तोम में उनके दोष समाप्त हो जाते हैं। इस स्तोम के करने से वे व्रात्य नहीं रह जाते और पुरातनपंथी आर्यों के साथ सामाजिक सम्बंधों के योग्य हो जाते थे। वे उपनयन संस्कार के अधिकारी हो जाते थे और वेद-अध्ययन के योग्य भी।

व्रात्य-शुद्धिसंग्रह में[2] प्रावधान है जिसके द्वारा बारह पीढ़ियों के बाद भी, समुचित प्रायश्चित करने पर, व्रात्यों का शुद्धिकरण हो सकता है।

उपनयन के इतना ऊंचा दर्जा मिला हुआ था कि बौधायन (2, 10) ने तो अश्वत्थ वृक्ष (पीपल) के उपनयन की भी अनुमति दी थी।

इन तथ्यों को देखते हुए, यह विश्वास करना कठिन है कि स्त्रियों और शूद्रों को आर्यों ने आदि काल से ही उपनयन से वंचित रखा। इस सम्बंध में, उन भारतीय-ईरानियों में प्रचलित प्रथा की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है जो संस्कृति और धर्म के स्तर पर भारतीय-आर्यों से अत्यंत निकट का सम्बंध रखते थे। भारतीय-ईरानियों में केवल पुरुष और स्त्रियां दोनों ही नहीं, बल्कि सभी वर्गों के पुरुष और स्त्रियां यज्ञोपवीत धारण करते हैं। अब यह तो विरोधियों को ही प्रमाणित करना होगा कि भारतीय-आर्यों में भिन्न व्यवस्था क्यों थी।

वैसे, परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर निर्भर करना इतना आवश्यक भी नहीं है। इस बात के पर्याप्त प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि एक समय था जब स्त्रियों और शूद्रों दोनों को ही उपनयन का अधिकार था और वे यह संस्कार कराते भी थे।

स्त्रियों के उपनयन के सम्बंध में तो हिंदू धर्म ग्रंथों में नितांत स्पष्ट कथन[3] मिलते हैं। उनकी विवेचना करने से यह बात सामने आ जाती है कि स्त्रियों को उपनयन की अनुमति

---

1. *काणे (हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, 2(1), पृष्ठ 385) ने तांड्य ब्राह्मण का उल्लेख किया है जिसमें यह कथा वर्णित है कि जब देवतागण स्वर्गलोक में चले गए तो व्रात्य जीवन जी रहे उनके कुछ आश्रित पृथ्वी पर ही रह गए। फिर देवताओं की कृपा से उन आश्रितों को मारुतों के हाथों षोडशस्तोम (जिसमें 16 स्तोत्र थे) और अनुष्टुभ छंद प्राप्त हुआ, और तब उन आश्रितों को स्वर्ग मिला।*
2. *काणे, हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, 2(1), पृष्ठ 387*
3. *देखिए पुरुषार्थ का सितंबर 1940 का अंक जहां सभी प्रामाणिक कथन एक ही जगह संकलित हैं।*

थी। स्त्रियां केवल वेद की शिक्षा ही नहीं लेती थीं, बल्कि वे वेद शिक्षण की पाठशालाएं भी चलाती थीं और उन्होंने स्त्रियों के लिए पूर्व मीमांसा पर टीका भी लिखी।

शूद्रों के सम्बंध में भी साक्ष्य उतने ही सकारात्मक हैं। यदि सुदास एक राजा था, यदि सुदास एक शूद्र था, यदि उसका राज्याभिषेक वसिष्ठ ने किया था और उसने राजसूय यज्ञ किया था, तो फिर इसमें कोई संदेह नहीं रहना चाहिए कि एक समय में शूद्र यज्ञोपवीत धारण किया करते थे। परिस्थितिजन्य साक्ष्य और उपर्युक्त रचनाकारों के साक्ष्य के अतिरिक्त, मैक्स मूलर द्वारा उद्धृत संस्कार गणपति में[1] यह स्पष्ट घोषणा है कि शूद्र जन उपनयन के योग्य हैं।

स्त्रियों और शूद्रों में एकमात्र अंतर यही है कि स्त्रियों के मामले में तो इस बारे में स्पष्टीकरण मिलता है कि स्त्रियों का उपनयन क्यों बंद कर दिया गया, किंतु शूद्रों का उपनयन बंद करने के बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं मिलता है। तर्क यह दिया जाता है कि स्त्रियों का उपनयन उस समय तक चला जब तक उपनयन की आयु और विवाह की आयु भिन्न रही। कहा जाता है कि प्राचीन काल में उपनयन की आयु आठ वर्ष थी और विवाह उसके बहुत बाद में होता था। किंतु कालांतर में, विवाह की आयु घटाकर आठ वर्ष कर दी गई, जिसका नतीजा यह हुआ कि उपनयन संस्कार पृथक अथवा स्वतंत्र नहीं रह गया और विवाह-संस्कार के साथ उसका विलय हो गया। यह स्पष्टीकरण सही है अथवा गलत, यह अलग मामला है। पते की बात तो यह है कि शूद्रों के मामले में एक समय उपनयन की अनुमति उन्हें थी, और इस अधिकार से यह बाद में जाकर वंचित किया गया, और इस बदलाव का कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

मैंने जो साक्ष्य दिए हैं, उनके बावजूद जो लोग यह सोचते हैं कि वे अपनी आपत्ति पर कायम रहेंगे, तो उन्हें यह याद रखना चाहिए कि उनका पक्ष कमजोर है। यदि यह मानकर चला जाए कि शूद्रों को उपनयन का लाभ कभी मिला ही नहीं, तो उन्हें इस सवाल का सामना करना होगा कि शूद्रों को उपनयन का लाभ क्यों नहीं दिया गया। रूढ़िवादी सिद्धांत में मात्र यह तथ्य रेखांकित है कि शूद्र के लिए कोई उपनयन नहीं है। किंतु इसमें यह नहीं कहा गया है कि शूद्र के लिए उपनयन क्यों नहीं है। यह स्पष्टीकरण तो आज की ही ईजाद (आविष्कार) है कि शूद्रों के लिए उपनयन संस्कार इसलिए नहीं था, क्योंकि वे अनार्य थे, और यह बिलकुल निराधार साबित हो चुका है। या तो कभी उपनयन हुआ करता था और उसे बंद कर दिया गया था, या फिर प्रारंभ से ही इसका अधिकार नहीं दिया गया। इनमें से कुछ भी सही हो सकता है। किंतु इनमें से किसी को भी सही मानने से पहले, उसके समर्थन में कारण अवश्य देने चाहिए। इस बात का क्योंकि कोई कारण नहीं है कि शूद्रों को उपनयन के लाभ से क्यों वंचित किया गया, इसलिए मान्यता मेरे सिद्धांत को ही मिलनी चाहिए कि उन्हें उपनयन का अधिकार था, और उन्हें इससे वंचित किया गया था; और मेरे सिद्धांत में वे कारण भी दिए गए हैं कि उन्हें इससे वंचित क्यों किया गया।

---

*1. हिस्ट्री ऑव एंशिएंट संस्कृत लिटरेचर (1860) पृष्ठ 207*

## VI

तीसरी आपत्ति तो कोई आपत्ति है ही नहीं। जिस व्यक्ति को उपनयन के सभी प्रसंगों की पूरी जानकारी नहीं है, केवल वही व्यक्ति इसे सही ठहरा सकता है।

आर्यों के समाज में कुछ अनुष्ठानों को संस्कार माना जाता था। गौतम धर्मसूत्र (8, 14-24) में संस्कारों की संख्या 40 दी गई है। ये हैं–

> गर्भाधान, पुंसवन, सीमांतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, वेद के चार व्रत, स्नान, विवाह, पांच दैनिक महायज्ञ (देव, पितृ, मनुष्य, भूत, और ब्रह्म के लिए), सात पाक यज्ञ (अष्टक, पर्वनास्थालिपक, श्राद्ध, श्रावणी, अग्रयाणि, चैत्री, अश्वयुजी), सात हविर्यज्ञ (अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्शपूर्वमास, आग्रायण, चतुर्मास, निरूढ़पशुबंध और सौत्रामणि), सात सोम याग (अग्निस्तोम, अत्याग्निष्टोम, डक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिराय, आप्तोर्याम)।

बाद में जाकर लगता है कि संकीर्ण अर्थ में संस्कारों और व्यापक अर्थ में संस्कारों के बीच भेद किया गया। व्यापक अर्थ में संस्कार वास्तव में यज्ञ थे और इसलिए उन्हें सही अर्थ में संस्कारों में सम्मिलित नहीं किया गया, जो घट कर सोलह रह गए।

संस्कारों में कुछ भी विचित्र नहीं है। ये प्रत्येक समाज में मान्य हैं। मसलन, ईसाई लोग बपतिस्मा, नामकरण (ईसाई धर्म में दीक्षित करना), विवाह, मरणासन्न व्यक्ति का तेल लेपन, प्रभु भोज और पवित्र भोज को संस्कार मानते हैं। बहरहाल, संस्कारों को लेकर भारतीय-आर्यों और ईसाइयों की धारणाओं में अंतर दिखाई देता है। ईसाइयों की धारणा यह है कि संस्कार विशुद्ध रूप में आध्यात्मिक मामला है–इसमें विशेष अनुष्ठानों द्वारा परमेश्वर की कृपा प्राप्त की जाती है। इसका कोई सामाजिक महत्त्व नहीं था। भारतीय-आर्यों में संस्कारों का मूल रूप में विशुद्ध आध्यात्मिक महत्त्व था। 'पूर्वमीमांसा' के लेखक जैमिनी के संस्कार सम्बंधी कथन से यह स्पष्ट हो जाता है। जैमिनी के अनुसार सामान्य सिद्धांत यह है कि संस्कारों से दुरुस्ती आती है। ये दो तरह से असर करते हैं। ये कलंक (दोष) मिटाते हैं और ये नए गुण उत्पन्न करते हैं। इन संस्कारों के बिना कोई व्यक्ति इस आधार पर अपने यज्ञ के प्रतिफलों से वंचित रह सकता है कि वह इसे करने के योग्य नहीं है। उपनयन एक संस्कार था और अन्य संस्कारों की तरह इसका महत्त्व मात्र आध्यात्मिक था। शूद्रों को उपनयन से वंचित रखने से इसके महत्त्व में आवश्यक तौर पर एक बदलाव आया। आध्यात्मिक महत्त्व के अतिरिक्त इसका सामाजिक महत्त्व भी हो गया, जो पहले नहीं था।

जब उपनयन का अधिकार आर्य अथवा अनार्य सभी को मिला हुआ था, तब यह सामाजिक महत्त्व का विषय नहीं था। यह सभी का सामान्य अधिकार था। यह मात्र कुछ व्यक्तियों का विशेषाधिकार नहीं था। जब शूद्रों को इससे वंचित कर दिया गया, तो इस अधिकार का होना सम्मान का विषय बन गया है और इससे वंचित होना गुलामी का सूचक। शूद्रों को उपनयन से वंचित करने से भारतीय आर्यों के समाज में एक नया कारक

जुड़ गया। इसका परिणाम यह हुआ कि शूद्र लोग उच्च वर्णों को अपने से श्रेष्ठ मानने लगे और तीनों उच्च वर्णों को शूद्रों को अपने से नीचा समझने की सामर्थ्य मिल गई। उपनयन का अधिकार छिनने से शूद्रों की अवनति होने का यह एक तरीका रहा।

उपनयन के अन्य प्रसंग भी हैं। इनके बारे में जानने के लिए 'पूर्व मीमांसा' में दिए नियमों का उल्लेख आवश्यक हो जाता है।[1] इनमें से एक नियम यह है कि समस्त संपत्ति का पहला उद्देश्य व्यक्ति को यज्ञ के साधन उपलब्ध कराना है। संपत्ति का अधिकार यज्ञ करने की क्षमता पर निर्भर है।[2] दूसरे शब्दों में, जो व्यक्ति यज्ञ नहीं कर सकता, वह संपत्ति भी नहीं रख सकता। यज्ञ वही कर सकता है जिसका उपनयन संस्कार हुआ हो। इसका अर्थ यह हुआ कि जिन्हें उपनयन का अधिकार है केवल उन्हीं को संपत्ति का भी अधिकार है।

पूर्व मीमांसा का दूसरा नियम यह है कि यज्ञ के साथ वैदिक मंत्र अवश्य चलने चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि यज्ञ करने वाले को वेद का अध्ययन अवश्य किया होना चाहिए। जिस व्यक्ति ने वेदों का अध्ययन नहीं किया है वह यज्ञ करने के योग्य नहीं है। वेद-अध्ययन वही कर सकता है जिसका उपनयन संस्कार हुआ हो। दूसरे शब्दों में, ज्ञान और विद्या अर्जित करने की योग्यता—वेदाध्ययन का सही अर्थ है—उपनयन पर निर्भर है। जिस व्यक्ति का उपनयन कोई थोथा संस्कार नहीं है। संपत्ति का अधिकार और ज्ञान का अधिकार तो उपनयन के दो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रसंग हैं।

जो लोग यह नहीं समझ पाते कि उपनयन का अधिकार छिन जाने से शूद्रों की अवनति कैसे हो सकती है, वे यदि पूर्व मीमांसा के उपर्युक्त नियमों को ध्यान में रखें तो उन्हें इसे समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी। शिक्षा और संपत्ति के साथ उपनयन के सम्बंध को समझते ही इस सिद्धांत को स्वीकार करने की सारी कठिनाई समाप्त हो जाएगी कि शूद्रों की अवनति का एकमात्र कारण उपनयन के अधिकार का छिनना ही था।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्यों के प्राचीन समाज में उपनयन संस्कार मूलभूत था और व्यक्तियों की सामाजिक हैसियत और व्यक्तिगत अधिकार उसी पर निर्भर थे। जिस व्यक्ति का उपनयन नहीं होता था वह सामाजिक अवनति, अज्ञान और निर्धनता झेलने को अभिशप्त था। उपनयन का प्रतिबंध वह सबसे घातक हथियार था जो ब्राह्मणों ने शूद्रों से बदला लेने के लिए खोज निकाला था इसका असर ऐटम बम से कम नहीं था। ब्राह्मणों की भाषा में कहें, तो इसने शूद्र को सचमुच श्मशान बना दिया।

---

1. *देखिए, गंगानाथ झा, पूर्व मीमांसा, पृष्ठ 368-369 और 171-172*
2. *अनेक व्यक्ति हैं जो यह नहीं समझ पाते हैं कि मनुस्मृति और अन्य स्मृतियों में महिलाओं और शूद्रों को संपत्ति रखने और वेद अध्ययन के अधिकार से वंचित क्यों किया गया है। किंतु यदि यह ध्यान में रखें कि ये अयोग्यताएं पूर्व मीमांसा में निर्धारित नियमों का स्वाभाविक परिणाम हैं, तो सारी कठिनाई ही समाप्त हो जाती है। स्त्रियां और शूद्र संपत्ति नहीं रह सकते तो इसका कारण उनका स्त्री अथवा शूद्र होना नहीं बल्कि यह है कि उनका यज्ञ करना वर्जित है।*

## VII

यह तो विवाद से परे ही है कि ब्राह्मणों को उपनयन से वंचित करने का अधिकार था। संदेह शायद इस तथ्य से उपजता है कि ऐसा स्पष्ट कथन कहीं भी नहीं मिलता है कि, ब्राह्मणों का यह अधिकार दिया गया था। फिर भी, भारतीय-आर्यों की धार्मिक व्यवस्था के क्रियाशील अंशों से अनभिज्ञ व्यक्तियों के मन में जो भी संदेह हैं, वे इन दो बातों से अवश्य दूर हो जाने चाहिएं—(1) उपनयन संस्कार की पुरोहिती का पूर्ण अधिकार ब्राह्मण को ही था, और (2) अनधिकृत उपनयन संस्कार करने पर ब्राह्मण को दंडित किया जाता था।

यह संभव है कि प्राचीनतम समय में बालक को गायत्री (मंत्र) उसका पिता ही सिखाता था, और इसी के साथ वेदाध्ययन का प्रारंभ होता है और इसी के लिए बाद में उपनयन संस्कार का उपाय किया गया था। किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि अति प्राचीन काल से ही उपनयन संस्कार संपन्न कराने का काम एक गुरु को अथवा एक अध्यापक को सौंपा जाता था। जिसे आचार्य कहते थे, और बालक आचार्य के पास ही जाता और उसी के घर में रहता था।

ये सवाल अत्यंत प्राचीन काल से ही चर्चा का विषय रहे हैं कि आचार्य किसे होना चाहिए और उसकी योग्यता क्या होनी चाहिए।

आचार्य को वेदों का ज्ञाता तो होना ही चाहिए। एक ब्राह्मण ग्रंथ[1] के अनुसार ''जिसे ज्ञान से विहीन गुरु दीक्षित करता है, वह अंधकार से अंधकार में जाता है और वह (आचार्य) भी (अंधकार में जाता है) जो स्वयं अज्ञानी है।''

आपस्तम्ब धर्मसूत्र (1, 1.1.12-13) में लिखा है कि जिस आचार्य का चयन उपनयन के लिए हुआ है उसे ज्ञानी होना चाहिए और उस परिवार से होना चाहिए जो आनुवंशिक तौर पर ज्ञानी और शांत चित्त है, और व्यक्ति को (ब्रह्मचर्य के) अंत तक उसी के मार्गदर्शन में तब तक वैदिक विद्या का अध्ययन करना चाहिए जब तक आचार्य धर्म च्युत नहीं हो जाता।[2]

किंतु आचार्य की सबसे पहली योग्यता यह होती है कि उसे ब्राह्मण ही होना चाहिए—किसी व्यक्ति को केवल कठिनाई के समय (कोई ब्राह्मण उपलब्ध नहीं होने की स्थिति में) ही क्षत्रिय अथवा वैश्य गुरु से पढ़ने की अनुमति होती थी।[3] इसकी अनुमति भी

---

1. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1, 1.1.11, काणे, 2(1), पृष्ठ 324 में उद्धृत।*
2. *व्यास के अनुसार, आचार्य वह हो जो पूर्णतः वेद को समर्पित हो, धर्म का ज्ञाता हो, अच्छे परिवार से हो, शुद्ध हो, श्रोत्रिय हो, और जो सुस्त न हो। श्रोत्रिय वह होता है जिसने वेद की एक शाखा का अध्ययन किया है।*
3. *यह एक विलक्षण तथ्य है कि ऐसे मामलों में ब्राह्मण शिष्य को अपने क्षत्रिय अथवा वैश्य गुरु की बस यह सेवा करनी होती थी कि वह उसका अनुसरण करे; उसे गुरु की शारीरिक सेवा (जैसे चरण धोना आदि) नहीं करनी होती थी। देखिए, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2, 2.4, 25-28; गौतम 7, 1-3; बौधायन धर्मसूत्र, 1-2, 40-42; मनु 2, 241. यह भी व्यवस्था थी कि क्षत्रिय अथवा वैश्य किसी ब्राह्मण को केवल उसी स्थिति में पढ़ाएं जब उनसे इसका आग्रह किया गया हो, अपनी इच्छा से नहीं।*

केवल उस काल में थी जब वेद-अध्ययन के अधिकार और वेद-अध्यापन के अधिकार के बीच अंतर नहीं किया गया था। किंतु जब यह भेद कर दिया गया–और यह भेद बहुत आदि काल में ही कर दिया गया था–तथा वसिष्ठ और विश्वामित्र का टकराव ही वस्तुतः इसी बात पर था, तो उपनयन संस्कार की पुरोहिती के योग्य आचार्य होने का अधिकार अकेले ब्राह्मण को ही मिला।

इसलिए एक बात को तो सुप्रमाणित मानना ही होगा, और वह यह कि ब्राह्मण को छोड़ कोई और उपनयन संस्कार संपन्न नहीं कर सकता था। किसी और द्वारा संपन्न किया गया उपनयन वैध नहीं है।

भारतीय-आर्यों की धार्मिक व्यवस्था का एक और क्रियात्मक अंश ब्राह्मण पर आरोपित यह दायित्व है कि वह धार्मिक किस्म का कोई भी अनधिकृत कार्य नहीं करेगा। ऐसे किसी भी आचरण का दोषी दंड अथवा प्रायश्चित का भागी होता था। ऐसे अनेक दंडों का उल्लेख प्राचीन स्मृतियों में मिलता है। यहां मैं मनु और पराशर स्मृतियों को उद्धृत कर रहा हूं।

मनु ने व्यवस्था दी है कि किस श्रेणी के ब्राह्मण को देव-कर्म और पितरों के श्राद्ध के अयोग्य माना जाए। इस सूची में मनु ने निम्नलिखित को सम्मिलित किया है (देखिए, मनुस्मृति, 3, 156)–

> ''जो शुल्क लेकर पढ़ाए और जो शुल्क देकर पढ़े, जो शूद्र शिष्यों को शिक्षा दे और जिसका शिक्षक शूद्र हो, जो कटु वचन बोले, जो व्यभिचारिणी का पुत्र हो, और जो विधवा का पुत्र हो।''

पराशर के अनुसार–

> ''जो ब्राह्मण दक्षिणा के लिए शूद्र के निमित्त अग्नि को आहुति दे, वह शूद्र हो जाएगा और वह शूद्र एक ब्राह्मण हो जाएगा;'' माधव के अनुसार इसका अर्थ यह हुआ कि संस्कार का पुण्य तो शूद्र को मिलता है, जबकि ब्राह्मण को पाप लगता है।''

कुछ लोग यह पूछ सकते हैं कि ब्राह्मणों को क्या अधिकार था कि वे शूद्रों को उपनयन के अधिकार से वंचित करें, तो उन्हें इन दो तथ्यों के सम्मिलित प्रभाव के विषय में सोचना चाहिए–(1) केवल ब्राह्मण को ही उपनयन संस्कार में पुरोहिती का अधिकार था, और (2) एक अनधिकृत उपनयन संस्कार करने पर वह दंड का भागी होता था। यदि वे इस विषय में सोचें तो उन्हें इस बारे में कोई संदेह नहीं रह जाएगा कि इन दो कारकों का सम्मिलित प्रभाव ब्राह्मण को उपनयन संपन्न करने का और उससे वंचित भी करने का अधिकार देने के रूप में सामने आया। यह सच है कि इस प्रकार का अधिकार ब्राह्मण को प्रत्यक्ष रूप में नहीं दिया गया है। इसका कारण यह है कि जिसे वास्तव में अप्रत्यक्ष अथवा स्पष्ट रूप में करना आवश्यक नहीं। यह भी संदेह से परे है कि ब्राह्मण उपनयन से वंचित

करने के अपने इस अधिकार के प्रति सचेत हैं। जहां तक अभिलेखों (रिकार्ड) का सवाल है, तो ऐसे 16 मामलों का वृत्तांत उपलब्ध है जिनमें ब्राह्मणों ने विभिन्न समुदायों के खिलाफ इस अधिकार का प्रयोग करके उन्हें डराया है। नौ मामलों में उन्होंने कायस्थों को ललकारा, चार में पांचालों को ललकारा, और एक मामले में उन्होंने पालशे महोदय को भी चुनौती दी। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि उन्होंने दो मराठा राजाओं को भी चुनौती दे डाली। ये घटनाएं सन् 556 और 1904 ईसवी के बीच की हैं। यह सच है कि ये उदाहरण प्राचीनकाल के नहीं हैं। फिर भी, यह याद रखना होगा कि ये ब्राह्मणों द्वारा उपनयन से वंचित करने के उनके अधिकार का प्रयोग करने के साक्ष्य मात्र हैं। अधिकार तो और भी प्राचीन काल में प्राप्त हो चुका होगा। यह अधिकार उन्हें पहले ही प्राप्त हो गया था, यह निराधार खोखला दावा नहीं है। सत्यकाम जावालि का अत्यधिक प्राचीनकालीन उदाहरण आम तौर पर यह प्रमाणित करने के लिए दिया जाता है कि व्यक्ति का वर्ण उसके गुण से निर्धारित होता था, उसके जन्म से नहीं। यह तो सच है ही, किंतु यह भी उतना ही सच है जाबालि के मामले से यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन काल में भी ब्राह्मणों ने उपनयन संस्कार संपन्न करने से मनाही का अधिकार हासिल कर लिया था।

इन उदाहरणों को गिनाने से हमारा कोई उद्देश्य तब तक पूरा नहीं होने वाला जब तक हमें उनमें किए गए निर्णयों से सामने आए परिणामों की जानकारी नहीं होगी। इसके लिए हमें प्रत्येक मामले के विस्तार में जाना होगा। दुर्योगवश, उनमें से अधिकांश में निर्णय के अतिरिक्त अन्य विवरण हमारे उद्देश्य के लिए पर्याप्त नहीं हैं। केवल एक मामला ब्राह्मण बनाम शिवाजी का है जिससे सम्बंधित विवरण पूर्ण और सुविदित हैं। यह मामला काफी महत्त्वपूर्ण है और इसलिए इसकी विस्तृत समीक्षा भी आवश्यक है। इससे सामने आने वाले निष्कर्ष केवल रोचक और शिक्षाप्रद ही नहीं हैं बल्कि वे हमारे विचाराधीन विषय पर पर्याप्त प्रकाश भी डालते हैं।

## VIII

जैसा कि सुविदित है, महाराष्ट्र के पश्चिमी भाग में एक स्वतंत्र हिंदू राज्य स्थापित करने के बाद अपना राज्याभिषेक करवाकर स्वयं को राजा घोषित करने की सोची। शिवाजी और उनके मित्रों को लगा कि उनका राज्याभिषेक वैदिक रीति से होगा तभी उसका कोई महत्त्व होगा। किंतु अपनी इच्छा पूरी करने में शिवाजी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उन्हें पता चला कि यह पूरी तौर पर ब्राह्मणों पर निर्भर करता है कि उनका राज्याभिषेक वैदिक रीति से हो सकता है अथवा नहीं। धार्मिक दृष्टि से ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य कोई भी इस संस्कार को संपन्न करने की योग्यता नहीं रखता था। दूसरी बात यह कि उन्हें यह भी एहसास हो गया कि ऐसा कोई भी संस्कार तब तक संपन्न नहीं हो सकता जब तक वह प्रमाणित न हो जाए कि वह क्षत्रिय हैं। उनके सामने तीसरी कठिनाई यह थी कि यदि उनका क्षत्रिय होना प्रमाणित हो भी जाए तो भी वह उपनयन की

आयु-सीमा को पार कर चुके थे और उपनयन के बिना राज्याभिषेक का संस्कार हो नहीं सकता था। यह तीसरी कठिनाई इतनी बड़ी नहीं थी क्योंकि इसे व्रात्य स्तोम द्वारा दूर किया जा सकता था। सबसे बड़ी अड़चन तो पहली कठिनाई से थी। यह शिवाजी की हैसियत से सम्बंधित थी। प्रश्न यह था, क्या वह क्षत्रिय थे? यदि इस प्रश्न का समाधान हो जाता तो बाकी सब तो आसान था। शिवाजी के इस दावे के विरोधी अनेक लोग थे कि वह एक क्षत्रिय हैं। उनके सबसे प्रमुख विरोधी तो ब्राह्मण ही थे, जिनका नेतृत्व उनके अपने प्रधानमंत्री मोरो पंत पिंगले कर रहे थे। यह भी शिवाजी के लिए एक प्रतिकूल स्थिति थी कि उनके मराठा सरदारों ने भी उन्हें सामाजिक अग्रता देने से मना कर दिया था और उनके खिलाफ गोलबंद हो गए थे।[1] उनकी दृष्टि में शिवाजी एक शूद्र थे। शिवाजी का दावा ब्राह्मणों द्वारा समर्थित इस पुराने सिद्धांत के भी खिलाफ जाता था कि कलियुग में एक भी क्षत्रिय नहीं था। शिवाजी कलियुग में रह रहे थे। स्पष्ट है कि वह क्षत्रिय नहीं हो सकते थे। उनके क्षत्रिय होने के दावे पर दर्ज की जाने वाली आपत्ति को इस तथ्य से और भी बल मिला कि उनका उपनयन संस्कार सही आयु में नहीं हुआ था, जो शास्त्रों के अनुसार (क्षत्रियों के मामले में) ग्यारहवें वर्ष में हो जाना चाहिए था। इसे शिवाजी के शूद्र होने का प्रमाण मान लिया गया। फिर भी, सुयोगवश उन्हें बनारस के एक प्रख्यात ब्राह्मण, वेदों तथा शास्त्रों के ज्ञाता, गागाभट्ट की सेवाएं मिल गईं। गागाभट्ट ने सारी कठिनाइयां दूर कर दीं। उन्होंने पहले व्रात्य स्तोम और फिर उपनयन करवाया, और फिर 06 जून 1674 को रायगढ़ में शिवाजी का राज्याभिषेक[2] कर दिया।

---

1. *राज्याभिषेक का विचार कैसे बना इसके विषय में 'हिस्ट्री ऑव महाराष्ट्र' (पृष्ठ 244) में किंकैड ने कुछ रोचक बातें कही हैं। वह कहते हैं, "हालांकि दक्कन के दिलेर सामंत मैदान में तो खुशी-खुशी शिवाजी के पीछे रहते थे, फिर भी व्यक्तिगत जीवन में वे उन्हें किसी भी प्रकार की अग्रता देने को तैयार नहीं थे। और राजकीय भोज के अवसरों पर वह इसे पसंद नहीं करते थे कि मोहिते, निंबलकर, सावंत और घोरपाडे कुल को दिए गए आसन से भी ऊपर कोई भोसले बैठे। उन्होंने इस विषय में अपने मंत्री बालाजी आवाजी चिटनीस से हाथों से नहीं बल्कि बनारस के किसी पुरोहित के हाथों से मुकुट धारण करें। राजा ने अपनी मां जीजाबाई, संत गुरु रामदास और अपनी प्रिय देवी भवानी की इच्छा जानी और देखा कि वे सभी उनके मंत्री के सुझावों से सहमत थे।"*
   *इससे यह प्रतीत होता है कि वैदिक रीति से राज्याभिषेक करवाने के पीछे उद्देश्य सामाजिक अग्रता प्राप्त करना था, वैधानिक और राजनीतिक संप्रभुता हासिल करना नहीं।*
2. *ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ ब्राह्मण शिवाजी का राज्याभिषेक करने को तैयार तो थे, किंतु वे इसे अवैदिक अर्थात पौराणिक रीति से करना चाहते थे, जैसा कि शूद्रों के मामले में होता है। उन्होंने भविष्यवाणी कर दी थी कि यदि शिवाजी ने अपना राज्याभिषेक वैदिक रीति से करवाया तो तमाम तरह का अनिष्ट होगा। दुर्योगवश ऐसे अनिष्ट हो भी गए और अंधविश्वासी शिवाजी ने अवैदिक रीति से दूसरा राज्याभिषेक करवाया। सी.वी. वैध ने इस दूसरे अभिषेक का रोचक विवरण दिया है–* **शेष अगले पेज पर...**

शिवाजी का प्रकरण कई कारणों से महत्त्वपूर्ण है। यह इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह प्रमाणित होता है कि ब्राह्मण के अतिरिक्त और किसी को भी उपनयन संस्कार संपन्न करने का अधिकार नहीं है और यदि ब्राह्मण इसे नहीं करना चाहे तो कोई भी व्यक्ति उसे ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है। शिवाजी एक स्वतंत्र राज्य के शासक थे और अपने आपको पहले ही महाराजा और छत्रपति कहना शुरू कर चुके थे। उनकी प्रजा में अनेक ब्राह्मण थे। फिर भी, शिवाजी उनमें से किसी को भी अपने राज्याभिषेक के लिए बाध्य नहीं कर सके।

यह इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह प्रमाणित होता है कि ब्राह्मण द्वारा संपन्न करवाया गया संस्कार ही वैध हो सकता है। गैर-ब्राह्मण द्वारा करवाया गया संस्कार निष्फल

---

*"उस समय भी हमेशा की तरह अड़ंगा डालने वाले और असंतुष्ट ब्राह्मण थे। उन्होंने अभिषेक को संतोषजनक नहीं माना, हालांकि पूरे महाराष्ट्र ने इसका स्वागत किया था। बंगाल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय में एक कविता की प्रतिलिपि रखी है जिसका शीर्षक है 'राज्याभिषेक कल्पतरु', और जिसका प्रकाशन पूना के इतिहासकार एस. मंडल ने किया है (त्रैमासिक, खंड 10-1)। इसमें अभिषेक पर उठाई गई कुछ आपत्तियों का चित्रण है। यह कविता नितांत समकालीन नहीं है, क्योंकि इसमें परवर्ती विचार का उल्लेख है कि शिवाजी तो शिव के अवतार थे (विष्णु के नहीं, जैसा कि पूर्ववर्ती शिवभारत में कहा गया है), हालांकि यह राजाराम के समय की है। इसमें गागाभट्ट के एक विरोधी बनारसवासी विद्वान संन्यासी निश्चलपुरी और गोविंदभट्ट बर्वे के बीच एक काल्पनिक वार्तालाप कोंकण में बताकर प्रस्तुत किया गया है। इसमें अभिषेक के पहले और बाद में होने वाले अनिष्टों का वर्णन किया गया है, जैसे प्रतापराव गूजर की मृत्यु, शिवाजी की पत्नी काशीबाई की मृत्यु आदि, और एक शहतीर के गिरने से स्वयं गागाभट्ट की नाक पर लगी चोट। इस कविता में स्पष्ट कहा गया है कि गागाभट्ट ने अभिषेक में केवल अपने अनुयायी ब्राह्मणों की सेवाएं लीं और उन ब्राह्मणों को मना कर दिया जिनकी अनुशंसा निश्चलपुरी ने की थी। आगे अभिषेक की ही कई कमियों का उल्लेख किया गया है। जब अभिषेक के बाद शिवाजी रथ में बैठ रहे थे, तो पहले गागाभट्ट उसमें बैठे और फिर शिवाजी। पूरे संस्कार को देखने के बाद निश्चलपुरी दुर्ग से चले गए किंतु शिवाजी से कह गए कि 13वें, 22वें और 55वें दिन अशुभ घटनाएं होंगी। तेरहवें दिन शिवाजी की मां का निधन हो गया। फिर प्रतापगढ़ में एक अस्तबल जल गया जिसमें बहुत सारे घोड़े थे, और सिंहगढ़ में एक हाथी मर गया। इन घटनाओं से विचलित शिवाजी ने निश्चलपुरी को वापस बुलाया और उनकी तथा उनके ब्राह्मणों की सहायता से दोबारा राज्याभिषेक किया, इस बार वैदिक रीति से नहीं बल्कि तांत्रिक रीति से। इस संस्कार का भी विस्तृत वर्णन कविता में किया गया है। यह संस्कार तो वैदिक नहीं था किंतु इसमें सामवेद के कुछ मंत्रों का उल्लेख है। यह राज्याभिषेक आश्विन शुद्ध 5 (ललित पंचमी दिवस, 1596) को संपन्न हुआ; इसका उल्लेख कविता के अंत में किया गया है। इस अभिषेक का उल्लेख जे ने किया है और निश्चलपुरी का उल्लेख एक मुस्लिम अभिलेख में भी मिलता है।" (शिवाजी द फाउंडर ऑव मराठा स्वराज, पृष्ठ 252-253)।*

होता है। शिवाजी को यह स्वतंत्रता थी कि वह अपना राज्याभिषेक संस्कार किसी गैर-ब्राह्मण से करवा सकते थे। किंतु वह इसका साहस नहीं कर पाए।[1] क्योंकि वह जानते थे कि इसका कोई सामाजिक अथवा आध्यात्मिक प्रभाव नहीं होगा।

तीसरे यह इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह प्रमाणित होता है कि एक हिंदू व्यक्ति की प्रस्थिति तय करने का अधिकार पूर्णतः ब्राह्मणों की इच्छा पर निर्भर करता है। शिवाजी के पक्ष में निर्णय को उचित ठहराने के लिए उनकी वंशावली का सहारा लिया गया जो उनके मित्र बालाजी आवाजी मेवाड़ से लेकर आए। इस वंशावली के अनुसार शिवाजी का सम्बंध मेवाड़ के सिसौदिया वंश से था जिन्हें क्षत्रिय माना गया है। यह आरोप है कि यह वंशावली फर्जी थी और इसे राज्याभिषेक के लिए तैयार किया गया था। यदि यह मानकर चलें कि यह फर्जी नहीं थी[2] तो भी इससे शिवाजी के क्षत्रिय होने के दावे को उचित कैसे ठहराया जा सकता है? शिवाजी को क्षत्रिय प्रमाणित करना तो दूर, इस वंशावली से एक सवाल और उठा खड़ा होता है कि सिसौदिया क्या क्षत्रिय थे। सिसौदिया तो राजपूत थे। इस बारे में काफी संदेह है कि क्या राजपूत उन मूल क्षत्रियों के वंशज हैं जिन्हें प्राचीन भारतीय-आर्य समुदाय में दूसरे वर्ण का दर्जा हासिल था। एक मत तो यह है कि वे विदेशी हैं, वे उस हूण जाति के अवशेष हैं जिन्होंने भारत पर आक्रमण किया और राजपूताना में जम गए थे, और जिन्हें ब्राह्मणों ने मध्य भारत में बौद्ध धर्म को कुचलने के मकसद से पवित्र अग्नि के समक्ष एक विशेष संस्कार द्वारा क्षत्रिय का ऊंचा दर्जा दे दिया था। इसीलिए उन्हें अग्निकुल क्षत्रिय कहा गया था। इस मत का समर्थन इस विषय के अनेक अधिकारी विद्वानों ने भी किया है। विन्सेंट स्मिथ कहते हैं–[3]

> ''इस जगह मैं इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं कि जिस पर लंबे समय से संदेह किया गया है और जो अब साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित हो चुका है (और वह तथ्य यह है) कि राजपूताना और उच्च गंगा घाटी में आए विदेशी आप्रवासी स्थानीय राजाओं के साथ होने वाली लड़ाइयों के दौरान पूरी तौर पर नष्ट नहीं हो गए थे। यह सच है कि उनमें से अनेक मारे गए थे, किंतु अनेक

---

1. *एक समय कायस्थों ने अपनी प्रस्थिति (हैसियत) के विरुद्ध ब्राह्मणों की चुनौती को ध्यान में रखते हुए पुरोहित के रूप में संस्कार स्वयं संपन्न करने का संकल्प किया था। किंतु उन्होंने इस संकल्प को अमलीजामा नहीं पहनाया। इसका कारण भी यही रहा होगा।*
2. *मेवाड़ का सिसौदिया परिवार दो कारणों से महत्त्वपूर्ण था–(1) वे उदयपुर के सिसौदिया वंश की शाखा थे, जो रामायण के नायक राम के बड़े पुत्र लव के वंशज थे, और (2) मेवाड़ के सिसौदिया शुद्ध थे क्योंकि उन्होंने अपनी स्त्रियों को मुगल सम्राटों की पत्नी बनने के लिए देने से मना कर दिया था और जयपुर और जोधपुर के अन्य राजपूत परिवारों के साथ भी अंतरविवाह नहीं किया था। क्या इसी कारण से यह प्रमाणित करने का प्रयास किया गया था कि शिवाजी तो मेवाड़ के सिसौदिया वंश से थे।*
3. *सी.वी. वैद्य द्वारा 'हिस्ट्री ऑव मेडीवल इंडिया', में उद्धृत, खंड 2, पृष्ठ 8*

बच भी गए थे और उन्हें आम आबादी में मिला लिया गया था जिसका कोई बड़ा अंश उनके वंशजों का बनाया हुआ नहीं है। इन विदेशियों ने अपने पूर्ववर्ती शकों और यूए-ची की तरह हिंदू धर्म की अद्भुत आत्मसातकारी शक्ति के आगे सपर्मण कर दिया और शीघ्र ही हिंदू बन गए थे। सरदार की पदवी जीतने वाले कुलों अथवा परिवारों को क्षत्रिय अथवा राजपूत के रूप में हिंदू राज्यतंत्र में तत्परता से स्वीकार कर लिया गया था और इसमें कोई संदेह नही कि परिहार और उत्तर भारत के अन्य अनेक प्रसिद्ध कुल उन बर्बर झुंडों से निकले जो पांचवीं और छठवीं शताब्दियों के दौरान भारत में आए। इन अजनबी अतिक्रमकारियों में जो साधारण जन थे वे गूजर, और राजपूतों से नीची जाति के बन गए। दक्षिण में, अनेक स्वदेशी और आदिवासी जनजातियों और कुल भी हिंदूकरण युक्त सामाजिक प्रोन्नति की उसी प्रक्रिया से गुजरे और इसके फलस्वरूप गोंड, भाट, खरवा आदि चंदेल, राठौर, गहरवार और अन्य ख्यात राजपूत कुलों के रूप में उभरे जिनका सम्बंध सूर्यवंश और चंद्रवंश तक जाता था।''

विलियम क्रुक[1] कहते हैं–

''हाल के अनुसंधान ने राजपूतों की उत्पत्ति पर काफी प्रकाश डाला है। वैदिक क्षत्रियों और मध्य युग के राजपूतों के बीच एक चौड़ी खाई है जिसे पाटना अब संभव नहीं है। अब यह निश्चित हो गया है कि अनेक कुलों की उत्पत्ति शकों अथवा कुषाणों के आक्रमण के समय से अथवा और भी पक्के तौर पर श्वेत हूणों के समय से हुई जिन्होंने लगभग 480 ईसवी में गुप्त साम्राज्य को नष्ट कर दिया था। हूणों से सम्बंधित गूजर जनजाति ने हिंदू धर्म अपना लिया और उन्हीं के नेताओं से ऊंचे राजपूत परिवारों का वंश चला। राजसी सम्मान के इन नए दावेदारों ने जब ब्राह्मणी धर्म और संस्था को अपना लिया तो स्वाभाविक है कि उनका सम्बंध महाभारत और रामायण के नायकों से जोड़ने का प्रयास तो होगा ही। इसीलिए इन ग्रंथों में दर्ज दंतकथाओं का उदय हुआ जिनमें इन राजपूत परिवारों की भव्य उत्पत्ति सूर्यवंश और चंद्रवंश से बताई गई...क्षत्रिय अथवा राजपूत के नाम का समूह प्रस्थिति अथवा हैसियत पर निर्भर करता था, वंश पर नहीं, और इसीलिए विदेशियों के लिए जाति के पूर्वग्रहों का खंडन किए बिना इस जनजातियों अथवा कबीलों में प्रवेश पाना संभव हो गया, क्योंकि उस समय तक जाति सम्बंधी पूर्वग्रह आंशिक तौर पर ही बने थे। किंतु विदेशियों के इस प्रवेश को एक सुविधाजनक गल्प का छद्मावरण देना आवश्क हो गया। इसीलिए इस दंतकथा का जन्म हुआ कि बौद्ध धर्म तथा अन्य अवधर्मों को कुचलने में ब्राह्मणों की मदद करने के लिए किस प्रकार प्राचीन वैदिक ऋषियों

1. सी.वी. वैद्य द्वारा *'हिस्ट्री ऑव मेडीवल इंडिया'*, में उद्धृत, खंड 2, पृष्ठ 9

की देखरेख में शुद्धिकरण अथवा दीक्षा के संस्कार द्वारा अग्निकुलों की उत्पत्ति हुई। यह विशेषाधिकार चार अग्निकुलों अर्थात परमार, परिहार, चालुक्य और चौहान परिवारों तक सीमित रहा।

डॉ. डी.आर. भंडारकर[1] का भी यही मत है। उनके अनुसार, राजपूत लोग गूजरों के वंशज हैं, गूजर विदेशी थे, और इसलिए राजपूत लोग विदेशियों के वंशज हैं।

राज्याभिषेक के लिए नियुक्त ब्राह्मण राजपूतों की उत्पत्ति से और उनके इस दावे से अनभिज्ञ कैसे हो सकते थे कि वे क्षत्रियों के वंशज हैं? किंतु यदि यह मान भी लें कि उन्हें इस तथ्य की जानकारी नहीं थी तो वे यह तो जानते ही थे कि ब्राह्मणों ने पहले ही यह निर्णय कर रखा है कि कलियुग में कोई क्षत्रिय नहीं है। यह एक पुरानी और दीर्घकालिक निर्णय था। और यदि ब्राह्मणों में पूर्व निर्णयों के लिए सम्मान था, तो वे सिसौदिया कुल के लोगों और शिवाजी के दावे को भी खारिज करने के लिए बाध्य थे। यदि वे ऐसा करते, तो कोई उन पर दोष नहीं लगता। किंतु ब्राह्मणों ने तो पूर्व निर्णय के नियम की बाध्यता को तो कभी माना ही नहीं। उनके लिए 'निर्णय के अनुसरण' जैसी तो कोई चीज थी ही नहीं।

चौथी बात, यह इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि क्योंकि इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रस्थिति अथवा दर्जे के मामलों में ब्राह्मणों के निर्णय कैथोलिक पादरियों के अनुग्रहों की तरह बिकाऊ थीं। गागाभट्ट का निर्णय एक खरा निर्णय नहीं था, यह उस रकम से स्पष्ट हो जाता है जो गागाभट्ट और अन्य ब्राह्मणों ने संस्कार संपन्न कराने के एवज में ली थी। शिवाजी ने राज्याभिषेक में कितनी रकम खर्च की और इसका कितना अंश गागाभट्ट और ब्राह्मणों को मिला, इसकी जानकारी वैद्य द्वारा संकलित निम्नलिखित विवरण से मिलती है—[2]

> "इन मंत्रियों में से प्रत्येक को एक लाख होन (=तीन लाख रुपये), एक हाथी, एक घोड़ा, वस्त्र और आभूषण दिए गए। गागाभट्ट को पूरे संस्कार के लिए एक लाख रुपये दिए गए। राज्याभिषेक संस्कार के विभिन्न चरणों में शिवाजी ने जो दक्षिणा दी वह अवसर के अनुसार ही बहुत अधिक थी। सभासद के अनुसार राज्याभिषेक के अवसर पर कुल एक करोड़ बयालीस लाख होन अर्थात 426 लाख रुपये खर्च हुए।
>
> सभासद के अनुसार शिवाजी के राज्याभिषेक में 50,000 वैदिक ब्राह्मण एकत्र हुए थे।[3] इनके अतिरिक्त इसमें हजारों जोगी, संन्यासी आदि भी जमा हुए। उन्हें दुर्ग के नीचे अन्न दिया गया अथवा खिलाया गया। समकालीन पत्रों

1. *सी.वी. वैद्य द्वारा 'हिस्ट्री ऑव मेडीवल इंडिया', में उद्धृत, खंड 2, पृष्ठ 10. वैद्य ने इस मत का विरोध किया है और यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि राजपूत विदेशी नहीं हैं बल्कि मूल आर्य-क्षत्रियों के वंशज हैं। वैद्य की बात में अधिक दम दिखाई नहीं देता।*
2. *शिवाजी, द फाउंडर ऑव मराठा स्वराज, पृष्ठ 248 और 252*
3. *वैद्य कहते हैं कि यह संख्या अवश्य ही 5,000 की जगह गलती से हो गई होगी। उन्होंने इस 'अवश्य' की पुष्टि में कोई कारण नहीं दिया है।*

में यह बताया गया है कि राज्याभिषेक से पहले शिवाजी को सोने, लगभग अन्य सभी धातुओं और शुभ वस्तुओं से तौला गया। 03 अक्टूबर 1684 को इस संस्कार का वर्णन करने वाले डच अभिलेख के अनुसार शिवाजी का वजन 160 पौंड (=17000 होन) था और उन्हें चांदी, तांबा, लोहा इत्यादि, और कपूर, नमक, चीनी, मक्खन, विभिन्न प्रकार के फलों, सुपारी आदि से भी तौला गया, और इसे ब्राह्मणों में वितरित कर दिया गया। 07 जून को, अर्थात राज्याभिषेक के अगले दिन, आम दक्षिणा दी गई जिसमें प्रत्येक ब्राह्मण को तीन से पांच रुपये तक दिए गए और अन्य सभी को, चाहे स्त्री हो अथवा बच्चा, दो रुपये और एक रुपया दिया गया। कुल मिलाकर दक्षिणा स्वरूप डेढ़ लाख होन दिए गए।

ऑक्सेनडन ने भी 18 मई से 13 जून तक की अपनी डायरी में लिखा है कि शिवाजी को सोने से तौला गया और उनके वजन के बराबर 16,000 होन में एक लाख होन और मिलाकर उस राशि को दक्षिणा के तौर पर ब्राह्मणों में बांट दिया गया।

उपर्युक्त डच अभिलेख में यह भी कहा गया है कि व्रात्य संस्कार के लिए गागाभट्ट को 7,000 होन और अन्य ब्राह्मणों को 17,000 होन दिए गए। 05 जून को शिवाजी ने पवित्र गंगा जल में स्नान किया और वहां उपस्थित प्रत्येक ब्राह्मण को 100 होन दिए गए।''

क्या गागाभट्ट को दी गई रकम को एक पुरोहित को उचित रूप में दी गई दक्षिणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं माना जा सकता?[1] एक स्थिति है जिसके आधार पर यह स्पष्ट किया जा सकता है कि गागाभट्ट को तो पर्याप्त भुगतान भी नहीं किया गया था। स्थिति यह है कि गागाभट्ट को जो पैसा मिला वह शिवाजी के मंत्रियों को मिलने वाली रकम से बहुत कम था। बहरहाल इस तथ्य से कोई निष्कर्ष निकालने से पहले हमें दूसरे पक्ष को प्रभावित करने वाले दो तथ्यों पर ध्यान देना ही होगा। इन तथ्यों से यह तर्क बिलकुल खारिज हो जाता है। पहला तथ्य यह है कि मंत्रियों ने स्वयं राज्याभिषेक के अवसर पर शिवाजी को बड़े उपहार दिए थे।[2] शिवाजी के पेशवा मोरोपंत पिंगले ने 7,000 होन और अन्य दो मंत्रियों ने पांच-पांच हजार रुपये दिए। इन्हें घटा देने पर, उन्हें शिवाजी द्वारा दिए गए उपहार बहुत कम ही कहे जाएंगे।

दूसरा तथ्य यह है कि शिवाजी के ये मंत्री राज्याभिषेक की इस योजना में शिवाजी के सबसे प्रबल विरोधी थे। वे इस विचार में पक्के थे कि शिवाजी एक शूद्र थे और उन्हें

1. *यह तो नहीं ही मानना चाहिए कि गागाभट्ट को मात्र एक लाख रुपये मिले। उन्हें व्रात्य स्तोम के लिए अलग से 7,000 होन (=2100 रुपये) दिए गए। इसके अतिरिक्त उन्हें उस सोने में से थोड़ा सोना और उन वस्तुओं के मूल्य में से थोड़ा हिस्सा अवश्य मिला होगा। जिनसे शिवाजी को तौला गया था और जिसे ब्राह्मणों में बांट दिया गया था।*
2. *वैद्य, वही, पृष्ठ 247*

राज्याभिषेक करवाने का अधिकार नहीं था क्योंकि यह अधिकार तो केवल क्षत्रियों को था। इसलिए, इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि शिवाजी ने उनका मुंह बंद करने और उन्हें हमेशा के लिए अपने पक्ष में करने के मकसद से उन्हें बड़े-बड़े उपहार दिए। इसलिए, शिवाजी द्वारा मंत्रियों को दी गई रकम को यह तय करने का मानदंड नहीं बनाया जा सकता कि गागाभट्ट को दी गई रकम मात्र एक पुरोहित की उचित दक्षिणा से अधिक कुछ थी या नहीं। वास्तव में, गागाभट्ट ने इतने अधिक दांव-पेंच किए कि हम यह निष्कर्ष निकालने को बाध्य हो जाते हैं कि यह मात्र उचित दक्षिणा ही नहीं थी और इसका कुछ अंश उसे सीधा रखने के लिए नाजायज पारितोषिक के तौर पर दिया गया था।

राज्याभिषेक की इस पूरी योजना को सफल बनाने में जिस व्यक्ति की सबसे प्रमुख भूमिका रही वह शिवाजी का निजी सचिव बालाजी आवाजी था, जो महाराष्ट्र का एक कायस्थ था। बालाजी ने सबसे पहला कदम यह उठाया कि उसने तीन ब्राह्मणों केशव भट्ट, भालचंद्र भट्ट, और सोमनाथ भट्ट को शिवाजी के संदेशवाहक बनाकर गागाभट्ट के पास इस पूरी जानकारी के साथ बनारस भेजा कि शिवाजी का मकसद और उनका दर्जा क्या है। गागाभट्ट ने क्या किया? उन्होंने उन तीन संदेशवाहकों को इस आशय का पत्र देकर वापस भेज दिया कि वह इस आमंत्रण को स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि उनकी दृष्टि में शिवाजी एक शूद्र थे और इसलिए राज्याभिषेक के योग्य नहीं थे। बालाजी ने अगला कदम यह उठाया कि उसने शिवाजी के क्षत्रिय होने के समर्थन में प्रमाण जुटाए। वह एक वंशावली हासिल करने में सफल हो गया जिसमें शिवाजी को सिसौदिया कुल का क्षत्रिय वंशज दिखाया गया था, जो राजपूत और मेवाड़ के शासक थे। इस प्रमाण को उसने एक अलग संदेशवाहक[1] के हाथ गागाभट्ट के पास भेजा। गागाभट्ट उस प्रमाण से संतुष्ट हो गए होंगे, तभी तो वह राज्याभिषेक का संस्कार संपन्न करने हेतु रायगढ़ आने को सहमत हो गए। गागाभट्ट ने वहां पहुंचकर क्या किया? उन्होंने यह कहा कि उन्होंने साक्ष्य की फिर से जांच की है और इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि शिवाजी एक शूद्र हैं और इसलिए उनका राज्याभिषेक नहीं हो सकता।

इस मामले में गागाभट्ट की यह अकेली कलाबाजी नहीं थी। उन्होंने एक बार फिर एक विचित्र किस्म की पलटी खाई और यह कह दिया कि वह बालाजी आवाजी के राज्याभिषेक के लिए तैयार हैं क्योंकि बालाजी एक कायस्थ, और इसलिए एक क्षत्रिय हैं। उन्होंने यह

---

1. *इस संदेशवाहक का नाम नीलो येशाजी था। वह कायस्थ था। पहले जिन तीन ब्राह्मणों को गागाभट्ट को बुलाने के लिए भेजा गया था उनके बारे में यह संदेश रहा कि उन्होंने धूर्तता करके ऐसा काम किया जो उन्हें दिए गए निर्देशों के विपरीत था और जिनसे शिवाजी के हितों को धक्का पहुंचता था। दरअसल, ब्राह्मण होने के नाते वे शिवाजी के राज्याभिषेक के खिलाफ थे। संभव है कि बालाजी को यह लगा हो कि यह संदेशवाहक जो पत्र गागाभट्ट से लेकर आए वह उनकी चालबाजी हो। इसीलिए बालाजी ने इस बार अपनी ही कायस्थ जाति के एक व्यक्ति को वहां भेजा।*

भी कहा कि वह शिवाजी का राज्याभिषेक नहीं कर सकते क्योंकि वह शूद्र हैं। गागाभट्ट की कलाबाजियां यहीं खत्म नहीं हो गईं। उन्होंने एक बार फिर पलटी खाई और यह राय दे दी कि शिवाजी एक क्षत्रिय हैं और वह उनका राज्याभिषेक करने को तैयार हैं। यहां तक कि उन्होंने गागाभट्टी शीर्षक से एक रचना लिख डाली जिसमें उन्होंने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कायस्थ लोग जारज हैं।

इस कलाबाजियों से क्या पता चलता है? क्या इससे यह पता नहीं चलता कि वह पुरोहिती के लिए बिलकुल भी इच्छुक अथवा सहमत नहीं थे और उन्हें नगदी देकर ही सहमत किया जा सकता था? यदि इस तर्क में दम है तो फिर इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्हें इस निर्णय के लिए नाजायज ढंग से पैसा लेकर खरीदा गया था।[1]

अंतिम बात, शिवाजी का प्रकरण इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रस्थिति के मामले में ब्राह्मण लोग अपने आपको 'पहले से निर्णीत मुकदमे' से बंधा नहीं मानते थे। वे तो यह मानते हैं कि जिस मामले को वे पहले ही निर्णीत कर चुके हैं, उसे फिर से खोलने को वे स्वतंत्र हैं। क्योंकि ब्राह्मणों ने अपने इस निर्णय का कितने दिन सम्मान किया कि शिवाजी एक क्षत्रिय हैं?

शिवाजी ने अपने राज्याभिषेक वाले दिन अर्थात 06 जून 1674 से एक नया संवत आरंभ किया जिसे उन्होंने 'राज्याभिषेक संवत' कहा। यह संवत कब तक प्रचलन में रहा? केवल तभी तक जब तक शिवाजी और उनके वंशज सक्रिय शासकों के तौर पर सिंहासनारूढ़ रहे। संप्रभुता जैसे ही ब्राह्मण पेशवाओं के हाथ में आई, उन्होंने इसे समाप्त करने का आदेश जारी कर दिया।[2] उन्होंने न केवल इस संवत का प्रयोग करने को रुकवा दिया बल्कि मुसलमान सम्राटों के अंदाज में फसली वर्ष का प्रयोग शुरू कर दिया। ब्राह्मणों

---

1. *गागाभट्ट की कलाबाजियों से सम्बंधित तथ्यों को मैंने के.एस. ठाकरे की मराठी पुस्तिका 'ग्रामन्याचा इतिहास' से लिया है। ठाकरे ने अपने तथ्य इतिवृत्त से लिए हैं। ये तथ्य कितने विश्वसनीय हैं, यह कहना कठिन है। किंतु यह तो स्वीकार करना ही होगा कि गागाभट्ट की कलाबाजियां इसलिए सच लगती हैं कि इनके बिना कुछ प्रासंगिक और विचलित कर देने वाले तथ्यों का स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता। मसलन, इन सवालों को ही लें—क्या गागाभट्ट रायगढ़ आने के बाद बदले, और अगर वह बदले तो क्यों? गागाभट्ट में यह बदलाव तब आया जब उन्हें यह पता चला कि मोरोपंत पिंगले नाम का एक और ब्राह्मण, जो शिवाजी के प्रधानमंत्री से कम नहीं था, शिवाजी के क्षत्रिय होने सम्बंधी दावे का घोर विरोधी था। बहुत संभव है कि जब ये दोनों ब्राह्मण मिले तो उनमें परस्पर सहमति हो गई और इसीलिए गागाभट्ट बदल गए। शिवाजी के राज्याभिषेक का घोर विरोधी मोरोपंत बाद में उसका प्रबल समर्थक क्यों बन गया? यदि यह सच है कि गागाभट्ट ने यह प्रस्ताव रखा था कि बालाजी को राजा घोषित कर देना चाहिए, तो इससे मोरोपंत के मोर्चा बदल लेने का पूरा कारण स्पष्ट हो जाता है। बालाजी क्योंकि कायस्थ था और कायस्थ लोग ब्राह्मणों के घोर शत्रु थे, इसलिए मोरोपंत दोनों बुराइयों में से कम बुराई को चुनते हुए शिवाजी के राज्याभिषेक के लिए सहमत हो गया।*
2. *सरदेसाई, मराठी रियासत, 2, पृष्ठ 363, और वैद्य, शिवाजी, पृष्ठ 251*

ने बस इतना ही नहीं किया। उन्होंने इससे भी आगे जाते हुए शिवाजी के वंशजों के क्षत्रिय होने पर ही सवाल उठाना शुरू कर दिया।[1] वे शिवाजी के दोनों पुत्रों संभाजी और राजाराम का तो कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे क्योंकि शिवाजी ने अपने जीते-जी उनका उपनयन संस्कार ब्राह्मणों द्वारा वैदिक रीति से संपन्न करवा कर दिया था। वे शिवाजी के पौत्र शाहू का भी कुछ नहीं बिगाड़ सके क्योंकि ब्राह्मणों के हाथों में शासक सत्ता ही नहीं थी। किंतु, जैसे ही शाहू ने अपने ब्राह्मण पेशवा को अपनी संप्रभु शक्तियां सौंपी, उनके लिए अस्वीकार का रास्ता साफ हो गया। इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि शाहू के उत्तराधिकारी और दत्तक पुत्र रामजी राजे का उपनयन संस्कार हुआ भी था या नहीं, और यदि हुआ था तो क्या यह वैदिक रीति से हुआ था (रामजी राजे नाबालिग था और उसके संरक्षक पेशवा थे)। किंतु इस बात के तो निश्चित प्रमाण हैं कि 1777 में गोद लिए गए उसके उत्तराधिकारी शाहू द्वितीय का उपनयन संस्कार पेशवओं के निर्देशानुसार पौराणिक रीति से हुआ।[2] शाहू द्वितीय का उपनयन संस्कार पौराणिक रीति से होना इस बात का परिचायक था कि पेशवा उसे मानते थे। क्योंकि केवल एक शूद्र का उपनयन संस्कार ही वैदिक रीति से किया जाता है। सन् 1808 में शाहू द्वितीय के उत्तराधिकारी बने महाराजा प्रतापसिंह के साथ क्या हुआ, उनका उपनयन संस्कार हुआ या नहीं, और यदि हुआ तो वैदिक रीति से हुआ या पौराणिक रीति से, यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। किंतु एक बात तो निश्चित रूप से ज्ञात है कि सन् 1827 के आसपास करवीर के शंकराचार्य ने सांगली के कायस्थों की प्रस्थिति (हैसियत) पर दिए गए अपने निर्णय में कहा था कि[3] "कलियुग में कोई क्षत्रिय नहीं है और उनके दफ्तर में इस आशय के दस्तावेज मौजूद हैं कि न तो शिवाजी क्षत्रिय थे और न ही संभाजी और शाहू।" यह आरोप लगाया जाता है कि यह कथन मूल दस्तावेज में नहीं है बल्कि इसे सांगली के ब्राह्मण राजा ने उसमें डाल दिया था। इस रूप में, यह शिवाजी का वंशज होने की प्रतापसिंह की प्रस्थिति को सीधी चुनौती थी। प्रतापसिंह को इस मुद्दे को सन् 1830 में सतारा में हुए ब्राह्मणों के एक सम्मेलन में रखना पड़ा। बहुमत का निर्णय प्रतापसिंह के पक्ष में गया और वह शूद्र की स्थिति में डाले जाने से बच गए।

ब्राह्मण जब शिवाजी के वंश की एक शाखा को शूद्र की स्थिति में पहुंचाने के अपने प्रयास में सफल नहीं हुए, तो उन्होंने उनके वंश की दूसरी शाखा पर हमला बोल दिया, जो कोल्हापुर में बस गए थे। कोल्हापुर के एक शासक बाबासाहेब महाराज के शासनकाल में राजपुरोहित रघुनाथ शास्त्री पार्वटे ने महल में होने वाले सभी संस्कारों को पौराणिक रीति से संपन्न करने का विचार किया। कहते हैं कि उन्हें ऐसा करते रहने से रोक दिया गया। सन् 1886 में बाबासाहेब का निधन हो गया। सन् 1886 से 1894 तक सभी शासक नाबालिग रहे और राजकाज अंग्रेजों के हाथों में रहा। इस बात का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं

*1. इसके आगे का विवरण राव बहादुर डोंगरे द्वारा संपादित 'सिद्धांत विजय' से लिया गया है।*

*2. डोंगरे, सिद्धांत विजय, प्रस्तावना, पृष्ठ 6*

*3. वही, पृष्ठ 9*

है कि राजपुरोहित ने संस्कारों के लिए कौन-सी रीति अपनाई। सन् 1902 में दिवंगत शाहू महाराज ने राजपुरोहित के लिए आदेश जारी किया कि वह सभी संस्कार वैदिक रीति से संपन्न कराएं। पुरोहित ने इससे मना कर दिया और इन्हें पौराणिक रीति से ही संपन्न करने पर अड़ा रहा, जिससे यही संकेत निकलता था कि कोल्हापुर के शासक शूद्र थे, क्षत्रिय नहीं। इस प्रकरण में करवीर मठ के शंकराचार्य की भूमिका अत्यंत उल्लेखनीय है। इस विवाद के समय गुरु कहलाने वाले इस मठ-प्रमुख ने ब्राह्मणाल्कर नाम का एक चेला बनाया और उसे मठ प्रमुख के सभी अधिकार दे दिए थे। पहले तो गुरु और शिष्य दोनों ही राजपुरोहित के पक्ष में और महाराजा के विरुद्ध थे। बाद में, शिष्य ने महाराजा का पक्ष लिया और उन्हें क्षत्रिय मान लिया। अब भी राजपुरोहित का पक्ष ले रहे गुरु ने शिष्य को निकाल दिया। बाद में, महाराजा ने अपना शंकराचार्य[1] बनाने का प्रयास किया किंतु उसने भी महाराजा का पक्ष नहीं लिया।

शिवाजी को एक क्षत्रिय के रूप में मान्यता नहीं मिली। स्पष्ट है कि यह उन्हें दिया जाने वाला व्यक्तिगत सम्मान नहीं था। यह दर्जा तो उनके परिवार से और उनके वंशजों से संबद्ध था। इस पर तो कोई सवाल ही नहीं कर सकता था। यह दर्जा तो उस सूरत में छिन सकता था जब कोई वंशज विशेष कोई ऐसा कृत्य करता तो इस दर्जे के अनुकूल नहीं होता। सामान्य स्थिति में तो यह छिन नहीं सकता था। शिवाजी के किसी भी वंशज के साथ ऐसा कोई कृत्य नहीं जुड़ा जो क्षत्रिय के दर्जे के प्रतिकूल हो। फिर भी ब्राह्मण लोग उनके दर्जे पर लिए गए निर्णय का खंडन करने को आगे आए।

यह केवल इसलिए संभव हुआ क्योंकि ब्राह्मणों का दावा था कि किसी भी समय किसी भी हिंदू का दर्जा बनाने या बिगाड़ने की सामर्थ्य उनके पास थी। वे किसी शूद्र का दर्जा बढ़ाकर उसे क्षत्रिय बना सकते हैं। वे किसी क्षत्रिय का दर्जा घटाकर उसे शूद्र बना सकते हैं। शिवाजी के प्रकरण से यह प्रमाणित हो जाता है कि इस मामले में उनकी संप्रभुता असीम है और उसे कोई चुनौती भी नहीं दे सकता।

बेशक, ये उदाहरण[2] केवल बम्बई प्रेसीडेंसी से लिए गए हैं। किंतु इनसे जो सिद्धांत सामने आते हैं वे स्पष्ट हैं और उनका प्रचलन आम है। ये सिद्धांत हैं कि—

1. उपनयन संस्कार संपन्न करने का अधिकार केवल ब्राह्मण को है। शिवाजी, प्रतापसिंह, कायस्थों, पांचालों अथवा पालशे में से कोई भी यह नहीं चाहता था कि यह संस्कार कोई गैर-ब्राह्मण करे। केवल एक बार ऐसा हुआ है जब कायस्थों ने अपने संस्कार कायस्थों से करवाने का संकल्प किया। किंतु उनका यह संकल्प कागजी ही रह गया।
2. ब्राह्मण को यह कहने का अधिकार है कि वह किसका उपनयन करेगा और किसका नहीं। दूसरे शब्दों में, यह तय करने का पूरा अधिकार ब्राह्मण को ही है कि कोई समुदाय उपनयन का अधिकारी है या नहीं।

---

*1. इस शंकराचार्य को डॉ. कुर्तकोटि के नाम से जाना जाता है।*

*2. इनके विस्तृत विवरणों के लिए, देखिए ग्राम्यांचा इतिहास, के.एस. ठाकरे, 1919 में प्रकाशित।*

3. जरूरी नहीं है कि उपनयन संस्कार करने के लिए ब्राह्मण की सहमति ईमानदारी के आधार पर ही हो। इसे पैसों से भी खरीदा जा सकता है। शिवाजी ने ब्राह्मण गागाभट्ट का समर्थन पैसा देकर ही हासिल किया था।
4. जरूरी नहीं है कि ब्राह्मणों द्वारा उपनयन की मनाही कानूनी अथवा धार्मिक आधार पर ही हो। इसका आधार विशुद्ध राजनीतिक भी हो सकता है। ब्राह्मणों द्वारा कायस्थों के उपनयन से इनकार करना दोनों के बीच शत्रुता का परिणाम था।
5. यदि कोई ब्राह्मण उपनयन संस्कार करने से मना कर देता है तो उसके खिलाफ अपील का अधिकार केवल विद्वत्परिषद को है और विद्वत्परिषद का सदस्य केवल ब्राह्मण ही हो सकता है।

उपर्युक्त चर्चा से सबको यह स्पष्ट हो ही जाना चाहिए कि ब्राह्मणों को उपनयन संस्कार से मना करने का अधिकार था। ब्राह्मणों के पास जो अधिकार थे और उनका जो मकसद था, उसे देखते हुए इसमें कुछ भी असामान्य नहीं है कि उन्होंने इसका इस्तेमाल शूद्रों के खिलाफ किया।

अध्याय : ग्यारह

# समझौते की कहानी

अब तक मैंने इन बातों को सिद्ध करने का प्रयास किया है कि–

(1) भारतीय-आर्यों के समाज में शूद्रों को दूसरे से चौथे वर्ण में पहुंचाने वाले ब्राह्मण ही थे।

(2) ब्राह्मणों ने शूद्रों को अवनत करने की यह युक्ति अपनाई कि उन्हें उपनयन के लाभ से वंचित कर दिया।

(3) ब्राह्मणों ने शूद्रों का दर्जा बदले की भावना से गिराया क्योंकि वे शूद्र राजाओं के हाथों अपने अपमान, उत्पीड़न और अत्याचार से त्रस्त थे।

यह सब बिलकुल साफ है, लेकिन कुछ लोग फिर भी ऐसे होंगे जो इस तरह के सवाल कर सकते हैं कि–

(1) कुछेक राजाओं के साथ झगड़ा होने के कारण ब्राह्मण लोग पूरे शूद्र समुदाय के शत्रु क्यों होंगे?

(2) क्या यह इतनी अधिक भड़काऊ स्थिति थी कि उससे घृणा की भावना और प्रतिशोध की इच्छा पैदा हो जाती?

(3) क्या दोनों पक्षों में मेल या समझौता नहीं हुआ? और अगर हुआ, तो ब्राह्मणों के लिए शूद्रों को अवनत करने का अवसर ही कहां था।

(4) शूद्रों ने इस अवनति को कैसे सहा?

मैं मानता हूं कि ये सवाल इतने दमदार और ठोस हैं कि इन पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत है। यह उचित ही होगा कि इनका जवाब दिया जाए।

## I

कुछेक राजाओं के साथ झगड़ा होने के कारण ब्राह्मण पूरे शूद्र समुदाय को अवनत करने का प्रवास क्यों करेंगे, यह सवाल केवल प्रासंगिक ही नहीं अत्यंत उचित भी है। बहरहाल, यदि इन दो बातों को ध्यान में रखा जाए तो इस सवाल का जवाब देने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

पहली बात तो यह कि इस पुस्तक के नौवें अध्याय में ब्राह्मणों और शूद्र राजाओं के बीच जिन टकरावों का वर्णन किया गया है, वे व्यक्तिगत लगते हुए भी व्यक्तिगत टकराव नहीं थे। जहां तक ब्राह्मणों की बात है, तो उनके पक्ष में तो पूरा वर्ग ही संलिप्त था। एक वसिष्ठ के प्रसंग को छोड़ दें, तो अन्य सभी प्रसंग समस्त ब्राह्मणों से सम्बंधित हैं। राजाओं के पक्ष में, यह सच है कि प्रसंगों में ब्राह्मणों के साथ टकराव के संदर्भ में व्यक्ति के रूप

में राजाओं की संलिप्तता का उल्लेख हुआ है। किंतु हमें यह नहीं भूलना होगा कि वे सभी राजागण सुदास के ही वंश के थे।

जहां तक सुदास का सम्बंध है, तो यहां टकराव ब्राह्मणों क्षत्रियों के शूद्र कुल के बीच था। इस बारे में संदेह की गुंजाइश ही नहीं है। हमारे पास इस बात के कोई सीधे प्रमाण नहीं हैं कि अन्य आक्रामक राजा भी क्षत्रियों के शूद्र कुल के थे। किंतु हमारे पास अन्य साक्ष्य हैं जिनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वे सुदास के वंश के ही थे।

निम्नांकित उस वंशावली पर ध्यान दें जो महाभारत के आदि पर्व से ली गई है।[1]

ब्राह्मणों से टकराने वाले क्षत्रिय राजाओं के आपसी रिश्तों से इस विषय पर कुछ रोचक तथ्यों की जानकारी मिलती है। पुरुरवा[2] तो इला का पुत्र और मनु वैवस्वत का पौत्र है। नहुष[3] जो है वह पुरुरवा का पौत्र है। निमि[4] पुत्र है इक्ष्वाकु का, जो मनु वैवस्वत का पुत्र है। इक्ष्वाकु के वंश की 28वीं पीढ़ी में त्रिशंकु[5] है। सुदास[6] का पूर्वज इक्ष्वाकु है, और वह सुदास उसकी 50वीं पीढ़ी का है। वेण[7] पुत्र है मनु वैवस्वत का। इन सभी का दावा मनु का वंशज होने का रहा, कुछ ने मनु का वंशज होने का दावा किया तो कुछ ने इक्ष्वाकु का। मनु और इक्ष्वाकु के वंशज होने के नाते, यह तर्क दिया जा सकता है कि वे सभी सुदास के नातेदार थे। सुदास क्योंकि शूद्र था, इसलिए इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि ये सभी राजा शूद्र समूह से थे।

हमारे पास इसके सीधे प्रमाण तो नहीं हैं, फिर भी यह मानने में कुछ भी अस्वाभाविक नहीं होगा कि ब्राह्मणों के साथ इन टकरावों में केवल कुछेक शूद्र राजा ही नहीं पूरा का पूरा शूद्र समुदाय ही संलिप्त था। हमें यह याद रखना होगा कि

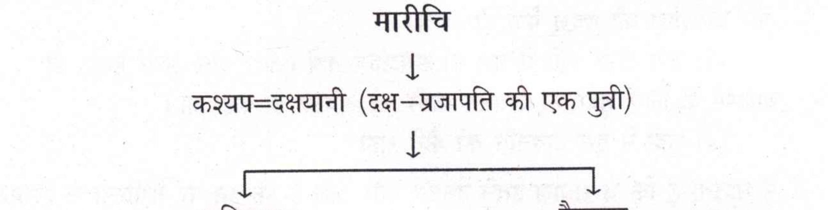


1. म्यूर, खंड-1, पृष्ठ 126
2. वही, पृष्ठ 126
3. वही, पृष्ठ 307
4. वही, पृष्ठ 316
5. वही, पृष्ठ 362
6. वही, पृष्ठ 362
7. सुदास के पिता दिवोदास को ऋग्वेद में पुरुवंशियों का राजा बताया गया है और पुरुवंशियों को इक्ष्वाकु वंशी बताया गया है।

यह टकराव अत्यंत प्राचीन काल में हुआ जब जीवन में चिंतन और कर्म के स्तर पर जनजातीयता होती थी, और जब नियम यह था कि जनजाति अथवा कबीले के एक व्यक्ति द्वारा किए गए कर्म को समूची जनजाति द्वारा किया हुआ माना जाता था। सभी प्राचीन समाजों में इकाई कबीला (जनजाति) अथवा समुदाय ही होता था, व्यक्ति नहीं, और इसके परिणाम-स्वरूप व्यक्ति का अपराध समुदाय का अपराध होता था और समुदाय का अपराध उस समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति का अपराध होता था। इस तथ्य को ध्यान में रखें तो यह कहना स्वाभाविक होगा कि ब्राह्मणों ने अपनी घृणा को आक्रामक राजाओं तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि पूरे शूद्र समुदाय से ही घृणा की और उपनयन के प्रतिबंध को सभी शूद्रों पर लागू किया।

## II

भड़काने वाले कारण क्या पर्याप्त थे, इस विषय में किसी विवाद की गुंजाइश नहीं है। ताव दोनों ही पक्ष खाए होंगे। दोनों ही पक्षों में स्थिति के विस्फोटक होने के लिए पर्याप्त सामग्री थी।

ब्राह्मणों की बात करें, तो यह स्पष्ट है कि समाज में श्रेष्ठता और विशेषाधिकारों के प्रति उनका दावा असहनीय हो चला था।

ब्राह्मणों के दावों की सूची[1] इस प्रकार है–

(i) ब्राह्मणों को केवल उनके जन्म के आधार पर सभी वर्णों का गुरु माना जाना चाहिए।

(ii) ब्राह्मण को ही यह तय करने का अधिकार है कि अन्य सभी वर्णों के कर्तव्य क्या होंगे, उनके लिए कैसा आचरण करना उचित होगा और उनकी आजीविका का साधन क्या होना चाहिए; और अन्य वर्णों को उनके निर्देशों का पालन करना चाहिए और राजा को इन निर्देशों के अनुसार ही शासन करना चाहिए।

(iii) ब्राह्मण पर राजा का अधिकार नहीं चल सकता। राजा ब्राह्मणों को छोड़ और सभी का शासक था।

(iv) ब्राह्मण को कोड़े नहीं लगाए जा सकते; उसे बेड़ियों में नहीं जकड़ा जा सकता; उस पर जुर्माना नहीं लगाया जा सकता; उसे निर्वासित नहीं किया जा सकता; उसकी निंदा नहीं की जा सकती; और उसका बहिष्कार नहीं किया जा सकता।

(v) श्रोतिय (वेद ज्ञाता ब्राह्मण) पर कर (टैक्स) नहीं लगाए जा सकते।

(vi) यदि ब्राह्मण को खजाना मिल जाए तो उस पूरे खजाने पर उस ब्राह्मण का दावा ही होगा। यदि राजा को यह खज़ाना मिले तो उसे इसका आधा ब्राह्मण को देना होगा।

---

*1. यह सार काणे के 'धर्म शास्त्र', खंड-2 (1), पृष्ठ 138-153 में दी गई सूची पर आधारित है।*

(vii) यदि किसी ब्राह्मण की मृत्यु हो जाए और उसका कोई वारिस नहीं हो तो उसकी संपत्ति राजा को नहीं मिलेगी बल्कि श्रोतियों अथवा ब्राह्मणों में बांट दी जाएगी।

(viii) यदि राजा को सड़क पर कोई कोई श्रोतिय अथवा ब्राह्मण मिल जाए तो राजा को उसके लिए रास्ता छोड़ देना चाहिए।

(ix) सबसे पहले ब्राह्मण को प्रमाण किया जाए।

(x) ब्राह्मण का शरीर पवित्र होता है। हत्या का दोषी पाए जाने पर भी उसे मृत्यु दंड नहीं दिया जा सकता।

(xi) ब्राह्मण को मारने की धमकी देना, अथवा उसे मारना अथवा उसके शरीर से खून बहाना अपराध है।

(xii) कुछ अपराधों के लिए ब्राह्मणों को अन्य वर्णों की अपेक्षा कम दंड दिया जाएगा।

(xiii) जहां अभियोगी ब्राह्मण न हो वहां राजा किसी ब्राह्मण को गवाह के तौर पर नहीं बुलाएगा।

(xiv) यदि किसी स्त्री के दस पूर्व पति हों जो ब्राह्मण नहीं हों और वह किसी ब्राह्मण से विवाह कर ले तो वही अकेला उसका पति होगा कोई राजन्य अथवा वैश्य नहीं जो उसका पति रहा है।[1]

ब्राह्मणों के इन दावों पर विचार करने के बाद काणे कहते हैं–[2]

ब्राह्मणों को प्रदत्त अन्य विशेषाधिकार इस प्रकार हैं–

भिक्षाटन के उद्देश्य से अन्य लोगों के घरों में बेरोक-टोक आना-जाना; ईंधन, फूल, जल और अन्य सामग्री एकत्र करने का अधिकार, और इसे चोरी नहीं समझा जाएगा; दूसरों की पत्नियों से बात-चीत का अधिकार, और कोई भी व्यक्ति उन्हें बात करने से नहीं रोकेगा; बिना भाड़ा दिए, नाव से नदी पार करने का अधिकार, और दूसरों से पहले दूसरे तट पर पहुंचने का अधिकार। व्यापार करते और नाव का प्रयोग करते समय उन्हें कोई चुंगी नहीं देनी होगी। यात्रा के दौरान कोई ब्राह्मण थक जाए और उसके पास खाने का कुछ न हो, तो दो गन्ने या दो कंदमूल ले लेने को उसकी गलती नहीं माना जाएगा।''

निस्संदेह, समय बीतने के साथ इन विशेषाधिकारों में बढ़ोत्तरी हुई है, और यह कहना कठिन है कि जब ये टकराव चल रहे थे तो इनमें से कौन-कौन-से विशेषाधिकार निहित

1. *काणे ने संख्या (xiv) का उल्लेख नहीं किया है, किंतु अथर्ववेद 5, 17.8-9 में इसका उल्लेख है; देखिए म्यूर खंड-1, पृष्ठ 280*
2. *काणे ने संख्या (xiv) का उल्लेख नहीं किया है, किंतु अथर्ववेद 5, 17.8-9 में इसका उल्लेख है; देखिए म्यूर खंड-1, पृष्ठ 153-154*

अधिकारों का रूप ले चुके थे। किंतु इसमें संदेह नहीं कि (i), (ii), (iii), (viii) और (xiv) जैसे कुछ सर्वाधिक अरुचिकर विशेषाधिकार तब अस्तित्व में आ चुके थे। ये किसी भी शालीन और स्वाभिमानी व्यक्ति समूह का गुस्सा भड़काने के लिए काफी थे।

क्षत्रिय राजाओं की बात करें, तो उनसे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती थी कि वे इन स्थितियों को चुपचाप सह लेंगे। कैसे सह सकते थे वे? यह नहीं भूलना चाहिए कि ब्राह्मणों से टकराने वाले अधिकांश क्षत्रिय राजा सूर्यवंशी थे।[1] ज्ञान, अभिज्ञान और युद्ध भावना के मामले में वे चंद्रवंशी क्षत्रियों से भिन्न थे। सूर्यवंशी क्षत्रिय बहादुर लोग थे, जबकि चंद्रवंशी क्षत्रियों में शौर्य और स्वाभिमान का अभाव था। जहां सूर्यवंशी क्षत्रियों ने ब्राह्मणों को चुनौती दी, वहीं चंद्रवंशियों ने उनके आगे समर्पण कर दिया और उनके गुलाम बन गए। हुआ वैसा ही जैसा होना चाहिए था। क्योंकि जहां चंद्रवंशी क्षत्रियों में ज्ञान का अभाव था, वहीं सूर्यवंशी क्षत्रिय ज्ञान के मामले में न केवल ब्राह्मणों के बराबर थे, बल्कि उनसे भी आगे थे। उनमें से कई तो वैदिक मंत्रों के रचनाकार थे और राजर्षि के रूप में विख्यात थे। यह बात उन क्षत्रियों के बारे में और भी सच थी जिनका टकराव ब्राह्मणों से हुआ।

ऋग्वेद की अनुक्रमणिका के अनुसार और परंपरा के अनुसार भी निम्नलिखित मंत्रों की रचना निम्नलिखित राजाओं द्वारा बताई जाती है–[2]

> "6, 15 : वीतहव्य (अथवा भारद्वाज); 10, 9 : सिंधुद्वीप, अंबरीष का पुत्र (अथवा त्रिसिरस, त्वष्त्रि का पुत्र); 10, 75 : सिंधुक्षित, प्रियमेध का पुत्र; 10, 133 : सुदास, पिजवन का पुत्र; 10, 134 : मंधात्री; युवानास्व का पुत्र; 10, 179 : शिवि, उसीनार का पुत्र, प्रतार्दन, दिवोदास का पुत्र और काशी का राजा, और वसुमानस, रोहिताश्व का पुत्र, और 10, 148 : पृथि वौम्य।"

मत्स्य पुराण में भी ऋग्वेद के मंत्रों के रचनाकारों की सूची दी गई है जो इस प्रकार है–[3]

> "भृगु, कश्य, प्रचेत, दधीच, आत्मावत, और्व, जमदाग्नि, कृपा, शारदवत, अर्ष्टिसेन, युद्धजीत, वीतहव्य, सुवर्च, वैण, पृथु, दिवोदास, ब्रह्मस्व, गृत्स, शौनक–ये उन्नीस भृगु हैं, मंत्रों के रचनाकार। अंगिरा, वेधस, भारद्वाज, भालंदन, रीतबद्ध, गर्ग, सिति, संकृति, गुरुधीर, मंधात्री, अंबरीष, युवनास्व, पुरुकृत्स, प्रद्युम्न, श्रावणस्य, अजामिध, हर्यश्व, तक्षप, कवि, पृश्दश्व, विरूप, कण्व, मुद्गल, उतथ्य, शारदवत, वाजश्रव, अपस्य, सुवित्त, वामदेव, अजित, बृहदुक्थ, दीर्घतमस, कक्षिवत का नाम तैंतीस प्रमुख अंगिरागण के रूप में अभिलिखित हैं। ये सभी मंत्रों के रचनाकार थे। अब कश्यपों की बात... विश्वामित्र, गाधि का पुत्र, देवराज, बल, मधुछंद, ऋषभ, अधमर्षण, अष्टक, लोहित, भृतकील, वेदास्रव, देवरत, पूरणश्व, धनंजय, गौरवशाली मिथिला, सलंकायन–ये तेरह भक्त और

---

*1. केवल पुरुरवा गण और नहुष ही चंद्रवंशी क्षत्रिय हैं।*

*2. म्यूर, खंड-1, पृष्ठ 268*     *3. वही, पृष्ठ 279*

प्रमुख कुशिक हुए हैं। मनु वैवस्वत, इड़ा, राजा पुरुरवा, ये क्षत्रियों में प्रमुख मंत्रोच्चारक हुए। भालंद, वंध और संस्कृति–इन्हें हमेशा तीन प्रमुख वैश्यों के रूप में जाना जाएगा जिन्होंने मंत्रों की रचना की। इस प्रकार इक्यानवे व्यक्ति घोषित हैं जिनसे मंत्रों की उत्पत्ति हुई–ब्राह्म, क्षत्रिय और वैश्य।

वैदिक मंत्रों के रचनाकारों की सूची में केवल अनेक क्षत्रियों के नाम ही नहीं हैं, ऐसे अनेक क्षत्रियों के नाम भी हैं जिनका टकराव ब्राह्मणों से हुआ था। क्षत्रिय तो वैदिक मंत्र लिखने वालों में सबसे आगे थे। सर्वाधिक प्रसिद्ध वैदिक मंत्र, अर्थात गायत्री मंत्र, विश्वामित्र की रचना है जो एक क्षत्रिय थे। ऐसे समर्थ क्षत्रियों के लिए यह असंभव था कि वे ब्राह्मणों की यह चुनौती स्वीकार नहीं करते।

उनका अभिमान उनके शौर्य और उनके ज्ञान की देन थी, और उनका यह अभिमान ब्राह्मणों के दावों से अवश्य ही इतना अधिक आहत हुआ होगा कि जब उन्होंने ब्राह्मणों की चुनौती को स्वीकारा तो फिर उसे अदम्य भावना से ही लिया। उन्होंने ब्राह्मणों का कचूमर निकाल दिया। वेण ने उन्हें विवश कर दिया कि वे उसके सिवाय किसी और देवता की पूजा न करें; और पुरुरवा गण ने उनका पैसा लूट लिया। नहुष ने उन्हें अपने रथ में जोता और उसे पूरे नगर में खिंचवाया। निमि ने कुल पुरोहित के इस अनन्य और पुश्तैनी अधिकार का ही उल्लंघन कर दिया कि कुल (परिवार) के सारे अनुष्ठान-संस्कार वही करेगा, और सुदास तो इस हद तक चला गया कि उसने अपने पूर्व कुल पुरोहित वसिष्ठ के पुत्र को जिंदा जला दिया। निश्चय ही, ब्राह्मणों को भड़काने का इससे बड़ा कारण और क्या हो सकता था, जिसके चलते उन्होंने शूद्रों से बदला लेने की ठानी।

## III

ब्राह्मणों और शूद्रों के बीच संभावित समझौते की बात करें, तो निस्संदेह कुछ साक्ष्य हैं जिन पर कुछ लोग निर्भर हो सकते हैं। इस साक्ष्य के महत्त्व पर अपने विचार व्यक्त करने से पहले, इस ओर ध्यान आकर्षित करना वांछनीय होगा। ये साक्ष्य उन कहानियों के रूप में हैं जो महाभारत और पुराणों में बिखरी पड़ी हैं।

समझौते की पहली कहानी दो जनजातियों भरत और तृत्सु की है जिनसे क्रमशः विश्वामित्र और वसिष्ठ सम्बंधित थे। भरत जनजाति के लोग वसिष्ठ अथवा तृत्सु जनजाति के शत्रु थे, यह तो ऋग्वेद से ही स्पष्ट है जिसमें कहा गया है–[1]

> 3, 53.24–''हे इंद्र! ये भरतवंशी तो वसिष्ठ से दूर होना चाहते हैं, उससे मिलना नहीं चाहते।''

उनके समझौते की कहानी महाभारत के आदि पर्व में मिलती है[2] और यह इस प्रकार है–

> ''और उनके शत्रुओं की सेनाओं ने भरतवंशियों को भी मारा। चतुरंगी सेना

1. म्यूर, खंड-1, पृष्ठ 354    2. वही, पृष्ठ 361

से पृथ्वी को कंपाते हुए, पांचाल्य प्रमुख ने तेजी से पृथ्वी को जीत लिया और उस पर धावा बोल पूरी दस सेनाओं की सहायता से उसे पराजित कर दिया। तब राजा संवरण अपनी पत्नियों, मंत्रियों, पुत्रों और मित्रों के साथ भाग खड़ा हुआ और सिंधु नदी के तट पर एक पर्वत के निकट एक देश में रहने लगा। वहां भरतवंशियों ने एक गढ़ में शरण ली और लंबे समय तक वहां निवास किया। जब वे वहां एक हजार वर्षों से रह रहे थे, तो पूज्य वसिष्ठ ऋषि उनके पास आए। भरतवंशियों ने बाहर आकर उनसे भेंट की और उन्हें दंडवत प्रणाम किया, और उन्होंने ऋषि के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए अर्घ्य अर्पित किया। जब ऋषिवर बैठ गए, तो स्वयं राजा ने उनसे कहा, 'आप हमारे पुरोहित बनें; हम प्रयास करें कि मेरा राज्य मुझे वापस मिल जाए।' वशिष्ठ ने भरत का पुरोहित बनना स्वीकार कर लिया, और जैसा कि हमने सुना है, पुरु के वंशज को पूरी क्षत्रिय जाति का सम्राट बना दिया और उसे पूरी पृथ्वी पर आधिपत्य दे दिया। उसने उस भव्य नगर पर आधिपत्य जमा लिया जहां पहले भरत रहते थे, और सभी राजाओं को उसके अधीन कर दिया।''

दूसरी कहानी भृगुवंशियों और क्षत्रिय राजा कृतिवीर्य के टकराव और उनके समझौते से सम्बंधित है। यह कथा महाभारत के आदि पर्व में मिलती है–[1]

''कृतवीर्य नाम का एक राजा था, जिसकी उदारता से उसके पुरोहित और वेदों के ज्ञाता भृगुवंशियों ने खूब धन और गायें एकत्र कर ली थीं। उसके स्वर्ग जाने के बाद, उसके वंशजों को धन का अभाव हो गया और वे धन मांगने के उद्देश्य से भृगुओं के पास आए जिनके पास धन होने की जानकारी उन्हें थी। कुछ भृगुवंशियों ने अपना धन जमीन में गाड़ दिया था, कुछ ने क्षत्रियों के भय से उसे ब्राह्मणों को दे दिया था, जबकि अन्य ने उन्हें उनकी इच्छानुसार दे दिया। किंतु हुआ यह कि एक क्षत्रिय को जमीन खोदते समय कुछ धन एक भृगु के घर में गड़ा दिखाई दे गया। तब क्षत्रिय जमा हो गए और उन्होंने इस खजाने को देखा, और उन्होंने क्रोध में आकर सारे भृगुवंशियों को मार डाला। उन्होंने घृणा के पात्र इन भृगु गण के गर्भस्थ शिशुओं तक की हत्या कर दी। किंतु, उनकी विधवाएं हिमालय पर्वत की ओर भाग गईं। उनमें से एक ने अपने अजन्मे शिशु को अपनी जांघ में छिपा लिया। क्षत्रियों को एक ब्राह्मणी मुखबिर से इसके बारे में पता चल गया और उन्होंने उसे मारना चाहा, किंतु वह अपनी मां की जांघ से इतनी चमक के साथ बाहर आया कि उसने उन क्षत्रियों को अंधा कर दिया। कुछ समय तक पर्वतों में भटकने के बाद, उन्होंने उस शिशु की मां से विनम्र निवेदन किया कि उनकी दृष्टि लौटा दी जाए। किंतु उसने उनसे कहा कि वे

1. म्यूर, खंड-1, पृष्ठ 448-449

उसके अद्भुत पुत्र और्व से कहें जिसमें छह वेदांगों सहित संपूर्ण वेद प्रवेश कर गया था, क्योंकि उसी ने उन्हें अंधा किया था और वही उनकी दृष्टि वापस दे सकता था। इसलिए, उन्होंने उससे निवेदन किया और उनकी दृष्टि उन्हें वापस मिल गई। किंतु, और्व ने भृगुओं के वध का बदला लेने के उद्देश्य से सभी प्राणियों का नाश करने का विचार किया और ऐसा तप किया कि देवता, असुर और मनुष्य सभी आतंकित हो गए। किंतु, उसके पितृ स्वयं प्रकट हुए और उन्होंने यह कहकर उसे उसके उद्देश्य से हटाने का प्रयास किया कि उन्हें क्षत्रियों से बदला लेने की कोई इच्छा नहीं है। किंतु, भृगुओं ने दुर्बलता के कारण क्षत्रियों द्वारा किए गए नरसंहार की अनदेखी नहीं की। 'जब हम बुढ़ापे से त्रस्त हो गए तो हमने स्वयं ही उनके हाथों मारे जाने की इच्छा व्यक्त की थी। जो धन किसी ने एक भृगु के घर में गाड़ा था, वह वहां घृणा उपजाने के उद्देश्य से उन लोगों द्वारा रखा गया था जो क्षत्रियों को भड़काना चाहते थे। क्योंकि हम तो स्वर्ग जाने के इच्छुक थे, तो हमें धन का क्या करना था?' उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने यह युक्ति इसलिए सोची क्योंकि वे आत्महत्या का अपराध नहीं करना चाहते थे। अंत में उन्होंने और्व से आग्रह किया कि वह अपने क्रोध पर नियंत्रण करे और जो पाप वह करने की सोच रहा है उसे न करे। उन्होंने कहा, 'हे पुत्र, क्षत्रियों का नाश मत करो, न ही सात लोकों का। अपने क्रोध का शमन करो जो तप की शक्ति को व्यर्थ कर देता है।' किंतु, और्व ने उत्तर दिया कि वह अपनी धमकी को पूरा किए बिना नहीं रह सकता। उसने कहा कि यदि उसका क्रोध किसी और वस्तु पर नहीं उतरा तो वह उसे ही भस्म कर देगा। इसलिए उसने अपने पितरों द्वारा दयालुता दिखाने की बात के विरोध में तर्क रखा। किंतु, उसके पितरों ने उसे मनाया कि वह अपने क्रोध को समुद्र में उतार दे, और इस प्रकार उसकी धमकी पूरी हो जाएगी। इस प्रकार वह वेद जानने वालों के लिए हयशिरस हो गया जो अग्नि उगलता है और जल पी जाता है।''

तीसरी कहानी हैहयों के राजा कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन और परशुराम के बीच टकराव और समझौते की है। यह कथा महाभारत के वन पर्व में मिलती है, और यह इस प्रकार है–[1]

''हमें बताया गया है कि हैहयों के राजा, कृतवीर्य के पुत्र, अर्जुन की हजार भुजाएं थीं। उसे दत्तात्रेय से एक सोने का वायुयान मिला था, जिसकी गति अदम्य थी। इस प्रकार, उसने देवताओं, यक्षों, ऋषियों का दमन किया, और समस्त प्राणियों को कुचला। देवताओं और ऋषियों ने विष्णु से निवेदन किया और विष्णु ने अर्जुन द्वारा अपमानित किए जा चुके इंद्र के साथ मिलकर उसे

1. म्यूर, खंड-1, पृष्ठ 449-454

नष्ट करने की युक्ति बनाई। कथा के अनुसार, उस समय कान्यकुब्ज (कन्नौज) का राजा गाधि रहता था जिसकी सत्यवती नाम की एक पुत्री थी। फिर उपर्युक्त रीति से ही ऋषि ऋचीक के साथ इस राजकुमारी के विवाह और जमदाग्नि के जन्म का वर्णन किया गया है। जमदाग्नि और सत्यवती के पांच पुत्र थे, जिनमें सबसे छोटा परशुराम था। उसने अपने पिता के आदेश पर अपनी मां को मार डाला (जो अपवित्र वासना के वशीभूत हो अपनी पवित्र अवस्था से गिर गई थी)। उससे पहले उसके चार बड़े भाई मां की हत्या करने से मना कर चुके थे, और पिता के श्राप से अपनी प्रज्ञा खो चुके थे। किंतु, परशुराम की इच्छा पर उसके पिता ने उसकी मां को पुनर्जीवित कर दिया और उसके भाइयों की प्रज्ञा लौटा दी; और उसे भी हत्या के अपराध से मुक्त कर दिया गया और पिता से अजेय और दीर्घायु होने का वरदान मिला। अब उसका इतिवृत्त राजा अर्जुन (अथवा कृतवीर्य) से जुड़ना शुरू होता है। अर्जुन तब जमदाग्नि के आश्रम में आया था और उसकी पत्नी ने उसका सादर स्वागत किया था; किंतु उसने ऋषि की बलि की गाय चुराकर और उसके ऊंचे वृक्ष गिराकर यह सम्मान खो दिया था। परशुराम को जब इस हिंसा का पता चला तो वह क्रोधित हो गया और उसने अर्जुन पर वार कर उसकी हजार भुजाएं काट दीं और उसका वध कर दिया। बदले में, अर्जुन के पुत्र ने परशुराम की अनुपस्थिति में शांतचित्त ऋषि जमदाग्नि को मार डाला। अपने पिता की मृत्यु से क्रोधित परशुराम ने पृथ्वी से क्षत्रियों का नाम-निशान मिटा देने की शपथ ली, अपने हथियार उठाए और अर्जुन के सभी पुत्रों और पौत्रों को और हजारों हैहयों को मार, उसने धरती को रक्तरंजित कर दिया। धरती से इस प्रकार क्षत्रियों का नाश करने के बाद उसमें गहन करुणा का भाव जागा और उसने वन गमन कर दिया। कुछ हजार वर्ष बीत जाने के बाद, रैम्य के पुत्र और विश्वामित्र के पौत्र परावसु ने एक सार्वजनिक सभा में परशुराम पर ताना कस दिया, 'क्या ये प्रतर्दन और अन्य शीलवान व्यक्ति जो ययाति के नगर में यज्ञ के लिए एकत्र हुए हैं—क्या ये क्षत्रिय नहीं हैं? तुम अपनी धमकी को पूरी करने में असफल रहे हो, और सभा में व्यर्थ ही डींग हांकते हो। तुम उन वीर क्षत्रियों के भय से पर्वतों में चले गए हो, जबकि धरती पर उनका वंश फिर से फल-फूल रहा है।' ये शब्द सुनकर, परशुराम ने हथियार उठा लिए। पहले जो सैकड़ों क्षत्रिय बचे रह गए थे, वे अब शक्तिशाली राजा बन गए थे। किंतु, अब परशुराम ने उन सबको मौत के घाट उतार दिया और असंख्य नवजात शिशुओं को भी। किंतु, कुछ को उनकी माताओं ने बचा लिया। पृथ्वी पर से इक्कीस बार क्षत्रियों का सफाया करने के बाद, परशुराम ने उसे एक अश्वमेघ की समाप्ति पर दक्षिणा के रूप में कश्यप को दे दिया।''

टकराव की कथा कहने के बाद, महाभारत के लेखक ने समझौते की कहानी इस प्रकार कही है–[1]

> "इक्कीस बार पृथ्वी पर क्षत्रियों का नाश करने के बाद, जमदाग्नि का पुत्र सर्वश्रेष्ठ पर्वत महेंद्र पर तप में लीन हो गया। जब वह दुनिया से क्षत्रियों का सफाया कर चुका, तो उनकी विधवाएं उसके पास यह प्रार्थना करने आई कि उन्हें संतान लाभ कराया जाए। समस्त वासना से मुक्त, धर्मालु ब्राह्मणों ने उपयुक्त ऋतुओं में इन स्त्रियों के साथ सहवास किया, और वे गर्भवती हुईं और उन्होंने शूरवीर बालकों और कन्याओं को जन्म दिया जिनसे क्षत्रिय वंश आगे चला। इस प्रकार क्षत्रिय जाति की उत्पत्ति क्षत्रिय महिलाओं की कोख से ब्राह्मणों द्वारा हुई और वे कई गुना हो गए और दीर्घायु को प्राप्त हुए। तब ब्राह्मण से नीचे चार जातियों का अभ्युदय हुआ।"

ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच टकरावों और समझौतों के उपर्युक्त उदाहरण उन क्षत्रिय राजाओं से सम्बंधित नहीं है जिनका उल्लेख इतिहास में ब्राह्मणों के विरुद्ध जंग का ऐलान करने वालों के रूप में हुआ है। ब्राह्मणों के साथ उनके समझौतों की कथाओं के उदाहरणों की बात करें,[2] तो सबसे पहली कथा कल्माषपाद की है। कहा जाता है कि वह एक सुदास था।[3] यह कथा महाभारत के आदिपर्व में दी गई है।[4] कहानी के जिस अंश में कल्माषपाद और वसिष्ठ की शत्रुता का वर्णन है उसे हम पहले ही दे चुके हैं।[5] समझौते वाला अंश इस प्रकार है–

> "अनेक पर्वतों और देशों में भ्रमण के बाद वह (वसिष्ठ) घर आया, और उसकी पुत्रवधु, शक्तृ की विधवा[6] उसके पीछे-पीछे आई, जिसकी कोख से उसे वेदोच्चार की ध्वनि सुनाई दी, क्योंकि वह गर्भवती थी, और जन्म लेने पर उसे पराशर का नाम मिला। उसे जब शक्तृ से पता चला कि उसके वंश के चलते रहने की आशा है, तो उसने आगे अपनी हत्या के प्रयासों से स्वयं को बचा कर रखा। किंतु, जब उनका सामना वन में राजा कल्माषपाद से हुआ तो उसने उन दोनों का भक्षण करना चाहा, किंतु तभी वसिष्ठ ने अपने मुख से

---

1. *म्यूर, खंड-1, पृष्ठ 451-452*
2. *मैं इस विषय में निश्चित नहीं हूं कि आगामी प्रसंगों में जिन राजाओं का उल्लेख है वे वही हैं जिनका उल्लेख अध्याय नौ में किया गया है। मैंने उनका उल्लेख इसलिए किया है क्योंकि वे इक्ष्वाकु कुल के हैं।*
3. *मैं इस विषय में निश्चित नहीं हूं कि वह कौन-सा सुदास है। विवरण से तो वह पैजवन सुदास प्रतीत होता है।*
4. *म्यूर, खंड-1, पृष्ठ 415-418*
5. *देखिए, अध्याय 9*
6. *शायद यहां 'शक्ति' होना चाहिए था।*

आग निकाल कर उन्हें बचा लिया, और उस पर अभिषिक्त जल छिड़ककर उसे बारह वर्षों के श्राप से मुक्त कर दिया। तब राजा ने वसिष्ठ से कहा, 'हे ऋषिवर, मैं सुदास हूं, जिसके पुरोहित आप हैं, आपकी प्रसन्नता के लिए मैं क्या कर सकता हूं?' वसिष्ठ ने उत्तर दिया, 'यह जो कुछ भी हुआ, नियति के कारण हुआ है; जाओ, जाकर अपने राज्य पर शासन करो; किंतु, हे सम्राट, ब्राह्मणों की निंदा कभी मत करना।' राजा ने उत्तर में कहा, 'मैं कभी ब्राह्मण प्रवरों की निंदा नहीं करूंगा; किंतु आपके आदेशों का पालन करते हुए मैं आपका सम्मान करूंगा। और इक्ष्वाकुओं के प्रति अपने ऋण से मुक्त होने का साधन चाहिए। आप मुझे मेरी इच्छित संतान दें।' वसिष्ठ ने उसका अनुरोध पूरा करने का वचन दिया। तब वे अयोध्या लौट गए। और राजगद्दी का उत्तराधिकारी उत्पन्न करने की राजा की प्रार्थना पर, रानी[1] उससे गर्भवती हुई, और बारह वर्ष पश्चात उसने एक पुत्र को जन्म दिया।

दूसरा उदाहरण महाभारत के अनुशासन पर्व में मिलता है–[2]

"उस समय इक्ष्वाकु वंश में जन्मे राजा सौदास ने अपने कुल पुरोहित, शाश्वत संत, ऋषि प्रवर, संपूर्ण विश्व का भ्रमण करने में समर्थ, पवित्र ज्ञान के भंडार, वसिष्ठ को प्रणाम करने के पश्चात उससे पूछा, 'हे पूजनीय और निष्पाप ऋषि, तीनों लोकों में सर्वाधिक पवित्र वस्तु किसे कहा गया है, जिसके माध्यम से व्यक्ति सर्वोच्च पुण्य प्राप्त कर सकता है?' उत्तर में वसिष्ठ ने गाय के अदभुत गुणों का बखान किया और उसे 'सर्वलोक व्यापी और भूत तथा भविष्य की माता' बताया। महान राजा ने ऋषि के इन शब्दों को अति श्रेष्ठ मानते हुए, ब्राह्मणों को गायों का महादान किया और लोकों की प्राप्ति की। इस प्रकार यहां हम एक संत के रूप में सौदास के पुत्र की प्रशंसा होते देखते हैं।"

तीसरा उदाहरण समझौते से सम्बंधित है जिसमें सौदास के वंशजों का उल्लेख है। महाभारत के शांति पर्व में यह उदाहरण मिलता है–

"धरती पर आधिपत्य कर लेने के पश्चात, कश्यप ने इसे ब्राह्मणों का निवास बना दिया और स्वयं वन में चला गया। तब शूद्रों और वैश्यों ने ब्राह्मणों की पत्नियों के साथ दुर्व्यवहार शुरू कर दिया, और शासन न होने के कारण शक्तिशाली लोग निर्बलों का दमन करने लगे, और कोई भी व्यक्ति संपत्ति का स्वामी नहीं रहा। इस अव्यवस्था के फलस्वरूप धरती दुष्टों से त्रस्त हो गई, और क्षत्रियों के संरक्षण से वंचित न्याय के रक्षक अधोलोक में चले गए। उसे आतंक

---

*1. उसका नाम मदयंती था। अनुशासन पर्व में उसका उल्लेख मित्रसाह की पत्नी के रूप में हुआ है, जो कल्माषपाद का ही दूसरा नाम है–देखिए, म्यूर, खंड-1, पृष्ठ 418, 423 और 514*

*2. म्यूर, खंड-1, पृष्ठ 374*

में इधर-उधर डोलते देख, कश्यप ने उसे अपनी जांघ (उरु) का सहारा दिया। इससे उसका नाम उर्वि पड़ा। तब धरती देवी ने कश्यप को प्रसन्न किया और उससे संरक्षण और एक राजा के लिए निवेदन किया। उसने कहा, 'मैंने स्त्रियों में अनेक क्षत्रियों को संरक्षित किया है, जिनका जन्म हैहय वंश में हुआ है; वे मेरी रक्षा करें। उनमें पुरुवंशी विदूरथ का पुत्र भी है, जिसे पाला रिक्षवत पर्वत पर रीक्षों ने पाला है; वह मेरी रक्षा करे। सौदास का उत्तराधिकारी भी है, जिसे सुहृदय और गौरवशाली पुरोहित पराशर ने संरक्षण दिया है, जिसने एक ब्राह्मण होते हुए भी उसके लिए एक शूद्र के समान सभी निम्न कार्य किए। इसीलिए, इस राजकुमार का नाम सर्वकर्मण पड़ा।' जिन अन्य राजाओं को बचाया गया, उन्हें गिनाते हुए, पृथ्वी ने आगे कहा, 'इन सभी क्षत्रिय वंशजों को विभिन्न स्थानों में सुरक्षित कर दिया गया है, और वे लगातार धोकार और सुनार वर्णों में रह रहे हैं। यदि वे मेरी रक्षा करें, तो मैं अकंपित बनी रहूंगी। उनके पिताओं और पितामहों को राम ने मेरे कारण मार डाला था। इसलिए यह मेरा दायित्व है कि मैं उनका बदला लूं। क्योंकि मैं नहीं चाहती कि मेरी रक्षा सदा (कश्यप जैसा) एक असाधारण व्यक्ति करे, अपितु मैं तो एक साधारण शासक से ही संतुष्ट रहूंगी। (मेरी) इस (इच्छा) को तुरंत पूरा किया जाए।' तब कश्यप ने इन क्षत्रियों को बुलवा भेजा जिनके विषय में पृथ्वी ने कहा था, और उन्हें राजत्व पद पर आसीन किया।''

यह है साक्ष्य। क्या कोई इसे विश्वसनीय मान सकता है? मेरी राय में तो, इस पर विश्वास करना तो दूर, व्यक्ति को इस प्रकार के साक्ष्यों से सावधान रहना चाहिए।

सबसे पहली बात तो यह कि जहां तक क्षत्रियों का पक्ष है, तो समझौते की इन सभी कहानियों का अंत असम्मानजनक शांति में होता है। प्रत्येक प्रकरण में क्षत्रियों को असम्मानजनक ढंग से समर्पण करते दिखाया गया है। भरतवंशियों की बात करें तो वे वसिष्ठ के शत्रु हैं। अचानक देश में अकाल पड़ता है। वे देश छोड़ जाते हैं और उनका राज्य उनके हाथ से चला जाता है। वे अपने चिर शत्रु वसिष्ठ से याचना करते हैं कि वह उनके पुरोहित बन जाएं और उन्हें संकट से बचाएं। भृगुओं और क्षत्रियों की कहानी में भी श्रेय, ब्राह्मणों को ही दिया गया है कि वे अपने अभिमान के कारण नहीं लड़े। हैहय क्षत्रियों और कल्माषपाद जैसे सौदास की कहानी में, यह दिखाया गया है कि क्षत्रियों से समर्पण करवाने के लिए विजेता ब्राह्मणों को उसकी कीमत के तौर पर उनकी औरतें दे दी गई थीं। इन कहानियों को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि इनसे ब्राह्मणों का महिमा-मंडन हो और क्षत्रियों का मान-मर्दन। समझौते की ऐसी गंदी, दूषित, घृणित और दंभपूर्ण कहानियों को कौन वास्तविक ऐतिहासिक तथ्य मान सकता है? ब्राह्मणवाद का कोई समर्थक ही ऐसा कर सकता है।

समझौते के बारे में जो साक्ष्य मिलते हैं उनकी आम प्रकृति ऐसी ही है। ब्राह्मणों और शूद्रों अर्थात सुदास के वंशजों के बीच समझौते के विशेष प्रकरण पर आएं, तो इसके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि इस तरह का कोई समझौता हुआ ही नहीं था। पहले तो इसका खंडन ही नहीं किया जा सकता कि वसिष्ठ के पुत्र, शक्ति अथवा शक्तृ के पुत्र, पराशर ने जब यह सुना कि उसके पिता को किस तरह से मारा गया है—अर्थात उसे शूद्र राजा सुदास ने जिंदा जला दिया है—तो उसने समस्त प्राणियों का आम वध करने की ठान ली। यहां आम वध एक व्यंजना के तौर पर है। इसका अर्थ तो यह निकलता है कि वसिष्ठ ने सुदास के वंशजों अर्थात शूद्रों के विरुद्ध एक आम प्रतिशोध की प्रतिज्ञा की। निस्संदेह, महाभारत में यह कहा गया है कि वसिष्ठ ने पराशरु को रोका और उसे यह बताकर बदला नहीं लेने के लिए मनाया कि जब भृगुओं और क्षत्रियों में टकराव हुआ तो भृगुओं ने अहिंसा अपनाकर ही क्षत्रियों पर विजय प्राप्त की थी। किंतु यह कथा सच नहीं हो सकती, क्योंकि अन्य कहानियों की तरह इसे भी ब्राह्मणों को महिमा-मंडित करने की दृष्टि से तैयार किया गया है।

दूसरी बात यह कि ब्राह्मणों और शूद्रों के बीच कोई भी समझौता न होने के समर्थन में सबसे पक्का प्रमाण शूद्रों के विरुद्ध ब्राह्मणों के विधान में मिलता है। शूद्रों के विरुद्ध बनाए गए नियमों का उल्लेख हम कर ही चुके हैं। उनकी बढ़ोत्तरी और उनकी असाधारण प्रकृति के बारे में भी बताया जा चुका है। करने को बस यह रह गया है कि यह कहा जाए कि काले कानूनों की इस पृष्ठभूमि में समझौते की कोई भी बात पूरे तौर पर अमान्य ही दिखाई देगी। ब्राह्मणों ने शूद्रों को क्षमा करना तो दूर उनकी संतानों को भी बदले की उसी क्रूर भावना से त्रस्त किया। बहुत से लोगों को क्योंकि इसकी कोई जानकारी ही नहीं है, इसलिए चांडाल और निषाद के सम्बंध में कुछ तथ्य बताना उचित होगा।

चांडाल और निषाद मिश्रित विवाहों से उत्पन्न संतानें हैं। निषाद अनुलोम है तो चांडाल प्रतिलोम। अनुलोमों को उपनयन का अधिकार है।[1] किंतु यह एक विलक्षण तथ्य है कि इसका भी अपवाद है। ब्राह्मण पिता और शूद्र माता की संतान निषाद को अनुलोम होते हुए भी उपनयन का अधिकार नहीं है। यह अपवाद क्यों रखा गया, यह जानना भी रोचक है। इसका एकमात्र उत्तर यही दिखाई देता है कि यह मनमाना कृत्य दर असल अपने शत्रु के बच्चों से बदला लेने की कार्रवाई है।

---

*1. निम्नलिखित तालिका के अनुसार अनुलोम छह हैं—*

| ***पिता*** | ***माता*** | ***संतान*** |
|---|---|---|
| *ब्राह्मण* | *क्षत्रिय* | *मूर्धाभिषिक्त* |
| *ब्राह्मण* | *वैश्य* | *अंबष्ट* |
| *ब्राह्मण* | *शूद्र* | *निषाद* |
| *क्षत्रिय* | *वैश्य* | *महिष्य* |
| *क्षत्रिय* | *शूद्र* | *उग्र* |
| *वैश्य* | *शूद्र* | *करण* |

प्रतिलोमों की बात करें तो[1] मनु ने इन सबको सबसे अधिक नीच मनुष्य बताया है। साथ ही, प्रतिलोमों का कलंक सभी पर समान रूप से नहीं लगाया गया है। अधिकारों और विशेषाधिकारों के मामले में, अयोगव और क्षत्तर के साथ अविश्वसनीय रूप में ठीक व्यवहार होता है, जबकि चांडाल को अकथनीय निंदा झेलनी होती है। इस भेदभाव के उदाहरण-स्वरूप मनुस्मृति के इन प्रावधानों का उल्लेख किया जा सकता है–

अयोगव के सम्बंध में मनुस्मृति केवल यह कहती है–

"बढ़ईगीरी एक अयोगव का (पेशा होगा)"–10, 46 क्षत्तर के विषय में मनुस्मृति कहती है।

"बिलों में रहने वाले जानवरों को पकड़ना और मारना क्षत्तर का (पेशा है)"–10, 49

उन्हें बस निम्न व्यवसाय दिए गए हैं।

इसकी तुलना में यह देखें कि चांडाल के विषय में मनुस्मृति क्या कहती है–

"चांडाल और सुअर, मुर्गा और कुत्ता, और रजस्वला स्त्री और हिजड़ा, ये ब्राह्मण को खाते न देखें"–3, 239

"पतित, चांडाल, पुल्कस, मूर्ख, अभिमानी (लोगों), निम्न जाति में जन्मे (लोगों) और अंत्यावसायियों के साथ न बैठें"–4, 79

"चांडाल, रजस्वला स्त्री, पतित, नवप्रसूता, शव और उसे छूने वाला इसे छूने पर स्नान मात्र से ही शुद्ध हो जाता है"–5, 85

"मनु ने कुत्तों द्वारा मारे गए जंगली पशु का मांस, और अन्य मांसभक्षी पशुओं अथवा चांडाल और अन्य दस्युओं द्वारा मारे गए पशु का मांस शुद्ध बताया है"–5, 131

"यदि एक वर्ष में कोई व्यक्ति एकाधिक बार दंडित हो तो उसका दंड, और किसी व्रात्य अथवा चांडाल जाति की स्त्री से सहवास करने वाले का दंड दोगुना होगा"–8, 373

"जो ब्राह्मण मोहवश अपनी जाति की स्त्री होते हुए भी पराई जाति की स्त्री से ये काम कराता है, वह चांडाल के समान माना जाता है"–9, 87

---

*1. गौतम धर्मसूत्र–*

| *पिता* | *माता* | *संतान* |
|---|---|---|
| *शूद्र* | *ब्राह्मण* | *चांडाल* |
| *शूद्र* | *क्षत्रिय* | *क्षत्तर* |
| *शूद्र* | *वैश्य* | *अयोगव* |
| *वैश्य* | *ब्राह्मण* | *सूत* |
| *वैश्य* | *क्षत्रिय* | *वैदेहक* |
| *क्षत्रिय* | *ब्राह्मण* | *मागध* |

''चांडालों और श्वपचों का निवास गांव के बाहर होना चाहिए; उन्हें बर्तन नहीं रखने चाहिएं; उनकी संपत्ति कुत्ते और गधे हों''—10, 51

''धर्म-अधर्म जानने वाले, विश्वामित्र मुनि भूख से त्रस्त होने पर एक चांडाल के हाथ से कुत्ते की जांघ का मांस खाने को तैयार हो गए''—10, 108

''ब्राह्मण को यज्ञ के लिए शूद्र से कभी धन नहीं मांगना चाहिए, क्योंकि शूद्र से धन मांगकर यज्ञ करने वाला ब्राह्मण मरने के पश्चात चांडाल के रूप में जन्म लेता है''—11, 24

''कोई ब्राह्मण यदि चांडाल स्त्री से (अथवा निम्न जाति की स्त्री से) अनजाने में सहवास करता, भोजन ग्रहण करता, अथवा दान लेता है तो वह पतित हो जाता है, और यदि जानते हुए ऐसा करता है तो वह उन्हीं के जैसा हो जाता है''—11, 175

''ब्राह्मण का वध करने वाला कुत्तों, सुअरों, गधों, ऊंटों, गायों, बकरों, भेड़ों, (वन्य) पशुओं, पक्षियों, चांडालों और पुक्कसों की योनि में जन्म लेता है''—12, 55

अयोगव और क्षत्तर के साथ होने वाले व्यवहार की तुलना में चांडाल के साथ कितना अलग व्यवहार किया जाता है, जबकि ये सभी प्रतिलोम हैं? चांडाल को ही प्रतिलोमों में सबसे निकृष्ट क्यों माना गया? केवल इसलिए कि वह घृणा के पात्र शूद्र की संतान है। यह मात्र अपने शत्रु के बच्चों के खिलाफ बदले की कार्रवाई है।

इस सबके बाद इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि ब्राह्मणों और शूद्रों में कोई समझौता नहीं हुआ।

## IV

अंतिम बात पर आएं तो, ऐसा लगता है कि इस सबके पीछे यह विचार काम कर रहा है कि शूद्र तो भारतीय-आर्य समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा ही रहे होंगे। इस तरह का विचार होते हुए यह कुछ अतीब-सा ही लगता है कि शूद्रों ने उपनयन से वंचित रखे जाने जैसे कृत्य को चुपचाप सह लिया। इस तरह का विचार केवल इस प्रकार की बातों पर आधारित हो सकता है कि क्योंकि हिंदू समाज में शूद्रों की संख्या इतनी विशाल है, इसलिए भारतीय-आर्य समाज के शूद्रों की जनसंख्या भी बहुत अधिक रही होगी। इस तरह का अनुमान निराधार है, क्योंकि भारतीय-आर्यों के समाज के शूद्र प्रजातिगत संदर्भ में हिंदू समाज के शूद्रों से बिलकुल भिन्न हैं। हिंदू समाज के शूद्र भारतीय-आर्यों के समाज के शूद्रों के प्रजातीय वंशज नहीं हैं।

यह भ्रम यह न समझ पाने के कारण उत्पन्न हुआ है कि भारतीय-आर्यों के समाज में 'शूद्र' का जो अर्थ था वह हिंदू समाज में शूद्र के अर्थ से सर्वथा भिन्न है। भारतीय-आर्यों में 'शूद्र' शब्द एक ही जन का व्यक्तिवाचक नाम था। यह उस कौम का नाम था जो एक विशिष्ट प्रजाति के थे। हिंदू समाज में प्रयुक्त शूद्र शब्द एक व्यक्तिवाचक नाम तो बिलकुल

ही नहीं है। यह तो एक निम्न असंस्कृत लोगों के वर्ग के लिए प्रयुक्त होने वाला विशेषण है। यह जनजातियों और समूहों के एक विविध और विषमजातीय समुच्चय का एक आम गोत्रनाम है, जिनमें एक मात्र समानता यह है कि वे संयोगवंश संस्कृति के सोपान की निचली पायदान पर अवस्थित हैं। उन्हें शूद्र नाम से संबोधित करना गलत है। आर्यों के समाज के अपने हमनामों (शूद्रों) से उनका कुछ लेना-देना नहीं है, जिन्होंने ब्राह्मणों को नाराज किया था। यह अत्यंत खेद का विषय है कि बाद के समय के इन निर्दोष और पिछड़े लोगों को मूल शूद्रों के साथ लपेट दिया गया है और उन्हें उन अपराधों के लिए दंडित किया जा रहा है जो उन्होंने किए ही नहीं।

यह बिलकुल स्पष्ट है कि कभी यह तथ्य धर्मसूत्रकारों के दिमाग में था कि भारतीय-आर्य समाज के शूद्र और हिंदू समाज के शूद्र अलग-अलग हैं और उनमें स्पष्ट भेद है। उन्होंने जो 'सच्छूद्र' तथा 'असच्छूद्र' और 'अनिर्वासित' और 'निर्वासित' शूद्रों में अंतर किया है, उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है। सच्छूद्र का अर्थ है एक सुसंस्कृत शूद्र और असच्छूद्र का अर्थ है एक असंस्कृत शूद्र। निर्वासित शूद्र का अर्थ है ग्राम समुदाय में रहने वाला शूद्र और अनिर्वासित शूद्र का अर्थ है ग्राम समुदाय से बाहर रहने वाला शूद्र। कुछ लोगों का यह[1] कहना बिलकुल गलत है कि इस विभाजन से यह इंगित होता है कि सूत्रकारों की दृष्टि में शूद्रों की स्थिति सुधर रही थी, क्योंकि वहां पहले एक शूद्र सामाजिक धारा में नहीं था वहीं अब कुछ को उसमें शामिल कर लिया गया था। इसकी सही व्याख्या तो यह है कि सच्छूद्र और निर्वासित शूद्र का सम्बंध आर्यों के समाज के शूद्र से है और असच्छूद्र और अनिर्वासित शूद्र उन शूद्रों के लिए प्रयुक्त होने वाले विशेषण हैं जो हिंदू समाज का हिस्सा बन चले थे। हमारा सरोकार आर्यों के समाज के शूद्र से है। बाद के समय के हिंदू समाज के शूद्रों से उनका कोई सम्बंध नहीं है। इस स्थिति में, हिंदू समाज में शूद्रों की विशाल संख्या होने को इस तर्क का आधार नहीं बनाया जा सकता कि भारतीय आर्यों के समाज में भी शूद्र बहुत बड़ी संख्या में रहे होंगे। हमें यह ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है कि शूद्र एक जनजाति थी, एक गोत्र अथवा अर्धांश था, अथवा एक परिवार-समूह था। किंतु यदि वे जनजाति (कबीले) जितने बड़े थे, तब भी वे कुछ हजार से अधिक तो नहीं हो सकते। भरतवंशियों के बारे में ऋग्वेद 7, 33.6 में स्पष्ट कहा गया है कि उनकी संख्या कम थी। पांचाल राजा सोन सत्रसाह[2] द्वारा संपन्न एक अश्वमेघ यज्ञ के संदर्भ में शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है–

> "जब सत्रसाह ने अश्वमेघ यज्ञ किया, जो छह हजार छह सौ तीस कवचधारी तुर्वस उठ खड़े हुए।"

---

1. *देखिए, काणे, 2(1), पृष्ठ 123, उनका यह विचार बिलकुल गलत है कि इस भेद का यह मतलब निकलता है कि शूद्रों को उनकी निम्न स्थिति से धीरे-धीरे ऊपर उठाया जा रहा था।*
2. *ओल्डेन बर्ग द्वारा प्रस्तुत 'लाईफ आव बुद्ध', पृष्ठ 404*

यदि इससे यह संकेत मिलता है कि तुर्वस जनजाति में छह हजार लोग थे, तो फिर शूद्रों की संख्या की बहुत अधिक नहीं रही होगी।

संख्या के सवाल को छोड़ दें तो, शूद्रों ने इस संकट को रोकने के लिए क्या किया होगा? यदि उनकी ओर से कुपित कुछ ब्राह्मणों द्वारा उपनयन के लिए मना कर दिया गया था, तो क्या वे उन दूसरे ब्राह्मणों की सेवाएं नहीं ले सके होंगे जिन्हें उन्होंने अप्रसन्न नहीं किया था? ऐसी संभावना निश्चय ही अनेक परिस्थितियों पर निर्भर करेगी। पहली बात तो यह कि हमें नहीं पता कि क्या सारे ब्राह्मणों ने एक साझा मोर्चा बनाया हुआ था और क्या उस मोर्चे को तोड़ना संभव था। हमें नहीं पता कि जिस समय यह मुद्दा एक ज्वलंत मुद्दा बन रहा था, तब ब्राह्मण क्या एक जाति का रूप ले चुके थे। किंतु यह तो स्पष्ट है कि[1] ऋग्वेद के समय में भी, ब्राह्मण एक वर्ग का रूप ले चुके थे और उनमें वर्ग चेतना विकसित हो चुकी थी, और वे वर्गीय हितों को बनाए रखने के लिए तत्पर थे। उस स्थिति में शूद्रों के लिए ब्राह्मणों के षडयंत्रों को तोड़ना कठिन रहा होगा। दूसरे, यह भी हो सकता है कि उपनयन संस्कार करना कुल पुरोहित का अनन्य अधिकार बन चुका था। राजा निमि की कथा से पता चलता है कि यज्ञ संपन्न कराना कुल पुरोहित का अनन्य अधिकार बन चुका था। यदि इन बातों में दम है, तो स्पष्ट है कि शूद्र अपने खिलाफ काम कर रहे ब्राह्मणों के साझा मोर्चे को रोकने के लिए अधिक कुछ नहीं कर पाए होंगे।

दूसरी संभावना थी सभी क्षत्रियों का एक साझा मोर्चा बनाने की, जो ब्राह्मणों के विरोध की गुरुता को कम कर सकता था। इस तरह की बात संभव थी या नहीं, इस विषय में बस समझा कि उपनयन से वंचित होने का उनकी भावी प्रस्थिति (दर्ज़े=हैसियत) पर क्या प्रभाव पड़ने वाला था? मैं निश्चयपूर्व कह सकता हूं कि उन्होंने इसे नहीं समझा था। दूसरे, क्या क्षत्रिय लोग एक जुट अथवा संगठित थे? शायद नहीं। तीसरे, क्या अन्य क्षत्रिय राजाओं में शूद्रों के प्रति कोई सहानुभूति थी? यदि ऋग्वेद में वर्णित दाशराज्ञ युद्ध की कथा सच्ची है, तो यह अत्यंत स्पष्ट है कि शूद्रों और अन्य गैर-शूद्र क्षत्रियों के बीच आपसी घृणा का भाव था।

इन सब परिस्थितियों को देखते हुए, इसमें कुछ भी अजीब नहीं है कि शूद्रों ने ब्राह्मणों द्वारा उपनयन के अधिकार से वंचित किए जाने को स्वीकार कर लिया।

---

*1. देखिए, काणे, 2(1), पृष्ठ 29*

अध्याय : बारह

# कसौटी पर सिद्धांत

## I

इस निबंध का उद्देश्य शूद्रों की उत्पत्ति का पता लगाना और उनकी अवनति के कारणों को खोजना था। ऐतिहासिक सामग्री और विभिन्न–पुरातनपंथी तथा आधुनिक–लेखकों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों की जांच के बाद मैंने एक नया सिद्धांत प्रस्तुत किया है। पिछले अध्यायों में इस सिद्धांत को भागों में प्रस्तुत किया गया है। जिससे प्रत्येक भाग की आधारभूमि को अलग से तैयार करने में सुविधा हो। अब वह क्षण आ गया है कि उन भागों को जोड़कर पूरे तौर पर यह समझा जा सके कि यह सिद्धांत है क्या। सारांश में इसे इस प्रकार रखा जा सकता है–

(1) शूद्र लोग सूर्यवंशी आर्य समुदायों में से एक थे।

(2) भारतीय-आर्यों के समाज में शूद्रों को क्षत्रिय वर्ण का दर्जा हासिल था।

(3) एक समय था जब आर्यों के समाज में केवल तीन वर्णों, अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही मान्य थे। शूद्र एक अलग वर्ण न होकर क्षत्रिय वर्ण का ही हिस्सा थे।

(4) शूद्र राजाओं और ब्राह्मणों के बीच लगातार झगड़ा रहा, जिसमें ब्राह्मणों को अनेक अत्याचारों और असम्मानजनक स्थितियों का शिकार होना पड़ा।

(5) शूद्रों के अत्याचारों और दमन के कारण उनके प्रति उपजी घृणा के चलते ब्राह्मणों ने उन्हें यज्ञोपवीत धारण करवाने से मना कर दिया।

(6) इस पवित्र सूत्र का अधिकार छिन जाने के कारण शूद्र सामाजिक सोपान में नीचे आ गए, उनका दर्जा वैश्यों से नीचे हो गया, और वे चौथा वर्ण बन गए।

अब इस सिद्धांत की उपयुक्तता का आकलन बाकी रह जाता है। लेखक के लिए यह स्वाभाविक है कि वह यह काम औरों पर छोड़ दे। मैं इससे थोड़ा हटकर चलना चाहता हूं और अपने सिद्धांत को परखने का काम मैं स्वयं करने जा रहा हूं। मैं ऐसा इसलिए कर रहा हूं क्योंकि इससे मुझे अपने सिद्धांत को सही ठहराने का अवसर मिलेगा।

## II

मैं बखूबी यह कल्पना कर सकता हूं कि मेरे आलोचक यह आरोप लगाएंगे कि मेरा मत महाभारत के एक अकेले कथन पर टिका है जिसमें पैजवन को एक शूद्र बताया गया है;

कि सुदास के रूप में पैजवन की पहचान के प्रमाण संदेह से परे नहीं हैं; कि एक शूद्र के रूप में पैजवन का वर्णन महाभारत के एक अकेले स्थल को छोड़ और कहीं नहीं मिलता है। ऐसे कमजोर धरातल पर रचित कोई सिद्धांत कैसे मान्य हो सकता है? वे यही सामान्य तर्क देंगे कि कोई शृंखला अपनी दुर्बलतम कड़ी के मुकाबले अधिक मजबूत नहीं होती। किंतु मेरा विश्वास है कि मेरे सिद्धांत को इतने आसान तरीके से अमान्य और ध्वस्त नहीं किया जा सकता।

सबसे पहले तो, मैं यह नहीं मानता कि सिद्धांत को एक अकेले साक्ष्य के आधार पर खड़ा नहीं किया जा सकता। साक्ष्य के कानून का यह एक सुविदित सिद्धांत है कि साक्ष्य की गुरुता को देखना चाहिए, उसकी संख्या को नहीं। प्रत्येक प्रमाण अथवा समस्त प्रमाणों के योग की गुरुता का महत्त्व गवाहों की संख्या से अधिक होता है। इस कथन की सत्यता पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है कि पैजवन एक शूद्र था। ऐसा कोई कारण नहीं है कि महाभारत के लेखक ने गलत वर्णन किया होगा। इतने लंबे समय के बाद लिखे होने के कारण, उसे किसी गलत इरादे, किसी पक्षपात का दोर्ष नहीं माना जा सकता। निष्कर्ष बस यही निकाला जा सकता है कि लेखक एक वास्तविक परंपरा को दर्ज कर रहा था।

पैजवन को ऋग्वेद में शूद्र नहीं बताया गया है, यह तथ्य महाभारत के कथन की सत्यता के विरुद्ध नहीं जाता। ऋग्वेद में पैजवन के वर्णन से शूद्र शब्द की अनुपस्थिति के अनेक स्पष्टीकरण दिए जा सकते हैं। पहला स्पष्टीकरण तो यही है कि ऋग्वेद में ऐसे किसी वर्णन की अपेक्षा करना गलत है। ऋग्वेद एक धर्म ग्रंथ है। किसी धर्म ग्रंथ में शूद्र जैसे वर्णन की अपेक्षा नहीं की जा सकती। यह अप्रासंगिक होता। किंतु इस तरह के वर्णन की अपेक्षा महाभारत जैसे ऐतिहासिक ग्रंथ में की जा सकती है, जहां वस्तुतः यह मिलता भी है।

मेरे विचार में, सुदास के सम्बंध में शूद्र शब्द का उल्लेख बार-बार न होने का स्पष्टीकरण यह है कि यह अनावश्यक था। कुल, गोत्र, जनजाति आदि के वर्णन वस्तुतः पहचान के चिन्ह होते हैं। पहचान के चिन्ह निम्नतर लोगों के संदर्भ में तो आवश्यक होते हैं। किंतु प्रसिद्ध लोगों के संदर्भ में वे अनावश्यक होते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि सुदास अपने समय का सर्वाधिक प्रसिद्ध व्यक्ति था। लोगों को उसकी पहचान बताने के लिए उसे शूद्र के रूप में वर्णित करना अनावश्यक था। कुल मिलाकर यह मात्र अनुमान का मामला नहीं है। ऐतिहासिक उदाहरण भी दिए जा सकते हैं। बुद्ध के समय के दो राजाओं—बिम्बिसार और प्रसेनजित का ही उदाहरण ले लीजिए। उनके समकालीन और सभी राजाओं का वर्णन उस समय के साहित्य में उनके गोत्र नाम से मिलता है। किंतु इन दोनों का बस व्यक्तिगत नाम ही लिया गया है। इस तथ्य पर ध्यान देने वाले प्रो. ओल्डनबर्ग ने[1] इसकी व्याख्या इस आधर पर की है कि वे प्रख्यात थे और उनका वर्णन उनके गोत्र नाम से करना आवश्यक नहीं था।

---

*1. लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ 414*

## III

किंतु ऐसा मानना वास्तव में गलत होगा कि मेरा सिद्धांत महाभारत के उस अकेले अंश पर अथवा सुदास के रूप में पैजवन की पहचान पर आधारित है। ऐसा कुछ भी नहीं है। यह सिद्धांत किसी एक अकेली शृंखला पर टिका नहीं है और इसलिए यहां यह तर्क लागू नहीं होता कि कोई शृंखला अपनी दुर्बलतम कड़ी से अधिक मजबूत नहीं होती। यह मत अनेक समांतर शृंखलाओं पर टिका है। उनमें से किसी एक की कमजोरी को लेकर यह नहीं कहा जा सकता कि वह आधार को कमजोर कर देगी। जब एक शृंखला की कोई एक कड़ी कमजोर होती है तो पूरा भार दूसरी शृंखलाओं पर आ पड़ता है। परिणामस्वरूप, इस निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले कि यह सिद्धांत ध्वस्त हो गया है, यह प्रमाण देना आवश्क होगा कि अन्य शृंखलाएं भार वहन करने योग्य नहीं हैं।

एक शूद्र के रूप में पैजवन का वर्णन और ऋग्वेद के सुदास के रूप में पैजवन की पहचान इस सिद्धांत को आधार देने वाली एकमात्र शृंखला नहीं है। शृंखलाएं और भी हैं। इनमें से एक है शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मण ग्रंथों में प्राप्य यह स्वीकरण कि वर्ण केवल तीन थे और शूद्र कोई अलग वर्ण नहीं थे। दूसरी शृंखला इस साक्ष्य के रूप में है कि शूद्र लोग राजा और मंत्री थे। तीसरी शृंखला इस साक्ष्य के रूप में है कि एक समय शूद्रों को उपनयन का अधिकार था। ये सभी मजबूत शृंखलाएं हैं जो पहली शृंखला की संभावित टूट से पड़ने वाले सारे अतिरिक्त भार को वहन करने में समर्थ हैं।

जहां तक साक्ष्य का सम्बंध है, तो पूर्ण निश्चितता कभी-कभी ही होती है और मैं अपने मत (सिद्धांत) के लिए पूर्ण निश्चितता का दावा नहीं करता। किंतु मैं यह दावा अवश्य करता हूं कि इस सिद्धांत की पुष्टि में प्रस्तुत साक्ष्य प्रत्यक्ष भी है और परिस्थितिजन्य भी, और जहां इसमें विवादास्पदता है, वहां इसके पक्ष में प्रबल संभावनाएं इसकी पुष्टि करती हैं।

## IV

मैंने यह दिखा दिया है कि मैंने जो सिद्धांत, जो मत प्रस्तुत किया है, उसमें कितना दम है। अब मैं यह दिखाऊंगा कि यह सिद्धांत उपयुक्त है। मेरे विचार में एक कसौटी है जिसे आम तौर पर सही माना जाता है जिसके जरिए किसी सिद्धांत की उपयुक्तता को परखा जा सकता है। इसके अनुसार किसी सिद्धांत को स्वीकार्य होने के लिए केवल समाधान ही नहीं प्रस्तुत करना चाहिए, बल्कि यह भी दिखाना चाहिए कि जो समाधान इसमें प्रस्तुत किया गया है उसमें उस समस्या से जुड़े प्रश्नों के उत्तर भी होने चाहिएं। जिसके समाधान का दावा इसमें किया गया है। मैं अपने सिद्धांत को इसी कसौटी पर रखकर देखना चाहता हूं।

प्रारंभ में मैं शूद्रों के प्रश्नों उनकी पहेलियों, को एक स्थान पर रखना चाहूंगा। इनमें से निम्नलिखित प्रश्न सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं—

(1) शूद्रों को अनार्य, और आर्यों का शत्रु कहा जाता है। कहा जाता है कि

आर्यों ने उन पर विजय प्राप्त की और उन्हें गुलाम बना लिया था। तो फिर ऐसा क्यों है कि यजुर्वेद और अथर्ववेद के ऋषियों ने शूद्रों के गौरव की कामना क्यों की और उनकी कृपा की इच्छा क्यों व्यक्त की?

(2) कहा जाता है कि शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं था। फिर ऐसा क्यों है कि सुदास, एक शूद्र ने ऋग्वेद के मंत्रों की रचना की?

(3) कहा जाता है कि शूद्रों को यज्ञ करने का अधिकार नहीं था। फिर सुदास ने अश्वमेघ यज्ञ कैसे किया? शतपथ ब्राह्मण में शूद्र को याजक क्यों माना गया और उसे सम्बोधित करने का सूत्र क्यों दिया गया है?

(4) कहा जाता है कि शूद्रों को उपनयन का अधिकार नहीं है। यदि प्रारंभ से ही ऐसा है, तो फिर इसे लेकर विवाद क्यों है? बदरी और संस्कार गणपति के अनुसार शूद्र को उपनयन का अधिकार क्यों है?

(5) शूद्र को संपत्ति रखने का अधिकार नहीं है। तो फिर मैत्रायणी और काठक संहिता में शूद्रों को धनी और संपन्न कैसे बताया गया है?

(6) कहा जाता है कि शूद्र कोई राज्याधिकारी नहीं हो सकता। फिर महाभारत में शेद्रों को राजाओं का मंत्री कैसे बताया गया है?

(7) कहा जाता है कि शूद्र का कर्तव्य है एक अनुचर के रूप में शेष तीनों वर्णों की सेवा करना। फिर ऐसा क्यों है कि शूद्रों में राजा हुए, जिसकी पुष्टि सुदास, और सायण द्वारा उल्लिखित अन्य उदाहरणों से होती है?

(8) यदि शूद्र को वेदाध्ययन का कोई अधिकार नहीं था, यदि उसे उपनयन का कोई अधिकार नहीं था, यदि उसे यज्ञ का अधिकार नहीं था, तो इसे इनका अधिकार क्यों नहीं दिया गया?

(9) शूद्र का उपनयन करने, उसके वेदाध्ययन करने, और उसके यज्ञ संपन्न करने से ब्राह्मणों को निश्चय ही लाभ होना था—भले ही ये शूद्र के किसी काम के होते या नहीं—क्योंकि यज्ञ करने और वेद पढ़ाने का एकाधिकार ब्राह्मणों के ही पास था। शूद्रों को उपनयन, वेदाध्ययन और यज्ञ का अधिकार देने से ब्राह्मणों को मोटी दक्षिणा ही मिलती। फिर शूद्रों को ये अधिकार नहीं देने के प्रति ब्राह्मण इतने कृत संकल्प क्यों थे, जबकि शूद्रों को इनकी अनुमति देने से उनकी कोई क्षति नहीं होनी थी, बल्कि उनकी कमाई ही बढ़नी थी?

(10) यदि शूद्र को उपनयन, यज्ञ और वेद (पढ़ने) का अधिकार नहीं भी था, तो ब्राह्मण तो इसके लिए स्वतंत्र थे कि वे शूद्रों को ये अधिकार दे सकते थे। ये प्रश्न एक व्यक्ति के रूप में (अलग-अलग) ब्राह्मण की स्वतंत्र इच्छा पर क्यों नहीं छोड़ दिए गए? यह विधान क्यों बनाया गया कि जो ब्राह्मण इन प्रतिबंधित कृत्यों में से कुछ भी करेगा, उसे दंडित किया जाएगा?

इन प्रश्नों की व्याख्या कैसे की जा सकती है? इनकी व्याख्या का प्रयास न तो पुरातनपंथी हिंदू ने किया है, न ही आधुनिक विद्वानों ने। सचमुच, उन्हें शायद पता ही नहीं है कि ऐसे कोई प्रश्न भी हैं। पुरातनपंथी इनकी चिंता नहीं करता। वह तो 'पुरुष सूक्त' की इस दैवीय व्याख्या से संतुष्ट है कि शूद्र की उत्पत्ति पुरुष के चरणों से हुई है। आधुनिक विद्वान इस मान्यता से संतुष्ट हैं कि शूद्र अपनी उत्पत्ति के लिहाज से एक अनार्य आदिवासी है जिसके लिए आर्यों ने, स्वाभाविक तौर पर ही, एक अलग विधि संहिता बनाई थी। खेद का विषय है कि इनमें से किसी भी वर्ग के लोगों ने उन प्रश्नों (पहेलियों) की जानकारी लेने का कष्ट नहीं किया जो शूद्र की समस्या से जुड़े हैं। और, उन्होंने शूद्र की स्थिति की उत्पत्ति के विषय में कोई सिद्धांत प्रस्तुत करने का तो विचार ही नहीं किया जिससे इन प्रश्नों का उत्तर मिल सकता।

मेरे सिद्धांत के सम्बंध में यह दृष्टव्य है कि इसमें इन सभी प्रश्नों का उत्तर देने की सामर्थ्य है। (1) से (4) तक में यह व्याख्या मिलती है कि शूद्र कैसे राजा और मंत्री बन गए और ऋषियों को उनकी स्तुति क्यों करनी चाहिए और उनकी कृपा की आकांक्षा क्यों करनी चाहिए। (5) और (6) में यह स्पष्ट किया गया है कि शूद्र के उपनयन को लेकर विवाद क्यों था, और ऐसा विधान क्यों बनाया गया जिसमें केवल शूद्रों को अधिकार से वंचित ही नहीं रखा गया, बल्कि उल्लंघन करने वाले ब्राह्मण पर दंड भी लगाया गया, जिससे यह प्रभावी हो सके। सचमुच ऐसा कोई प्रश्न नहीं है जिसका उत्तर यह सिद्धांत न दे सके। इसलिए, मैं कह सकता हूं कि यह मत, यह सिद्धांत सर्वथा त्रुटिहीन और श्रेष्ठ है। और, बहुत कम सिद्धांतों का दस्तावेज इससे बेहतर होगा।

# परिशिष्ट

## परिशिष्ट : 1

# ऋग्वेद में 'आर्य' शब्द के संदर्भ

| I | | II | | III | | IV | | V | | VI | | VII | | VIII | | IX | | X | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M |
| 33 | 3 | 23 | 13 | 43 | 2 | 1 | 7 | 2 | 12 | 14 | 3 | 8 | 1 | 1 | 4 | 23 | 3 | 20 | 4 |
| 70 | 1 | 23 | 15 | | | 2 | 12 | 33 | 2 | 15 | 3 | 21 | 5 | 19 | 36 | 61 | 11 | 27 | 8 |
| 71 | 3 | 35 | 2 | | | 2 | 18 | 33 | 6 | 16 | 27 | 21 | 9 | 21 | 16 | 79 | 1 | 27 | 19 |
| 73 | 5 | | | | | 4 | 6 | 33 | 9 | 20 | 1 | 31 | 5 | 24 | 221 | | | 34 | 13 |
| 81 | 6 | | | | | 16 | 19 | 34 | 9 | 24 | 5 | 34 | 18 | 34 | 10 | | | 42 | 1 |
| 81 | 9 | | | | | 20 | 3 | 54 | 12 | 25 | 7 | 48 | 3 | 39 | 2 | | | 59 | 3 |
| 116 | 6 | | | | | 24 | 8 | | | 36 | 5 | 56 | 12 | 48 | 8 | | | 76 | 2 |
| 118 | 9 | | | | | 29 | 1 | | | 45 | 33 | 60 | 11 | 49 | 12 | | | 86 | 1 |
| 121 | 15 | | | | | 38 | 2 | | | 47 | 9 | 64 | 3 | 52 | 7 | | | 86 | 3 |
| 122 | 14 | | | | | 48 | 1 | | | 48 | 16 | 68 | 2 | 54 | 9 | | | 89 | 3 |
| 169 | 6 | | | | | 50 | 11 | | | 51 | 2 | 83 | 5 | 55 | 12 | | | 133 | 3 |
| 184 | 1 | | | | | | | | | 59 | 8 | 86 | 7 | | | | | 148 | 3 |
| 185 | 9 | | | | | | | | | | | 92 | 4 | | | | | 191 | 1 |
| | | | | | | | | | | | | 100 | 5 | | | | | | |

# परिशिष्ट : 2

# 'आर्य' शब्द के संदर्भ

## (i) ऋग्वेद में

| I | | II | | III | | IV | | V | | VI | | VII | | VIII | | IX | | X | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M |
| 51 | 8 | 11 | 18 | 34 | 9 | 26 | 2 | 34 | 6 | 18 | 3 | 5 | 6 | 24 | 27 | 63 | 6 | 38 | 3 |
| 59 | 2 | 11 | 19 | | | 30 | 18 | | | 20 | 10 | 18 | 7 | 103 | 1 | 63 | 14 | 43 | 4 |
| 117 | 21 | | | | | | | | | 25 | 2 | 83 | 1 | | | | | 49 | 3 |
| 130 | 8 | | | | | | | | | 33 | 3 | | | | | | | 65 | 11 |
| 156 | 5 | | | | | | | | | 60 | 6 | | | | | | | 69 | 6 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | 83 | 1 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | 86 | 19 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | 102 | 3 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | 103 | 3 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | 138 | 3 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | 191 | 1 |

## (ii) यजुर्वेद में

| IV | | V | | VI | | XVIII | | XIX | | XX | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M |
| 20 | 4 | 11 | 3 | 63 | 4 | 1 | 21 | 32 | 8 | 18 | 5 |
| 20 | 8 | | | | | | | 62 | 1 | 85 | 4 |

## (iii) अथर्ववेद में

| IV | | XX | | XXII | |
|---|---|---|---|---|---|
| H | M | H | M | H | M |
| 32 | 1 | 11 | 9 | 63 | 4 |
| | | 17 | 4 | | |
| | | 18 | 5 | | |
| | | 36 | 10 | | |
| | | 85 | 4 | | |
| | | 89 | 1 | | |
| | | 95 | 4 | | |

## परिशिष्ट : 3

# ऋग्वेद में वर्णित 'आर्य' शब्द के विविध अर्थ

| अर्थ | I | | II | | III | | IV | | V | | VI | | VII | | VIII | | IX | | X | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M |
| | 70 | 1 | | | | | 16 | 19 | 33 | 2 | 14 | 3 | 21 | 9 | 48 | 8 | 79 | 1 | 42 | 1 |
| | 73 | 5 | | | | | | | | | 15 | 3 | 34 | 18 | 49 | 12 | | | 59 | 3 |
| शत्रु | 118 | 9 | | | | | | | | | 20 | 1 | 48 | 3 | | | | | 76 | 2 |
| | 121 | 15 | | | | | | | | | 36 | 5 | 56 | 22 | | | | | 89 | 3 |
| | 169 | 6 | | | | | | | | | | | 68 | 2 | | | | | | |
| | | | | | | | | | | | | | 92 | 4 | | | | | | |
| | 33 | 3 | 23 | 15 | 43 | 2 | 1 | 7 | 33 | 6 | 24 | 5 | 8 | 1 | 19 | 36 | | | 20 | 4 |
| सम्माननीय | 81 | 6 | 35 | 2 | | | 2 | 12 | 33 | 9 | 25 | 7 | 21 | 5 | 21 | 16 | | | 27 | 8 |
| विद्वान | 81 | 9 | 43 | 2 | | | 4 | 6 | 34 | 9 | 47 | 9 | 31 | 5 | 24 | 22 | | | 27 | 19 |
| | 121 | 14 | | | | | 20 | 3 | | | | | 86 | 7 | 34 | 10 | | | 34 | 13 |
| | 184 | 1 | | | | | 24 | 8 | | | | | 100 | 5 | 55 | 12 | | | 86 | 1 |
| | | | | | | | 29 | 1 | | | | | | | | | | | 86 | 3 |
| | | | | | | | 38 | 2 | | | | | | | | | | | 116 | 6 |
| | | | | | | | 48 | 1 | | | | | | | | | | | 148 | 3 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | | 191 | 1 |
| | | | | | | | 2 | 18 | | | | | | | | | | | | |
| नागरिक | | | | | | | 20 | 3 | | | | | | | | | | | | |

## परिशिष्ट : 4

# ऋग्वेद में 'दास' शब्द के संदर्भ

| I | | II | | III | | IV | | V | | VI | | VII | | VIII | | IX | | X | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M |
| 92 | 8 | 11 | 2 | 34 | 1 | 18 | 9 | 30 | 7 | 20 | 6 | 19 | 2 | 5 | 31 | | | 22 | 8 |
| 103 | 3 | 11 | 4 | | | 28 | 4 | 30 | 8 | 20 | 10 | 83 | 1 | 24 | 27 | | | 23 | 2 |
| 104 | 2 | 12 | 4 | | | 30 | 14 | 30 | 9 | 22 | 10 | 86 | 7 | 32 | 2 | | | 38 | 3 |
| 158 | 5 | 20 | 6 | | | 30 | 15 | 33 | 4 | 25 | 2 | 99 | 4 | 40 | 6 | | | 49 | 6 |
| 174 | 7 | 20 | 7 | | | 30 | 21 | 34 | 6 | 26 | 5 | | | 51 | 9 | | | 49 | 7 |
| | | | | | | 32 | 10 | | | 33 | 3 | | | 56 | 3 | | | 54 | 1 |
| | | | | | | | | | | 47 | 21 | | | 70 | 10 | | | 62 | 10 |
| | | | | | | | | | | 60 | 6 | | | | | | | 73 | 7 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | 83 | 1 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | 86 | 19 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | 99 | 6 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | 102 | 3 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | 120 | 2 |
| | | | | | | | | | | | | | | | | | | 138 | 3 |

परिशिष्ट : 5

# ऋग्वेद में 'दस्यु' शब्द के संदर्भ

| I | | II | | III | | IV | | V | | VI | | VII | | VIII | | IX | | X | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M |
| 33 | 4 | 11 | 18 | 29 | 9 | 16 | 9 | 4 | 6 | 14 | 3 | 5 | 6 | 6 | 14 | 41 | 2 | 22 | 8 |
| 33 | 7 | 11 | 19 | 34 | 6 | 16 | 10 | 7 | 10 | 16 | 15 | 6 | 2 | 14 | 14 | 47 | 2 | 47 | 4 |
| 33 | 9 | 12 | 10 | 34 | 9 | 16 | 12 | 14 | 14 | 18 | 3 | 19 | 4 | 39 | 8 | 88 | 4 | 48 | 2 |
| 36 | 18 | 13 | 9 | 49 | 2 | 28 | 3 | 29 | 10 | 23 | 2 | | | 50 | 8 | 92 | 5 | 49 | 3 |
| 51 | 5 | 15 | 9 | | | 28 | 4 | 30 | 9 | 24 | 8 | | | 51 | 2 | | | 55 | 8 |
| 51 | 6 | 20 | 9 | | | 38 | 4 | 31 | 5 | 29 | 6 | | | 56 | 2 | | | 73 | 5 |
| 51 | 8 | | | | | | | 31 | 7 | 31 | 4 | | | 70 | 11 | | | 83 | 3 |
| 53 | 4 | | | | | | | 70 | 3 | 45 | 24 | | | 98 | 6 | | | 83 | 6 |
| 59 | 6 | | | | | | | | | | | | | | | | | 95 | 7 |
| 78 | 4 | | | | | | | | | | | | | | | | | 99 | 7 |
| 100 | 18 | | | | | | | | | | | | | | | | | 105 | 11 |
| 101 | 5 | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| 103 | 3 | | | | | | | | | | | | | | | | | 170 | 2 |
| 103 | 4 | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| 108 | 12 | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| 117 | 3 | | | | | | | | | | | | | | | | | | |
| 117 | 21 | | | | | | | | | | | | | | | | | | |

परिशिष्ट : 6

## ऋग्वेद में 'वर्ण' शब्द के संदर्भ

| I | | II | | III | | IV | | V | | VI | | VII | | VIII | | IX | | X | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M | H | M |
| 73 | 7 | 1 | 12 | 34 | 5 | 5 | 13 | | | | | | | | | 65 | 8 | 3 | 3 |
| 92 | 10 | 3 | 5 | | | | | | | | | | | | | 71 | 2 | 124 | 7 |
| 96 | 5 | 4 | 5 | | | | | | | | | | | | | 71 | 8 | | |
| 104 | 2 | 5 | 5 | | | | | | | | | | | | | 97 | 15 | | |
| 113 | 2 | 12 | 4 | | | | | | | | | | | | | 104 | 4 | | |
| 179 | 6 | 34 | 13 | | | | | | | | | | | | | 105 | 40 | | |

# अनुक्रमणिका

अछूत = अतिशूद्र, अवर्ण और अद्विज हैं, 45
अथर्व वेद = भारतीय-आर्य राष्ट्र की पांच जनजातियों के बारे में, 39; वर्णों की उत्पत्ति के बारे में इसकी चार व्याख्याएं, 48-49; इसे ऋग्वेद के बराबर कब माना गया, 97; शूद्र और आर्य के सीमांकन सम्बंधी इसके कथन, 119; ब्राह्मणों और शूद्रों के बीच समानता का आधार दिखाते इसके कथन 119-120, 218-219
अनुलोम = कौन हैं, 212 (और पाद-टिप्पणी); देखिए निषाद
अम्बरीष = 156
अर्जुन = 206
अवर्ण = इसका विधितः अर्थ, 44-45; कौन हैं ये, 45
अश्विन कुमार = शूद्र होते हुए भी सोम का अधिकार, 120
आचार्य = उपनयन कराने का अनन्य अधिकार, 185-186; योग्यताएं, 185
आपस्तम्ब धर्मसूत्र = पुरुष सूक्त के समर्थन, 31; इसके अंतर्गत शूद्रों की अयोग्यताएं, 53; 59-60 आचार्य की योग्यताओं के विषय में, 185
आर्य = प्रजाति, भारत पर आक्रमण करने वाली, 74; प्रकार और लक्षण, 77; शब्द के चार अर्थ, 79; प्रो. मैक्स मूलर के अनुसार, प्रजाति नहीं, 79-80; सामान्य शब्द-भंडार द्वारा इंगित मूल निवास, 80-81; काकोशिया, मूल निवास नहीं, 80-81; मूल निवास आर्कटिक प्रदेश होने के बारे में तिलक का सिद्धांत, 81-83; भारत पर आक्रमण के सिद्धांत के विरुद्ध प्रमाण, 83-84; दासों और दस्युओं की परवशंता, 84-86, 96-97 दासों और दस्युओं से अवियोज्य, 87; प्रजाति सिद्धांत, इसकी विफलता, 88-89; इसके भारतीय समर्थक, 89-91; वर्ण का अर्थ इसकी मुख्य विशेषता, 91; वैदिक काल में इनमें रंग को लेकर कोई पूर्वग्रह नहीं था, 92; दो समुदाय : चातुर्वर्ण्य में विश्वास और अविश्वास रखने वाले, 109, 111; अन्य आर्यों का गुलाम बनाने की अनुमति, 123-124; वैदिक, सामाजिक संगठन, 142-143; अशुद्धता और गोद लेने के नियम, 173-174
आश्वलायन गृह्यसूत्र = उपनयन संस्कार का वर्णन, 169-171
इंसाइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन ऐंड इथिक्स = 30
ईसाई = सम्राट, रोमन विधान में उनकी अयोग्यताएं, 67-68; (ईसाई) संस्कार और ब्राह्मणी संस्कार, 183
उपनयन = किनको है अधिकार, 169-171; उद्देश्य : वेदाध्ययन में दीक्षित, 171; आवश्यक सामग्री, 171; आधुनिक संस्कार के लिए यज्ञोपवीत अनिवार्य, 171; यज्ञोपवीत धारण करने के संस्कार में विलय, 174; यज्ञोपवीत रहित उपनयन के खतरे, 174; सही अर्थ, 174; उपनयन की अनुपस्थिति, शूद्रता का परीक्षण, 174, 178-179; क्या शूद्रों को इसका अधिकार था, 178-179, 182-183; मृत, मूक, दृष्टिहीन, 'अनुलोम', 179; आयु-सीमा से अधिक, 180; उनके पुत्र और व्रत्य, 180-181; पात्रता, 182; भारतीय-ईरानियों में सार्वजनीन, 182; बाल विवाह के कारण महिलाओं के लिए बंद, 182; संस्कार गणपति के अनुसार शूद्रों के लिए खुला, 182, 218; शूद्र को वंचित करने के कारणों का अभाव, 182-183; महत्त्व में प्रथम आध्यात्मिक, 184; शूद्रों को

अस्वीकृति के बाद सामाजिक महत्त्व की प्राप्ति, 184; संपत्ति तथा ज्ञान के अधिकार का प्रावधान, 185; इसका संस्कार आचार्य द्वारा संपन्न, 186; शिवाजी का अधिकार 188-189

ऋग्वेद = पुरुष सूक्त, 29-30; पुरुष सूक्त के अतिरिक्त विश्वोत्पत्ति का एक और सिद्धांत, 34-35; विश्वोत्पत्ति सम्बंधी इसके दो सिद्धांतों की तुलना, 35; वर्णों की उत्पत्ति का इसका लौकिक सिद्धांत, 36-37; श्रम-विभाजन की चेतना, 38; भारतीय-आर्य राष्ट्र की पांच जनजातियों के बारे में, 38-39; प्रजाति के अर्थ में आर्य का शब्द का प्रयोग नहीं, 79; साझा शत्रु के विरुद्ध आर्यों और दासों के संयुक्त मोर्चे के बारे में, 84-85; आर्यों से भिन्न पंथ के लोगों के रूप में दस्युओं का वर्णन, 85-86; 'अनास' 'मृदवाक' और 'कृष्णयोनि' शब्दों का उल्लेख, 86-87; आर्यों, दासों और दस्युओं के बीच प्रजातिगत भेद नहीं होने के बारे में, 87; आर्यों में रंग-आधारित पूर्वग्रह नहीं होने के बारे में, 91-92; 'वर्ण' शब्द का उल्लेख, 92-93; दो विपरीत आर्य समुदायों के अस्तित्व का समर्थन, 96-97; दो में से एक वेद, 97; दास का वर्णन, 117-118; दाशराज्ञ युद्ध, 135-139; सुदासों के परोपकार की प्रशंसा, 139; उल्लिखित जनजातियां और सुदासों का उनसे सम्बंध, 140; भरतों और त्रित्सुओं के बीच शत्रुता के बारे में, 204; पैजवन के वर्णन में 'शूद्र' शब्द का लोप, 217

ऐतरेय ब्राह्मण = भारतीय-आर्यों के जनक मनु, 37; शूद्रों की अयोग्यताएं, 46; वैश्यों की यज्ञ सम्बंधी अयोग्यताओं पर, 65-66; राजाओं के अभिषेक की सूची और उसे संपन्न कराने वाले पुरोहि[illegible] 134-135

ऐल्पाइन प्रजाति = गुण अथ[illegible] लक्षण, 76-78; प्रो. रिप्ले का मत, 93-94; इसकी आर्य भाषाएं, 94

ओल्डनबर्ग, प्रो. = प्रसिद्ध व्यक्तियों के वर्णन में गोत्र नाम का लोप, 214 (पाद-टिप्पणी) 217

औपमन्यव = इसके अनुसार भारतीय-आर्य राष्ट्रों की पांच जनजातियां, 38

कल्माषपाद = 157-158

काठक संहिता = इसके अंतर्गत शूद्रों की अयोग्यताएं, 52; शूद्र और आर्य के विभाजन पर इसके कथन, 118

काणे = परवर्ती शूद्रों के रूप में दास और दस्युओं की पहचान, 113; आर्यों और शूद्रों के बीच विभाजन रेखा पर, 114; देखिए 114, 169, 171-173, 179-180, 186, 202, 214, 215 भी (पाद-टिप्पणी)

कात्यायन स्रौत सूत्र = वैदिक अनुष्ठान करने की शूद्र की पात्रता, उस पर टिप्पणी, 120

कायस्थ = बंगाल और बिहार के कायस्थों की प्रस्थिति, 176-177; ब्राह्मणों द्वारा उनकी प्रस्थिति को चुनौती, 187-198; चुनौती की प्रतिक्रिया, 189 (देखिए पाद-टिप्पणी भी); उन्हें जारज प्रमाणित करने का गागाभट्ट का प्रयास, 193-194

कालिक पुराण = 174 (पाद-टिप्पणी)

किंकैड = शिवाजी की प्रस्थिति के प्रति मराठा सरदारों का रवैया, 188 (पाद-टिप्पणी)

कुर्तकोटि = 197 (पाद-टिप्पणी)

क्रुक, विलियम = बौद्ध धर्म के प्रतिनिधित्व हेतु राजपूतों में गुर्जर जनजातियों का हिंदूकरण, 191-192

कृतवीर्य = 205-206

कोल्हापुर = वैदिक अनुष्ठानों के प्रति महाराजा की पात्रता पर राज पुरोहित का विवाद, 196-197

कौटिल्य = गुलामी के कानूनों में आर्यों के रूप में शूद्रों का उल्लेख, 121-122

कौषीतकि ब्राह्मण = सुदास और वसिष्ठ की शत्रुता उनके वंशजों तक फैलने के बारे में, 163

क्षत्रिय = पुरुष सूक्त के अनुसार उत्पत्ति, 30; ये

द्विज हैं, 32; ब्राह्मणों से नीचे और अन्य वर्णों से ऊपर, 34, 40-41; सवर्ण, द्विज और त्रैवर्णिक के रूप में, 44-45; त्रैवर्णिक होते हुए भी शूद्रों के विरुद्ध उनके नगण्य अधिकार, 66; ऋग्वेद में पृथक वर्ण के रूप में नौ बार उल्लेख, 145; ब्राह्मणों के टकराव, 151-168; ब्राह्मणों से टकराने वाले राजा शद्रू जनजाति और सूर्य वंश के, 168; राजाओं की वंशावली, 200-201; पराक्रम और ज्ञान में ब्राह्मणों से श्रेष्ठ सूर्यवंशी, 202-203; वैदिक ऋचाओं के रचनाकार, 203-204; अल्पबुद्धि दुर्बल चंद्रवंशी, 203; ब्राह्मणों के साथ उनके समझौते की कथाएं, 202-203; शूद्र और अशूद्र की शत्रुता, 204-208

ख्नूमू = मिस्री विश्वोत्पत्ति सिद्धांत में रचना करने वाला देवता, 30

गंगानाथ झा = पूर्व मीमांसा, 184 (पाद-टिप्पणी)

गागाभट्ट = शिवाजी के राज्याभिषेक का मुख्य पुरोहित, 188; बड़ी दक्षिणा देकर खरीदा गया, 191-193; उसकी हेरा फेरी, 193-195; कायस्थों को हरामी साबित करने का प्रयास, 195

गुहा, डॉ. = भारतीय कौम की दो प्रजातीय संततियों और उनके वितरण के बारे में, 109-110

गौतम धर्मसूत्र = इसमें शूद्र की अयोग्यताएं, 57, 59, 61-62; इसमें से चालीस संस्कारों की गणना, 183

ग्रांट मैडीसन = यूरोप में आर्य भाषा का प्रचलन, 111 (पाद-टिप्पणी)

ग्रिफिथ्स, डॉ. = त्रित्सु को अनार्य बताए जाने से विचलित, 141-142

चांडाल = एक प्रतिलोम, 211; अन्य प्रतिलोमों से निम्न अधिकार, 212; उनके विरुद्ध मनु के विधान, 212; और उनकी गंभीर स्थिति के कारण, 213

चातुर्वर्ण्य = भारतीय आर्यों के समाज का आदर्श, 31; इसे बुद्ध की अप्रभावी चुनौती, 31; मनु द्वारा दैवीय निर्धारण, 32; श्रेणीबद्ध असमानता का आधार, 34; राजनीतिक कलाबाजी, 39-41; इसका परवर्ती विकास, पांचवें वर्ण का निर्माण और त्रैवणिकों से शूद्रों का अलगाव, 44-45; इसमें एक आर्य प्रजाति का विश्वास और दूसरी आर्य प्रजाति का अविश्वास, 109; और 50-51 भी देखिए, वर्ण, आर्य, शूद्र, मनु

चितराव शास्त्री = सुदास के विरोधियों के बारे में, 137 (पाद-टिप्पणी)

छांदोग्य उपनिषद = देवताओं से वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या, 41; ऋग्वैदिक ऋचाओं के रचनाकार ऋषि जनश्रुति का शूद्र के रूप में वर्णन, 119-120

जस्टिनियन = गुलामों का मताधिकार, 69

जाइगर = आर्यों के मूल निवास के बारे में उसके विचारों का सार, 80

जाबाली, सत्यकाम = उसकी कथा, और उसके निष्कर्ष, 187

जायसवाल, डॉ. = एक मंत्री के रूप में शूद्र, 123-124 (पाद-टिप्पणी)

ज़ेंद अवेस्ता = 'एक विशेष आस्था रखने वाले वर्ग' के अर्थ में वर्ण शब्द का उल्लेख, 92-95; अज़ी दाहक 116-117

जैमिनी = शूद्रों के संस्कारों के अधिकार के बारे में बदरी के तर्क का उल्लेख, 120; उसके अनुसार संस्कारों का आध्यात्मिक महत्त्व, 183; संपत्ति, यज्ञ और वैदिक मंत्रों के बारे में 'पूर्व मीमांसा' में उसके नियम, 182-183

टेलर, प्रो. आइज़क = आर्यों के मूल निवास सम्बंधी बेन्फी के विचारों का सारांश, 79

ठाकरे, के.एस. = गागाभट्ट की पैंतरेबाजी और मोरोपंत पिंगले के मोर्चा-परिवर्तन के बारे में, 195 (पाद-टिप्पणी); कायस्थों द्वारा कायस्थों के संस्कार के बारे में, 197-198 (पाद-टिप्पणी)

डोंगेरे, राव बहादुर = सिद्धांत विजय, 195 (पाद-टिप्पणी)

तिलक, बाल गंगाधर = ध्रुवीय तथा परिध्रुवीय

प्रदेशों की विशेषताओं के बारे में, 82-84; वेदों के मिथकों और किंवदंतियों की विशेषताओं की अनुरूपता के बारे में, 83-84; उनका मंतव्य, निष्कर्ष : आर्कटिक, आर्यों का मूल निवास, 83-84; उनके सिद्धांत की कमियां, 84; यज्ञोपवीत के जन्म के बारे में, 172-173; उनकी व्याख्या की कमियां, 173-174

तुर्वश = 39

तैत्तिरीय अरण्यक = सृष्टि सम्बंधी मत, 102

तैत्तिरीय ब्राह्मण = शूद्रों की उत्पत्ति की व्याख्या, 53; सृष्टि सम्बंधी मत, 101-102; केवल तीन वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन, 145, 218

तैत्तिरीय संहिता = चार वर्णों की उत्पत्ति की व्याख्या, 51-52; सृष्टि सम्बंधी मत, 97; वसिष्ठ और सौदासों के टकराव के बारे में, 164

त्रित्सुस = 142

त्रिवेद, प्रो. डी.एस. = भारत पर आर्यों के आक्रमण सम्बंधी सिद्धांत के विरोध में प्रमाण के बारे में, 84

त्रिशंकु = 151-152, 161-162

त्रैवर्णिक = कौन हैं, 44-45; उनमें अधिकारों की समरूपता का अभाव, 66

दस्यु = आर्यों के साथ टकराव प्रजातिगत नहीं बल्कि धार्मिक, 84-86; मृदरावक' और 'अनास' उपाधियों की सही व्याख्या, 85-86; आर्यों से प्रजाति के नहीं धर्म के आधार पर भिन्न, 115-116; महाभारत के अनुसार, सभी वर्णों में, दस्यु का अस्तित्व, 116; भारतीय-ईरानियों के लिए भारतीय-आर्यों द्वारा प्रयुक्त एक तिरस्कारपूर्ण शब्द, 116; आर्यों से अधिक शक्तिशाली, 117; दास और आर्य भी देखिए।

दाशराज्ञ युद्ध = इसका वर्णन, 135-137; शूद्रों तथा शूद्र क्षत्रियों के बीच युद्ध, 214-215; सुदास भी देखिए।

दास = और दस्यु, पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार : (1) आर्यों से भिन्न एक अश्वेत प्रजाति, (2) आर्यों द्वारा जीते गए, गुलाम बनाए गए और शूद्र कहे गए, 74; उल्लेखों का अभाव, और ऋग्वेद में आर्यों के शत्रुओं के रूप में दस्यु, 85; साझा शत्रु के विरुद्ध आर्यों के साथ मिल गए, 85; आर्यों के साथ टकराव, प्रजातिगत नहीं बल्कि धार्मिक, 85-86; दस्यु शब्द का प्रयोग प्रजाति के अर्थ में नहीं, 86-87; उनकी उपाधि 'कृष्णयोनि' में आर्यों के साथ प्रजातिगत भिन्नता का भाव नहीं, 87; ऋग्वेद में 'वर्ण' शब्द का प्रयोग, 93; और दस्यु प्रजाति तथा रंग में आर्यों से भिन्न नहीं, 94-95; एक आर्य समुदाय के मित्र और दूसरे आर्य समुदाय के शत्रु, 116-117; अज़ी दाहका (ज़ेंद अवेस्ता) के रूप में पहचान हो सकती है, 117-118; एक सभ्य कौम, 118; शूद्रों के रूप में पहचान नहीं की जा सकती, 118; और दस्यु, आर्यों द्वारा आत्मसात तथा उत्तर-वैदिक साहित्य से उनका पूर्णतः लोप, 118; यह शब्द, गुलाम के अर्थ में इसका उल्लेख ऋग्वेद में पांच बार हुआ है, 123

दास, ए.सी. = दासों और दस्युओं की पहचान परवर्ती काल के शूद्रों के रूप में की, 113

दिवोदास = 133-134, 140-141

धर्मसूत्र = शूद्रों के विषय में उनके कथनों का प्रमाणगत महत्त्व, 118; शूद्रों के लिए उपनयन, वैदिक संस्कारों और यज्ञों और सोमरस पान का निषेध, 119-120; ब्राह्मणी साहित्य के प्रति उनकी वर्जनाओं के विरुद्ध प्रमाण, 120-122

नहुष = 164-165, 204 (पाद-टिप्पणी), 204

निमि = 165, 204

निषाद = एक अनुलोम, 212; उपनयन के प्रति उसकी अपात्रता, 212; एक मनमाना अपवाद और क्यों 212

पतितसावित्रीक = 179

पद्म पुराण = 174
पंचविंश ब्राह्मण = इसके अंतर्गत शूद्रों की अयोग्यताएं, 52; शूद्रों की संपन्नता के बारे में, 123
पालशे = ब्राह्मणों द्वारा उनकी प्रस्थिति को चुनौती, 187, 197
पाश्चात्य लेखक = दासों और दस्युओं से शूद्रों की उत्पत्ति का सिद्धांत, 74-75; उनके सिद्धांत का आधार 88; बॉप के सिद्धांत से लगाया गया अनुमान, भाषाओं की साझा उत्पत्ति के बारे में, अनुमान : (1) आर्यों का साझा निवास और सामाजिक संतति, 88-89; (2) भारत पर आर्यों की जीत, 89; (3) दासों की अधीनता, 89; (4) वर्ण-व्यवस्था में आर्यों द्वारा रंग भेद, 89-90; उनके सिद्धांत की विफलता के कारण, 88-89; उनके सिद्धांत की जांच-परख, 89-95; ऋग्वेद से उनके सिद्धांत का टकराव, 111-112; इसकी कमियां, 112
पिंगले, मोरोपंत = शिवाजी के राज्याभिषेक का विरोधी, 188; राज्याभिषेक के अवसर पर अपार उपहार, 193
पुराना नियम = उत्पत्ति, 30; उत्पत्ति और पुरुष सूक्त की तुलना, 36
पुरु = 140
पुरुरवा = 164, 204 (पाद-टिप्पणी), 205
पुरुष सूक्त = सूक्त का पाठ, 29-30; भारतीय-आर्य विश्वोत्पत्ति सिद्धांत के रूप में, चार वर्णों के निर्धारण के अनिवार्य निर्देश के रूप में, और उत्पत्ति की व्याख्या के रूप में, 30-31; भारतीय-आर्यों के समाज पर इसका प्रभाव, 31; 'अद्वितीयता' तथा 'असाधारणता' के इसके दावे की जांच, 33-35; वर्णों की उत्पत्ति की व्याख्या—विश्वोतपत्ति के अन्य सिद्धांतों के अन्य सिद्धांतों से इसकी भिन्नता, 36; समाज की उत्पत्ति के ऋग्वेद के लौकिक सिद्धांत का खंडन, 36-37; राष्ट्रवाद की अपेक्षा संप्रदायवाद को प्राथमिकता, 39; चातुर्वर्ण्य को एक पवित्र संस्था बनाने हेतु इसकी राजनीतिक पैंतरेबाजी, 39-41; पुरुष के अंगों के साथ वर्णों की इसकी समतुल्यता, जान-बूझ कर और विद्वेषपूर्ण, 41-43; एक परवर्ती क्षेपक, 144-148, 149-150 ब्राह्मणों की जालसाजी, 148
पुरुषार्थ = पत्रिका, 181 (पाद-टिप्पणी)
पुस्तक का सिद्धांत = सारांश, 216; इसके प्रमाण की शक्ति, 217-218; वैधता, 218; शूद्रों के दस जटिल प्रश्नों का समाधान, 219-220
पेशवा = राज्याभिषेक युग की समाप्ति, 195; शाहू द्वितीय का उपनयन पौराणिक रीति से कराने का निर्देश, 195-196
पैगन (मूर्ति पूजक) = रोमन कानूनों के अंतर्गत उनकी अयोग्यताएं, 68-69
पोपतंत्र = इसकी जालसाजियां, 196
प्रजाति = यहूदी, एक कौम को प्रजाति समझने की भूल, 75; कतिपय विशिष्ट आनुवांशिक लक्षणों से युक्त कौम, 75-76; इसके लक्षण, प्राचीन तथा आधुनिक मत, 76-78; शिरस्य सूचकांक और आनन सूचकांक, 76; यूरोपीय प्रजातियों के लिए मानवमितीय पद्धति का अनुप्रयोग, एक तालिका, 78 और 80-81; क्या कोई आर्य प्रजाति है, 79; भूमध्यसागरीय, 110; ऐल्पाइन 110
प्रतापसिंह द्वितीय = ब्राह्मणों द्वारा उसकी क्षत्रिय प्रस्थिति को चुनौती, 196
प्रतिलोम = कौन हैं, 213 (पाद-टिप्पणी); इस पर कलंक का असमान वितरण, 214; देखिए चांडाल
प्रिवी कौंसिल = आधुनिक काल में क्षत्रियों के अस्तित्व पर निर्णय, 175
प्रेमी नाथूराम = 174
प्लेटो (अफलातून) = एक आदर्श सामाजिक ढांचा, वर्ग विभेद के बारे में, 30
फॉसबॉल, डॉ. = च्यवन की कथा, 121 (पाद-टिप्पणी)
फॉस्टर, प्रो. माइकेल = परिकल्पना के बारे में, 89
बॉप, डॉ. = भारतीय-आर्य और भारतीय-

जर्मन भाषाओं की समान उत्पत्ति का सिद्धांत, 87-88
बालाजी आवजी = शिवाजी के राज्याभिषेक में उसकी भूमिका, 189-90, 194-195
बुद्ध = और बौद्ध धर्म, चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को तोड़ने में उनकी असमर्थता, 31
बुहलर, डॉ. = शूद्रों की ब्राह्मण बनने की पात्रता के बारे में, 121
बृहस्पति धर्म शास्त्र = उसमें शूद्रों की अयोग्यताएं, 57
बृहस्पति स्मृति = उसमें शूद्रों की अयोग्यताएं, 59
बेन्फे, डॉ. = आर्यों के मूल निवास के विषय में उनके विचारों का सार, 80
बेलवलकर, प्रो. = वैदिक साहित्य की समकालिक रचना का सिद्धांत, 149-150
बोडे, दस्तूर = भारतीय-ईरानी साहित्य में 'वर्ण' का अर्थ 92
बोधायन = अश्वत्थ वृक्ष के उपनयन का निर्धारण, 181
ब्राह्मण = पुरुष सूक्त के अनुसार उनकी उत्पत्ति, 30; द्विज हैं, 32; सबसे ऊंचा दर्जा, 34; सवर्ण, द्विज और त्रैवर्णिक के रूप में, 40; शूद्रों के विरुद्ध उनके अधिकार और विशेषाधिकार, 65; शूद्रों की अयोग्यताओं के प्रति उनकी उदासीनता, 66; रोमन विधान की तुलना में उनका विधान सांप्रदायिक और मनमाना है, 72-73; भारत पर आर्यों की जीत के सिद्धांत को मानते हैं क्योंकि इससे यूरोपवासियों के साथ उनकी नातेदारी सिद्ध होती है, 89; ऋग्वेद में पृथक वर्ण के रूप में सोलह बार उल्लिखित, 145; क्षत्रियों से विवाद, 161; क्षत्रियों से टकराव, 151-168; शूद्रों का दर्जा कम करने की युक्ति, उपनयन की स्वीकृति नहीं, 169; उपनयन संस्कार का अनन्य अधिकार, 219-220; अनाधिकृत उपनयन संस्कार कराना, उसका दंड, 185-186; दूसरों वर्णों को उपनयन की अस्वीकृति के उदाहरण, 189; बनाम शिवाजी, 197-198; उनका सिद्धांत : कलियुग में कोई क्षत्रिय नहीं है, 193-194; अकेले वही हिंदू का दर्जा तय कर सकते हैं, 219; नजीर के कानून को कभी स्वीकार नहीं किया, 187; शिवाजी के राज्याभिषेक में पचास हजार को दक्षिणा, 187-191; सातारा और कोल्हापुर के महाराजाओं के क्षत्रिय होने पर सवाल, 196-198; शूद्र राजाओं से बदला लेने के लिए शूद्र समुदाय का दर्जा घटाया, 199-202; शूद्रों के साथ टकराव के लिए भड़काने के पर्याप्त आधार, 201-202; इनके द्वारा मांगे गए विशेषाधिकारों की सूची, 201-202; इनके विशेषाधिकारों को (शूद्र) क्षत्रियों की चुनौती, 202-204; शूद्रों के साथ उनके समझौते की कथाएं, 204-210; महिमामंडन हेतु कथाएं, 210-211; ऋग्वैदिक काल में वर्ण-हितों के प्रति सचेत, 214-215
ब्राह्मणी = सृष्टि की कथाओं से भरा साहित्य, 46-51; कथाओं का विश्लेषण, 51; शूद्रों की उत्पत्ति के अत्यंत असंतोषजनक सिद्धांत, 74-75; साहित्य, इसकी सृष्टि सम्बंधी दो विचार-धाराएं, 96-108; दो विचारधाराओं की तुलना—पुरोहिती और लौकिक, 109; शब्दों के प्रचलित अर्थ के अनुकूल गलत व्युत्पत्तियों का लेखकों द्वारा अन्वेषण, 114-115; पुरुष सूक्त और स्मृति ग्रंथों की जालसाजी, 148-149
भगवत पुराण = 'भारत भूमि' नामकरण के के बारे में, 141
भंडारकर, डॉ. डी.आर. = गुर्जर, विदेशियों के वंशजों के रूप में राजपूतों के बारे में उनके विचार, 192
भंडारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट = श्लोक का मिलान पत्र, अर्थात पैजवन, 127 (पाद-टिप्पणी)
भरत कुमार = 140-141, 204-205
भारत = दौष्यंती भारत नहीं वैदिक भारत के नाम पर 'भारत भूमि' का नामकरण, 140-141

भारत के उच्च न्यायालय = बिहार के कायस्थों के शूद्र होने के बारे में कलकत्ता का निर्णय, 175; कलकत्ता के निर्णय की वैधता को इलाहाबाद की अस्वीकृति, 176; बंगाल के कायस्थों के शूद्र होने के बारे में कलकत्ता (1916 और 1922) का निर्णय, 176; बिहार के कायस्थों के क्षत्रिय होने के बारे में पटना (1926) का निर्णय, 176-177; मराठों के शूद्र होने के बारे में मद्रास (1924) का निर्णय, 177; पांच और छियानवे मराठा परिवारों के क्षत्रिय होने और शेष के शूद्र होने के बारे में बम्बई (1928) का निर्णय, 177; यादवों के शूद्र होने के बारे में मद्रास (1927) का निर्णय, 177; शूद्र और उनकी प्रासंगिकता को निर्धारित करने में अपनाए गए मानदंड, 178; उपनयन के सम्बंध में समुदायों की वस्तुतः और विधितः स्थिति के बीच अंतर करने की विफलता, 178-179; प्रिवी कौंसिल भी देखिए

भारतीय आर्य = देखिए मनु, आर्य, चातुर्वर्ण्य, अथर्व वेद, औपमन्यव, डॉ. बॉप, दास, दस्यु, डॉ. गुहा, पुरुष सूक्त

भारतीय-ईरानी = उनके समाज के तीन वर्ग, 34; उनके साहित्य में 'वर्ण' का अर्थ, 92-95; अज़ी दाहक के साथ दास की पहचान, 116; दस्यु भी देखिए

भारद्वाज सूत्र = शूद्र के यज्ञ सम्बंधी अधिकार का उल्लेख, 120-121

भीष्म = चार वर्णों के मंत्रियों के बारे में, 114

भूमध्यसागरीय प्रजाति = उसके लक्षण, 77-78; उसके बारे में तथ्य, 110

मत्स्य पुराण = आर्यों के जनक मनु के बारे में, 37; ऋग्वैदिक मंत्रों के रचनाकार क्षत्रियों की सूची, 203

मनु = चार वर्णों की दिव्य उत्पत्ति के बारे में, 32-33; शूद्रों की अयोग्यताओं के बारे में, 53-54, 55-64; ब्राह्मणत्व के प्रति शूद्रों की पात्रता के बारे में, 120-121; शूद्र राजाओं के विरुद्ध ब्राह्मणों को उसके निर्देश, 123; शूद्र राजाओं और ब्राह्मणों के बीच टकराव के बारे में, 168-169; चांडाल के विरुद्ध नियम, 213

मनु = भारतीय-आर्यों के जनक, 37

महाभारत = सृष्टि सम्बंधी मत, 103-104; सभी वर्णों में दस्युओं के अस्तित्व के बारे में, 115-116; युधिष्ठिर के राज्याभिषेक में शूद्र को आमंत्रण, 123; चार वर्णों के मंत्रियों के बारे में, 123; पैजवन से सम्बंधित छंद का मिलान, 125, 127-128; इसकी पांडुलिपियों और (संशोधित) संस्करणों की प्रकृति, 126; छंद के पाठों की छानबीन के परिणाम, 127-128; कल्माषपाद की कथा, 128-129 और 157-158; पुरुरवा का ब्राह्मणों से टकराव, 165; वासिष्ठ के साथ भरतों का समझौता, 204; कृतवीर्य का भृगुओं के साथ टकराव और समझौता, 205-206; परशुराम के साथ, 206-207; वासिष्ठ और ब्राह्मणों के साथ सौदासों का समझौता, 209-210; सच्ची परंपरा के पैजवन अभिलेख के बारे में इसका कथन, 217

महाराष्ट्र ज्ञान कोश = वर्ण का अर्थ, 91 (पाद-टिप्पणी); अज़ी दाहके के रूप में दास की पहचान, 117 (पाद-टिप्पणी); परिशिष्ट, 222-227

मिस्री = विश्वोत्पत्ति सिद्धांत, 30; उनके समाज में वर्ग, 34

मैक्स मूलर, प्रो. = साहित्यिक रचनाओं के रूप में ब्राह्मण ग्रंथों की निराशाजनक प्रकृति के बारे में, 51; आर्य के अर्थ के बारे में, 77-78; आर्य शब्द को भाषाविज्ञान तक सीमित रखने का उनका आग्रह, 208-209; 'अनास' शब्द की उनकी व्याख्या, 86-87; ब्राह्मण व्युत्पत्तियों के बारे में, 114-115, 120

मैत्रायणी संहिता = इसके अंतर्गत शूद्रों की अयोग्ताएं, 52; शूद्रों की संपन्नता का उल्लेख, 123

म्यूर, डॉ. = ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच टकरावों

को ब्राह्मणों और शूद्रों के बीच टकराव के रूप में समझने में उनकी असफलता, 169; ये भी देखिए 39-40, 41-42, 47-50, 65, 97, 98-110, 114, 143, 145-147, 152-153, 156, 158-160, 163-167, 200, 202-209 (पाद-टिप्पणी)

यजुर्वेद = दो संस्करण, 46; अश्वमेघ यज्ञ, 84; ऋग्वेद का भिन्न रूप, 96

यज्ञोपवीत = महत्त्व, 172; निर्माण तथा प्रयोग के नियम, 172-173; तिलक का उत्पत्ति विषयक मत, 173-174; वास्तविक उद्देश्य, विशेष 'गोत्र' का बंधन, 174-175; कभी केवल ब्राह्मणों का बंधन, 175; उपनयन के साथ विलय, 175

यहूदी = उनके समाज में वर्गों का अस्तित्व, 36; रोमन कानून के अंतर्गत अयोग्यताएं, 68; प्रजाति नहीं, कौम, 75

याज्ञवल्क्य = यज्ञोपवीत के बारे में, 172

यास्क = भारतीय-आर्यों के राष्ट्र की पांच जनजातियों के बारे में, 38; पैजवन के अर्थ के बारे में, 129

यूनानी = 'वर्ण' व्यवस्था की तुलना में उनके समाज का वर्ण गठन, 34

रानाडे, प्रो. = वैदिक साहित्य की समकालिक रचना का सिद्धांत, 150

रामायण = सृष्टि सम्बंधी मत, 106-107; त्रिशंकु की कथा, 161-162; देखिए पाद-टिप्पणी, 37

रॉय = उनके महाभारत के पाठ की प्रामाणिकता के बारे में, 125-126

रिप्ले, प्रो. डब्ल्यु.ई. = प्रजाति और कौम के अंतर के बारे में, 75; यूरोपीय प्रजातियों की किस्म सम्बंधी उनकी तालिका, 77; काकेशिया को आर्यों की निवास स्थली बताने सम्बंधी सिद्धांत से असहमति, 80-81; सबसे प्रारंभिक यूरोपवासियों के अश्वेत रंग के बारे में, 90, 110 (पाद टिप्पणियां)

रिस्ले, सर हर्बर्ट = मानषमितीय सर्वेक्षण में भारत के लोगों को चार प्रजातियों का मिश्रण पाया, 109

रोमन = उनके समाज में वर्ग, 34; ब्राह्मणी नियमों और उनके नियमों की तुलना की आवश्यकता, 68-69; उनके नियमों (कानूनों) के अंतर्गत वर्ग और व्यक्ति, 69; अधिकारों और अयोग्यताओं का आधार; कापूत और इक्जिस्टीमेटिपो, 68-70; क्या उनका कानून सांप्रदायिक आधार पर था? 70-72; उनके द्वारा जन साधारण की सामाजिक और राजनीतिक अयोग्यताओं का समापन, 70-72; आपराधिक मामलों और अयोग्यताओं के समापन में कानून की समानता पर ब्राह्मणी कानून से भिन्नता, 72-73

लॉ, डॉ. बी.सी = 115 (पाद-टिप्पणी)

लासेन = सोदरी कबीले की शूद्र के रूप में पहचान, 115

वर्ण = आर्य प्रजाति के सिद्धांत में रंग के अर्थ में, 90; ऋग्वेद में उल्लेख और उसके अर्थ, 91-92; ज़ेंद अवेस्ता में 'विशेष आस्था वाले वर्ग' के अर्थ में प्रयोग, 92-94; ऋग्वेद में तीन वर्णों की व्यवस्था, 144-145, 150; देखिए पुरुष सूक्त और चातुर्वर्ण्य भी

वसिष्ठ = विश्वामित्र के साथ उनका टकराव, 151-168; भरतों, कल्माषपाद और सौदासों के साथ उनके समझौते की कथाएं, 204-205, 208-209; देखिए सुदास और विश्वामित्र भी

वसिष्ठ धर्मसूत्र = पुरुष सूक्त का समर्थन, 32; इसके अंतर्गत शूद्रों की अयोग्यताएं, 53-55, 62

वाजसनेयी संहिता = वर्णों की उत्पत्ति के दो सिद्धांत, 47-48; शूद्रों और आर्यों के विभाजन सम्बंधी कथन, 119-120; शूद्रों की भर्त्सना, 120

वायु पुराण = 114-115

विल्सन, डॉ. = उनके द्वारा अनूदित ऋग्वेद के अंश, 35 (पाद-टिप्पणी), 130-131

विश्वामित्र = वसिष्ठ से उनका टकराव, 151-152; त्रिशंकु के प्रसंग में उनकी भूमिका, 152; हरिश्चंद्र, 152-156; अम्बरीश, 156; और कल्माषपाद, 156-157; वसिष्ठ की हत्या को इच्छुक, 158-159; जीवनी सम्बंधी तथ्य, 159; त्रिशंकु की कथा में विशेषाधिकार को लेकर वसिष्ठ से झगड़ा, 160-161; असम्मान, सुदास द्वारा प्रतिशोध, 161-162

विष्णु पुराण = मनु, भारतीय-आर्यों का जनक, 37; ब्रह्मा के विभिन्न मुखों से वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या, 43; सृष्टि सम्बंधी मत, 107-109; दो सुदास की वंशावली और तालिका, 108-109; हरिश्चंद्र की कथा, 152-156; ब्राह्मणों के साथ निमि के टकराव के बारे में, 167

विष्णु स्मृति = शूद्रों की अयोग्यताएं, 54, 56, 59, 62

वेण = 164-165

वेबर, प्रो. = महाभारत के सुदास का ऋग्वेद के सुदास से सम्बंध, 133; भारत में दूसरों से पहले आने वाली एक आर्य जनजाति, शूद्रों के बारे में, 143

वैदिक साहित्य = उत्पत्ति और ब्राह्मणी मत, 41-43; मैक्स मूलर के अनुसार विकास, 149; समकालिक रचना के विषय में प्रो. रानाडे और बेलवल्कर का सिद्धांत, 149; देखिए ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद और वेद भी

वैद्य, सी.वी. = भारत भूमि पर भगवत पुराण से उनके द्वारा उद्धृत अंश, 185-186; शिवाजी के दूसरे राज्याभिषेक के बारे में, 188-189 (पाद-टिप्पणी); शिवाजी के राज्याभिषेक में ब्राह्मणों को दक्षिणा में दिया गया धन, 193; देखिए 191-192 भी (पाद-टिप्पणी)

वैश्य = पुरुष सूक्त के अनुसार उत्पत्ति, 30; द्विज हैं, 33; प्रस्थिति में केवल शूद्रों से श्रेष्ठतर, 35, 40-41; सवर्णों, द्विजों, तैवर्णिकों के रूप में, 45; भारतीय-आर्यों के समाज में प्रताड़ित वर्ण, 65; उनके विरुद्ध कोप बाद में शूद्रों के विरुद्ध हो गया, 65; त्रैवर्णिक होते हुए भी शूद्रों के विरुद्ध नगण्य अधिकार, 65-66

वैशम्पायन = पुरोहितों के वर्गों की उत्पत्ति, 43-44

व्यवहार मयूख = दत्तक नियम का कालिपुराण का उद्धरण, 174 (पाद-टिप्पणी); 185 (पाद-टिप्पणी)

व्रत्य = 49, कौन थे वे, 180-181; स्तोम, 180; शुद्धिकरण सम्बंधी शुद्धिसंग्रह का प्रावधान, 180

शंकराचार्य, करवीर = कायस्थों को क्षत्रिय मानने से इनकार, 196; वैदिक अनुष्ठानों की पात्रता को लेकर कोल्हापुर राजघराने के विरुद्ध, 195-197

शक्ति = सद्गुरुशिष्य और शाट्यायन ब्राह्मण देखिए

शतपथ ब्राह्मण = चार वर्णों की व्याख्या, 49-50; इसके अंतर्गत शूद्रों की अयोग्यताएं, 98; सृष्टि सम्बंधी मत, 98-99; यज्ञों में विभिन्न वर्णों के प्रति संबोधन में भेदभाव, 143, 219; केवल तीन वर्णों की सृष्टि की व्याख्या, 140; तुर्वश जनजाति की शक्ति के बारे में, 214

शाट्यायन ब्राह्मण = शक्ति पर सुदास के अत्याचार की कथा, 163

शाहू महाराज = वैदिक अनुष्ठानों की पात्रता को लेकर राजपुरोहित और शंकराचार्य से विवाद, 196-197

शिवाजी = ब्राह्मणों के विरुद्ध, 187; ब्राह्मणों द्वारा क्षत्रिय दर्जे की स्वीकृति पर निर्भर वैदिक रीति से राज्याभिषेक, 187; और उसके उपनयन पर उनके निष्पादन के बारे में, 188; ब्राह्मण मंत्रियों और मराठा सरदारों द्वारा शूद्र माना जाना, 188 (और पाद-टिप्पणी) 194; ब्राह्मणों की दया पर निर्भर, 189; उनके दो राज्याभिषेक, 188-189

(पाद-टिप्पणी); उसे सिसौदिया राजपूतों से जोड़ती वंशावली, 189-190, 194-195; राज्याभिषेक के अवसर पर ब्राह्मणों को दिया गया धन, 193; उसके वंशज बनाम ब्राह्मण, 192-194; पेशवाओं द्वारा उसके राज्याभिषेक युग की समाप्ति, 192

शूद्र = उनका जटिल प्रश्न, 29, 44; पुरुष सूक्त के अनुसार उनकी उत्पत्ति, 30; आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार उनकी स्थिति, 31-32; वसिष्ठ धर्मसूत्र, 32; और मनुस्मृति, 32; उनकी प्रस्थिति, 34, 41 और 42; ऋग्वेद में उल्लिखित पांच जनजातियों में क्या वे सम्मिलित थे, 40; सवर्ण हैं किंतु द्विज और त्रैवर्णिक नहीं, 45; संहिताओं, ब्राह्मणों, सूत्रों, स्मृतियों के अंतर्गत अयोग्यताएं और दंड, 52-66; उनके विरुद्ध दंड विधानों का सार, 65-66; ब्राह्मणों के और उनके विशेषाधिकारों की तुलना, 66-67; अयोग्यताओं का स्थायित्व और विषमता, 72-73; वायु पुराण और वेदांत सूत्र में इस शब्द की व्युत्पत्ति, 115; एक जनजाति का व्यक्ति नाम, 115; लासेन की पहचान, सिकंदर द्वारा सोदरी जनजाति की पराजय, 115; पातंजलि के अनुसार अमीरों का साथी, 115; ब्रह्म, मार्कण्डेय और विष्णु पुराणों के अनुसार एक पृथक जनजाति, 115; वेद इनके विषय में मौन और परवर्ती साहित्य में भरमार, 118; ये अनार्य थे, इसका आधार, 119; और आर्य, 119-120; ब्राह्मणों के साथ समानता का आधार दिखाते कथन, 119-120; और ब्राह्मण बनने की पात्रता, 121-123; कौटिल्य के अनुसार जन्म से आर्य, 122-123; गुलाम नहीं, 123; ब्राह्मणी युग में राजाओं के राज्याभिषेक में भागीदारी, 123; राजनीतिक सभाओं के सदस्य, 124; राजाओं और मंत्रियों के रूप में, 124; और 218; उनकी संपन्नता, 124; और 219; उनकी गुलामी की मान्यता पर सवाल, 124; क्षत्रिय वर्ण के आर्य थे, 125, 143, 150; शब्द का महत्त्व—गोत्र, बिरादरी (फ्रेटरी), अथवा जनजाति? 142; ब्राह्मणों से टकराव, 151-168; ऋग्वेद में पृथक वर्ण के रूप में उल्लेख नहीं, 150; ब्राह्मणों से टकराव के कारण चौथे वर्ण में डाला जाना, 151-215; उपनयन का अधिकार, 178-184; उपनयन से वंचित, परिणाम; संपत्ति और ज्ञान की हानि, 183-184; दर्जा घटाने का ब्राह्मणों का अधिकार, 185-186, 219; शिवाजी एक शूद्र, 188; इस जनजाति के राजा, 199-202; उनके समझौते की कथाएं, 204-213; उनके विरुद्ध कानूनों का विकास, ब्राह्मणों के साथ समझौते से असहमति, 211; निषादों और चांडालों के साथ निदेशित व्यवहार, 211-212; क्या उन्होंने उपनयन से वंचित होने को चुपचाप सहन कर लिया, 212-213; भारतीय-आर्यों के समाज में एक अकेली कौम का नाम, 214; हिंदू समाज में असंस्कृत लोगों की उपाधि, 214-215; भारतीय-आर्यों के समाज के शूद्र हिंदू समाज के शूद्रों से भिन्न, 214-215; 'निर्वासित', 'अनिर्वासित' और 'असच्छूद्र', 214; भारतीय-आर्यों के समाज में कुछ हजारों की जनजाति, 214-215; उपनयन से वंचित किए जाने और ब्राह्मणों के साझा मोर्चे को तोड़ने में असमर्थता, 215-216; दस जटिल प्रश्न, 218-219

श्रीनिवास आयंगर, टी. = ऋग्वेद में 'आर्य' शब्द के अत्यंत कम उल्लेख के बारे में, आर्यों द्वारा भारत पर आक्रमण के सिद्धांत के विरुद्ध प्रमाण, 84; उल्लेख, 85 (पाद-टिप्पणी); दस्युओं की सभ्यता के बारे में, 117

सद्‌गुरुशिष्य = इसके अनुसार शक्ति के प्रति सुदास की क्रूरता के कारण, 163

सरदेसाई राव बहादुर, जी.एस. = पेशवा द्वारा राज्याभिषेक युग की समाप्ति के बारे में, 195 (पाद-टिप्पणी)

सरूप, लक्ष्मण = निघंटु और निरुक्त का संस्करण, 129 (पाद-टिप्पणी)
सवर्ण = इनका विधितः अर्थ, 44; कौन हैं ये, 44
संस्कार = चालीस संस्कारों के नाम, 183; जैमिनी, संस्कारों की आवश्यकता सम्बंधी विचार, 183-184; संकीर्ण अर्थ में केवल सोलह संस्कार, 184; प्रारंभिक काल में आध्यात्मिक महत्त्व, 184; और ईसाई संस्कार, 184
संस्कार गणपति = शूद्रों की उपनयन सम्बंधी पात्रता को इसकी स्वीकृति, 182
साम वेद = एक विभिन्न प्रकार का वेद, 97
सामाजिक संगठन = पुरुष सूक्त के अनुसार, 33-34, 39-40; आदिम समाज का, 142-143, 200; वैदिक आर्यों का, 150-151
सायणाचार्य = उनके द्वारा 'अनास' शब्द की व्याख्या, 86; राजाओं की सूची—ऋग्वेद के मंत्रों के रचनाकार, 138; (पाद-टिप्पणी) 138
सिसौदिया राजपूत = क्या वे भारतीय-आर्यों के समाज के क्षत्रिय हैं? 190-192
सुदास पैजवन = महाभारत में वर्णन : एक शूद्र पैजवन, 125, 128-129, 217; यास्क की व्याख्या, 129-130; ऋग्वेद में पारिवारिक विवरण, 130, 133-134; विष्णु पुराण में दो, 130; (1) सागर का वंशज, और उसकी वंशावली, 130; (2) पुरु का वंशज और उसकी वंशावली, 131; वंशावली विशेषज्ञों के परिणाम, 132-133; ऋग्वैदिक पौराणिक से भिन्न, 132-133; महाभारत में उल्लिखित पैजवन ऋग्वैदिक है, 132-133; इस मत से प्रो. वेबर की सहमति, 133; दाशराज्ञ युद्ध का नायक, 135; ऋग्वैदिक मंत्रों का रचनाकार, 137; अश्वमेघ यज्ञ संपन्न किया, 137; दान के लिए ख्यात, 138; भरत, पुरु अथवा त्रित्सु जनजाति से सम्बंध, 139-140; वसिष्ठ को हटाकर विश्वामित्र को मुख्य पुरोहित बनाया, 200; ब्राह्मणों के साथ उसके वंशजों के समझौते की कथा, 200-201, 209; वसिष्ठ के साथ टकराव, 209-210; अत्यंत प्रसिद्ध होने के कारण ऋग्वेद में समुदाय के नाम से उल्लेख नहीं, 217-218
सूक्थांकर, डॉ. = रॉय के महाभारत पाठ की प्रामाणिकता के बारे में, 126, 127; स्मारिका खंड 1, 115, 116 (पाद-टिप्पणी)
सेनार्ट, प्रो. = वैदिक काल के सामाजिक संगठन के बारे में, 142-143
स्मिथ, विन्सेंट = राजपूतों में गुर्जरों के हिंदूकरण के बारे में, 190
हरिवंश = ईश्वर की आंखों, जीभ और सिर से वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या, 42-43; भगवान हरि के अंगों से पुरोहितों की उत्पत्ति की व्याख्या, 42-43; वेद अथवा किसी पुरोहित की उत्पत्ति के रूप में चरणों से जानबूझकर बचाव, 43-44; त्रिशंकु की कथा, 151-156; ब्राह्मणों के साथ वर्ण का टकराव, 164-165
हरिश्चंद्र = 152-153
हर्न, डब्ल्यु.ई. = आर्यों के बीच श्रेष्ठता स्थापित करने के नियम के बारे में, 122

# बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर द्वारा रचित एवं सम्यक प्रकाशन द्वारा प्रकाशित साहित्य



| | |
|---|---|
| भगवान बुद्ध और उनका धम्म (सचित्र) | रुपये 100 |
| शूद्रों की खोज | रुपये 125 |
| अछूत कौन और कैसे? | रुपये 60 |
| राज्य और अल्पसंख्यक | रुपये 40 |
| द रिडल्स ऑफ रामा एण्ड कृष्णा | रुपये 15 |
| बुद्ध या कार्ल मार्क्स | रुपये 20 |
| जातिवाद का बीजनाश | रुपये 35 |
| धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त | रुपये 20 |
| भारत में जातिवाद | रुपये 15 |
| साम्प्रदायिक गुत्थी और उसे हल करने के उपाय | रुपये 15 |
| नागपुर का धम्मोपदेश | रुपये 5 |
| हिन्दू नारी का उत्थान और पतन | रुपये 20 |
| बुद्ध और उनके धम्म का भविष्य | रुपये 5 |
| गांधी और अछूतों की विमुक्ति | रुपये 50 |
| कांग्रेस और गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया? | प्रेस में |
| पाकिस्तान अथवा भारत का विभाजन | प्रेस में |
| क्रांति तथा प्रतिक्रांति | प्रेस में |
| हिंदुत्व का दर्शन | प्रेस में |
| हिंदू धर्म की रिडल्स | प्रेस में |



## बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर की जीवनियां



| | | |
|---|---|---|
| बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर की संघर्षयात्रा एवं संदेश | *—डॉ. म.ला. शहारे* | रुपये 300 |
| बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर : जीवन और दर्शन | *—विजय कुमार पुजारी* | रुपये 50 |
| बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर संस्मरण और स्मृतियां | *—नानक चन्द रत्तू* | रुपये 150 |
| डॉ. अम्बेडकर : कुछ अनछुए प्रसंग | *—नानक चन्द रत्तू* | रुपये 150 |
| डॉ. अम्बेडकर के कुछ अंतिम वर्ष | *—नानक चन्द रत्तू* | रुपये 150 |
| ऐसे थे हमारे बाबा साहेब | *—शान्ति स्वरूप बौद्ध* | रुपये 40 |
| सचित्र भीम जीवनी | *—शान्ति स्वरूप बौद्ध* | रुपये 50 |
| महान समाजशास्त्री डॉ. आंबेडकर | *—डॉ. प्रदीप आगलावे* | रुपये 125 |

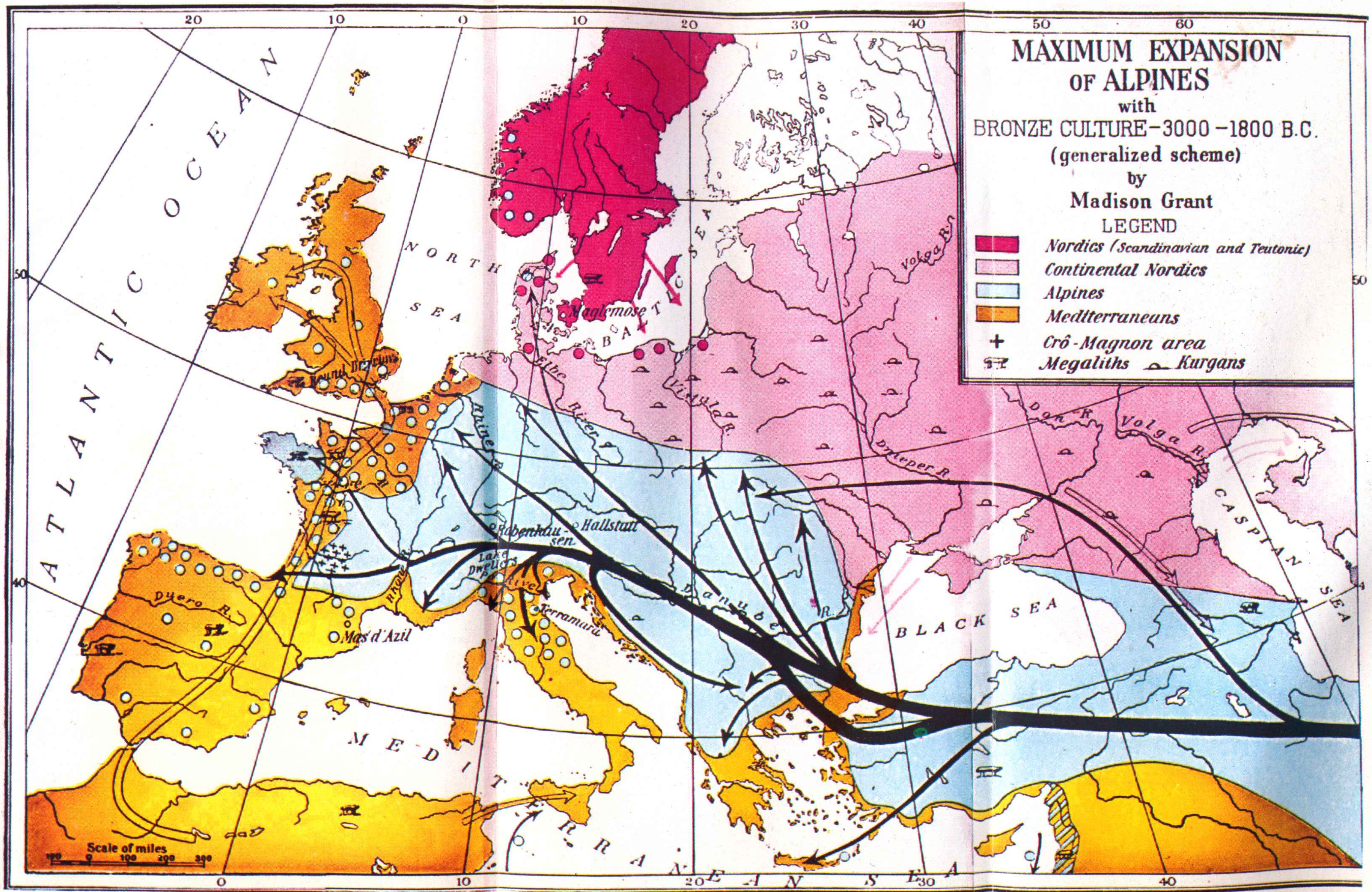
MAXIMUM EXPANSION
OF ALPINES
with
BRONZE CULTURE–3000–1800 B.C.
(generalized scheme)
by
Madison Grant
LEGEND
Nordics (Scandinavian and Teutonic)
Continental Nordics
Alpines
Mediterraneans
Crô-Magnon area
Megaliths
Kurgans
ATLANTIC OCEAN
NORTH SEA
BALTIC SEA
BLACK SEA
CASPIAN SEA
MEDITERRANEAN SEA
Maglemose
Elbe River
Vistula R.
Rhine R.
Danube R.
Dnieper R.
Don R.
Volga R.
Duero R.
Rhone
Hallstatt
Robenhausen
Lake Dwellers
Terramara
Mas d'Azil
Scale of miles
100 0 100 200 300

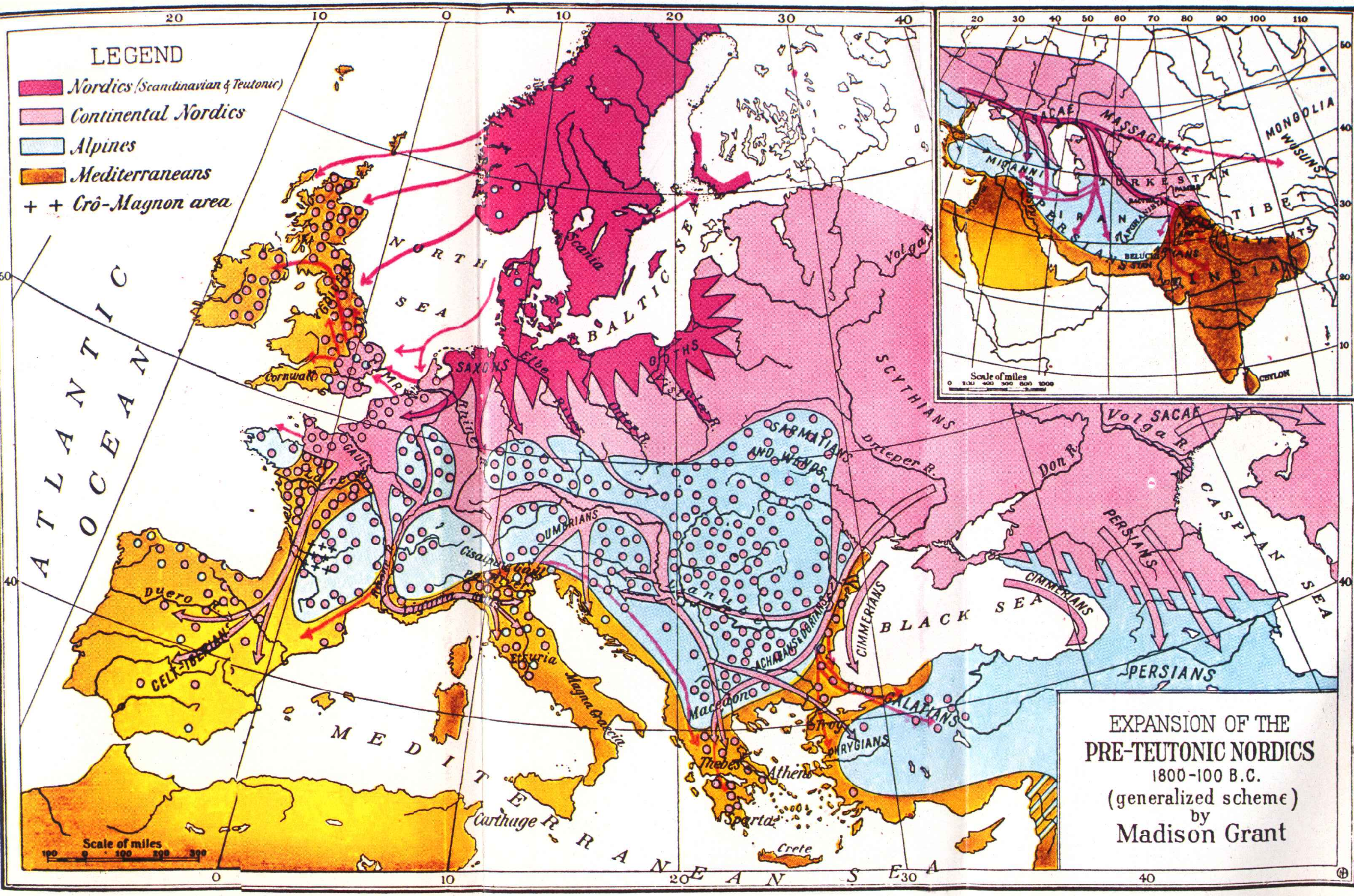


From PASSING OF THE GREAT RACE by MADISON GRANT, Courtesy of Charles Scribner's Sons.

PRINTED AT THE GOVT. PHOTOZINCO PRESS, PUNE- 1989

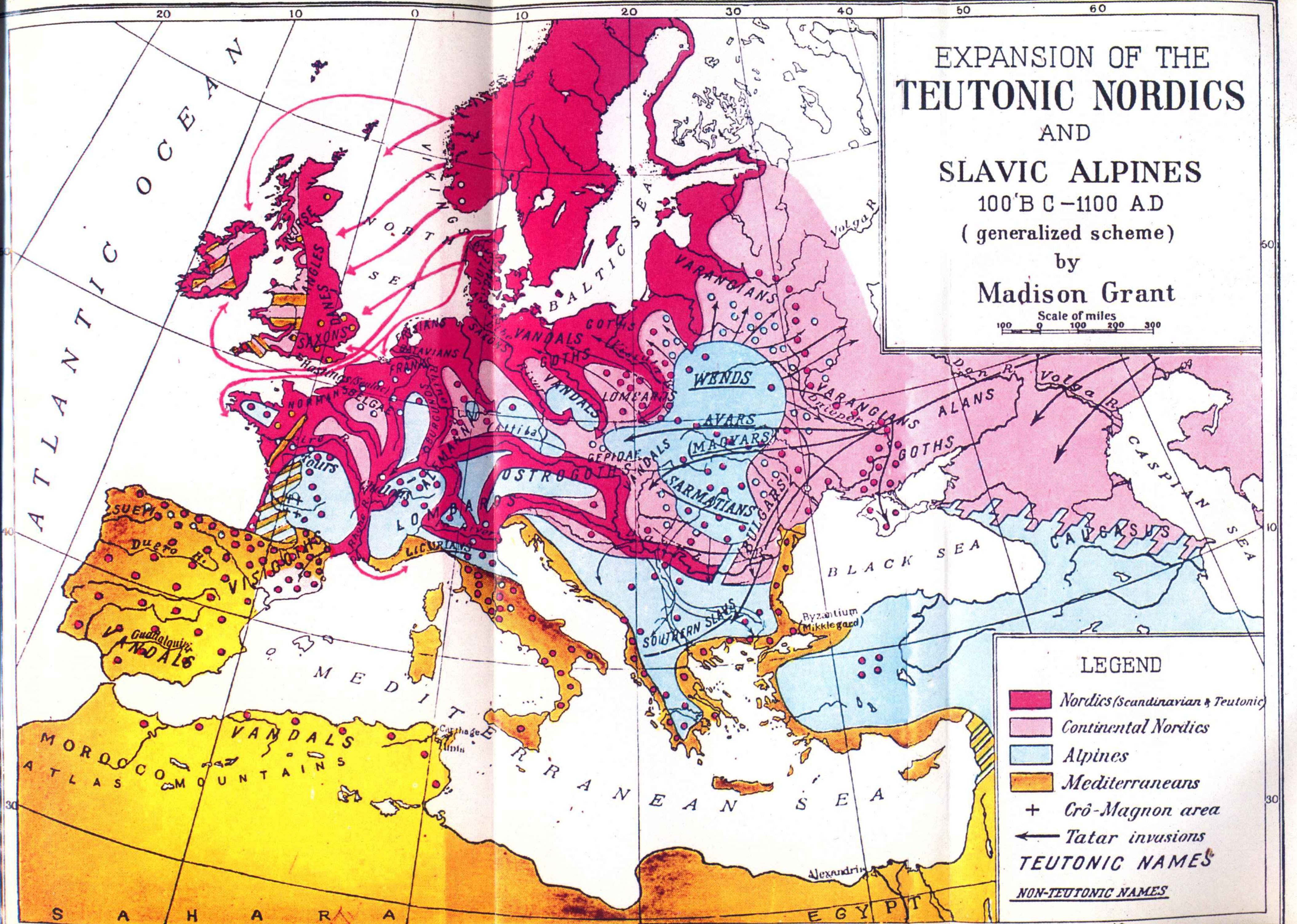
EXPANSION OF THE
TEUTONIC NORDICS
AND
SLAVIC ALPINES
100 B C – 1100 A.D
( generalized scheme)
by
Madison Grant
Scale of miles
100 0 100 200 300
LEGEND
Nordics (Scandinavian & Teutonic)
Continental Nordics
Alpines
Mediterraneans
Crô-Magnon area
Tatar invasions
TEUTONIC NAMES
NON-TEUTONIC NAMES
ATLANTIC OCEAN
NORTH SEA
BALTIC SEA
BLACK SEA
CASPIAN SEA
MEDITERRANEAN SEA
VIKINGS
ANGLES
DANES
SAXONS
FRISIANS
BATAVIANS
FRANKS
NORMANS
BELGAE
SAXONS
VANDALS
GOTHS
LOMBARDS
WENDS
AVARS
(MAGYARS)
SARMATIANS
BULGARS
GEPIDAE
VANDALS
VARANGIANS
ALANS
GOTHS
OSTROGOTHS
ALEMANNI
BURGUNDIANS
LOMBARDS
LIGURIANS
VISIGOTHS
SUEVI
VANDALS
MOROCCO
ATLAS MOUNTAINS
SAHARA
EGYPT
SOUTHERN SLAVS
CAUCASUS
Byzantium (Mikklegard)
Carthage
Alexandria
Hastings
Tours
Volga R.
Don R.
Dnieper R.
Duero R.
Guadalquivir
Rhine
Rhone R.

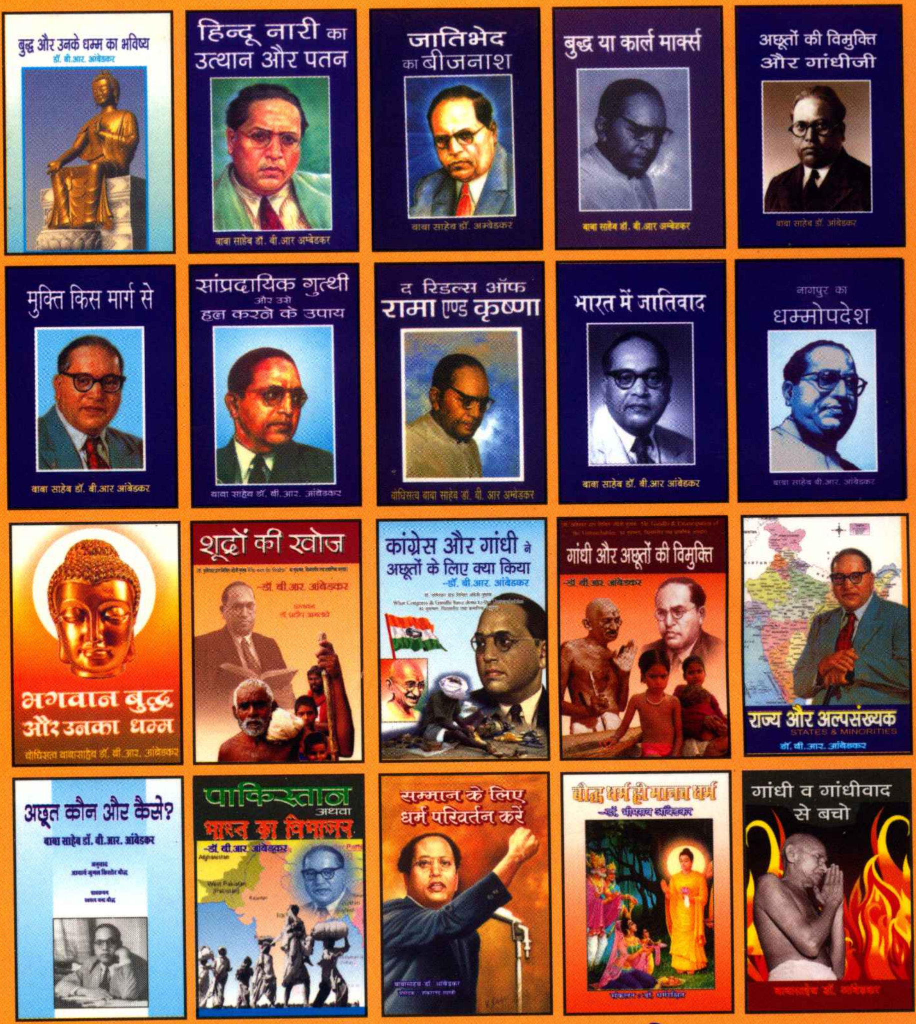


## आंबेडकरी वांगमय : एक परिचय

बोधिसत्त्व बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर उच्च कोटि के विद्वान व मनीषी हुए हैं। भारत का वर्तमान गणतंत्र उन्हीं की सूझबूझ की महान देन है। उनके महान साहित्य को छोटी-बड़ी पुस्तिकों के माध्यम से बहुजन समाज तक पहुंचाने का अभियान सम्यक प्रकाशन ने बहुत तत्परता और प्रतिबद्धता के साथ छेड़ा हुआ है। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर द्वारा लिखी हुई पुस्तकें बहुत बड़े आकर की होने के कारण ऊंचे मूल्यों पर उपलब्ध होती हैं, जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति खरीद पाने में समर्थ नहीं है। अतः जनता की इस कठिनाई को दृष्टिगत रखते हुए हमने बाबा साहेब के सम्पूर्ण साहित्य को खण्ड-खण्ड करके जनता के समक्ष प्रस्तुत करने का अभियान जारी है। हमारी मान्यता है कि यदि बाबा का यह अमर साहित्य भारत में घर-घर तक पहुंचा दिया जाय, तो पाखंडवाद तथा जातिवाद का गगनचुम्बी भवन देखते ही देखते भरभराकर धराशायी हो जाएगा। बाबा साहेब के मतानुसार चरित्र निर्माण के बिना राष्ट्र निर्माण की आशा व्यर्थ है। अतः राष्ट्र निर्माण की दिशा में बाबा साहेब के कल्याणकारी व मंगलकारी साहित्य को सर्वसाधारण तक पहुंचाने में सम्यक प्रकाशन अपने समस्त साधनों सहित सेवारत है। बाबा साहेब के साहित्य की प्रासांगिकता आज पहले से कहीं अधिक मजबूत होकर उभरी है। प्रत्येक देशभक्त को बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के अमर साहित्य का अद्योपांत अध्ययन करना चाहिए।

**स्वयं तो पढ़ें ही, किन्तु औरों को भी पढ़ाएं।**